



Subandhu - Krta Vasavadatta: Eka Alocanatmak Adhyayana

A Critical Study of Subandhu's Vasavadatta

ABSTRACT

THESIS SUBMITTED FOR THE DEGREE OF

Doctor of Philosophy

IN

Sanskrit

BY

Miss Shilpi

Mahfooz
12.07.2004
(Supervisor)

Under the Supervision of

Prof. (Mrs.) Salma Mahfooz

**DEPARTMENT OF SANSKRIT
ALIGARH MUSLIM UNIVERSITY
ALIGARH (INDIA)**

2004

शोध प्रबन्ध सार

सुबन्धु कृत वासवदत्ता : एक आलोचनात्मक अध्ययन

Subandhu- Kṛta Vasavadatta: Eka Alocanatmak Adhyayana

संस्कृत साहित्य में दो काव्यधाराएँ प्रचलित हैं प्रथम दृश्य काव्य तथा द्वितीय श्रव्य काव्य। दृश्य काव्य के अन्तर्गत रूपक तथा उपरूपक आदि की गणना की जाती है। शैली के आधार पर श्रव्य काव्य के तीन भेद किये जा सकते हैं— पद्य, गद्य तथा मिश्र। वस्तुतः काव्य के इन भेदों का मूलधार उनका अभिनेयता है।

पद्य साहित्य के समान ही गद्य साहित्य में भी प्रचुर मात्रा में सृजन कार्य किया गया है। सुबन्धु को गद्य साहित्य का प्रथम कवि स्वीकार किया गया है। सुबन्धु के पश्चात् दण्डी एवं बाण आदि कवियों ने संस्कृत गद्य को और अधिक समृद्ध कर दिया।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध का शीर्षक 'सुबन्धु कृत वासवदत्ता : एक आलोचनात्मक अध्ययन' है। विषय को सरल बनाने हेतु यह विषय सात अध्यायों में विभक्त किया गया है।

'सुबन्धु का देश-काल निर्णय एवं व्यक्तिगत जीवन' नामक प्रथम अध्याय के अन्तर्गत मैंने सुबन्धु के जीवन सम्बन्धी विविध तथ्यों को उद्घाटित करने का प्रयास किया है। सुबन्धु एक विवादित कवि हैं। उन्होंने स्वयं अपने वंश काल आदि का कोई परिचय नहीं दिया है। संस्कृत साहित्य में 'सुबन्धु' नाम से अनेक व्यक्तियों का उल्लेख मिलता है। जहाँ एक ओर ऋग्वेद में उनका नामोल्लेख ऋषि रूप में मिलता है वही दूसरी ओर अभिनवगुप्त, शारदातनय, रामचन्द्र गुणचन्द्र आदि ने उन्हें

नाटककार के रूप में स्मरण किया है। किन्तु पी० वी० काणे ने नाटककार तथा कथाकार सुबन्धु को पृथक् व्यक्ति बतलाया है। सुबन्धु द्वारा स्वयं अपने विषय में कोई सूचना न दिये जाने के कारण विद्वानों ने सुबन्धु द्वारा उद्धृत श्लोक के आधार पर दामोदर को उनका गुरु तथा 'वासवदत्ता' की एक पाण्डुलिपि के आधार पर उनके मातुल अर्थात् मामा का नाम वररुचि माना है। किन्तु इस सम्बन्ध में निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता। सुबन्धु के जन्म स्थान के विषय में भी विद्वानों में विभिन्न मत प्रचलित हैं। प्रो० मनमोहन घोष ने उन्हें मत्स्य पकड़ने, सुन्दरी वनों का उल्लेख करने के कारण बंगाल का निवासी स्वीकार किया है। किन्तु प्रो० मानसिंह ने उनके इन मतों का खण्डन किया है। इसी प्रकार इस तर्क का भी कोई आधार नहीं है कि सुबन्धु ने अपनी रचना को सरस्वती देवी की कृपा द्वारा रचित माना है, अतः वे कश्मीर के निवासी हैं। उन्हें मालवा क्षेत्र से सम्बन्धित अवश्य माना जा सकता है। क्योंकि कथाकार द्वारा विन्ध्यपर्वत आदि के वर्णन से भी यही प्रतीत होता है कि वे मालवा के निवासी हैं।

सुबन्धु के काल संबंधी तथ्यों को अन्तः साक्ष्य एवं बाह्य साक्ष्य उपशीर्षकों के अन्तर्गत स्पष्ट किया है। कवि ने स्थान-स्थान पर रामायण, महाभारत के पात्रों तथा घटनाओं का उल्लेख किया है साथ ही अभिज्ञानशकुन्तलम्, बृहत्कथा, कामसूत्र, अलंकार, छन्दोविंचिति आदि का उल्लेख किया है किन्तु इन ग्रन्थों के समय के आधार पर सुबन्धु के काल का निश्चय करना सुकर नहीं है। उनकी पूर्ववर्ती सीमा के निर्धारण में सबसे महत्वपूर्ण तथा जटिल तथ्य सुबन्धु द्वारा विक्रमादित्य का दसवें प्रस्तावना श्लोक में वर्णन करना है। भारतीय इतिहासकारों के लिये विक्रमादित्य स्वयं

एक समस्या रहे हैं। किन्तु फिर भी पुरातात्त्विक साक्ष्यों तथा विविध तथ्यों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि कवि द्वारा वर्णित राजा विक्रमादित्य वस्तुतः गुप्तवंशीय राजा विक्रमादित्य है। कवि द्वारा राजा विक्रमादित्य की मृत्यु पर दुःख प्रकट करना उसके पुत्र गोविन्दगुप्त द्वारा गुप्त काल के अन्तिम दिनों में किये अत्याचारों के परिणामस्वरूप है।

बाह्य साक्ष्यों के अन्तर्गत बाणभट्ट तथा सुबन्धु में कौन पूर्ववर्ती है तथा कौन परवर्ती इस विवाद को विद्वानों के मतों द्वारा सुलझाने का प्रयत्न किया है। कुछ विद्वान सुबन्धु को परवर्ती सिद्ध करते हैं तो कुछ बाणभट्ट को। किन्तु दोनों कवियों के ग्रन्थों के अध्ययन के पश्चात् विद्वानों का यह मत है कि सुबन्धु ही बाणभट्ट से पूर्व हुए। साथ ही बाणभट्ट का समय एवं उनके आश्रयदाता हर्षवर्धन का समय स्पष्ट होने से भी इस मत की पुष्टि हो जाती है। इस प्रकार सुबन्धु की पूर्ववर्ती सीमा 385ई० से 465ई० के मध्य तथा परवर्ती सीमा छठी शताब्दी अथवा इससे पूर्व निर्धारित हो जाती है।

द्वितीय अध्याय उदयन और वासवदत्ता के पारम्परिक आख्यान के सन्दर्भ में सुबन्धु के इतिवृत्त के पर्यालोचन से संबंधित है। सुबन्धु द्वारा कृति का नाम 'वासवदत्ता' रखने से यह सम्भावना प्रबल हो जाती है कि अवश्य ही इस कथा का सम्बन्ध उदयन तथा वासवदत्ता के पारम्परिक आख्यान से है। किन्तु ऐसा नहीं है। उदयन पुरुवंशी राजा के रूप में पुराणों में वर्णित तो है ही, साथ ही उदयन तथा वासवदत्ता के पारम्परिक आख्यान को आधार बनाकर जैन तथा बौद्ध धर्म में ग्रंथों की रचना की गयी है। अतः यह स्पष्ट है कि उदयन तथा वासवदत्ता की प्रणय गाथा

तत्कालीन कवियों में अत्यन्त प्रसिद्ध थी। सुबन्धु से पूर्व हुए गुणादय तथा भास ने इस पूर्व प्रचलित आख्यान को ही अपना आधार बनाया था। बृहत्कथा के लुप्त हो जाने से उसके तीन संस्करणों में से विद्वानों को 'कथासरित्सागर' ही अभीष्ट रही है क्योंकि यह मूलकथा के अधिक समीप है। इसके रचयिता सोमदेव हैं। अतः कथासरित्सागर के कथानक की विस्तृत चर्चा प्रस्तुत अध्ययन में की है। कथासरित्सागर के पश्चात् भास प्रणीत 'स्वप्नवासवदत्तम्' की कथा को प्रस्तुत किया है। इस नाटक में उदयन के द्वितीय विवाह से सम्बन्धित कथानक वर्णित है। इसके पश्चात् सुबन्धु कृत वासवदत्ता के कथानक पर प्रकाश डाला गया है जिससे स्पष्ट हो जाता है कि कवि मात्र पात्रों के नामों के लिये ही पूर्व ग्रन्थों का ऋणी है। कथानक तो कवि के मस्तिष्क की उपज है। इस तथ्य को 'कथा का मूल स्रोत' इस उपशीर्षक के अन्तर्गत और अधिक स्पष्ट किया है। सुबन्धु के पश्चात् हुए श्रीहर्ष की रचनाओं प्रियदर्शिका तथा रत्नावली का वर्णन इसी उद्देश्य से किया है कि पूर्वापर किसी भी रचना से गद्यकार की कथा का कोई साम्य नहीं है।

तृतीय अध्याय के अन्तर्गत गद्यकाव्य के प्रतिमानों के विनिश्चय सुबन्धु की अधमर्णता तथा उत्तमर्णता का विवेचन प्रस्तुत करते हुए सुबन्धु विरचित 'वासवदत्ता' कथा है अथवा आख्यायिका इस बात पर प्रकाश डाला है। सर्वप्रथम अध्याय में गद्य की विशिष्टता का उल्लेख करते हुए गद्य के विकास का विवरण प्रस्तुत किया है। गद्य के दो रूपों वैदिक तथा लौकिक का उल्लेख किया है। वैदिक गद्य में संहिताओं, ब्राह्मणों, आरण्यकों, उपनिषदों तथा सूत्र ग्रन्थों का समावेश होता है। इन के अतिरिक्त पुराणों, शिलालेखों, दर्शन तथा अन्य ग्रन्थों में उपलब्ध गद्य को

उदाहरण स्वरूप प्रस्तुत किया है। तत्पश्चात् गद्य के स्वरूपगत तथा बन्धगत भेदों का पृथक्-पृथक् उल्लेख किया है। काव्यशास्त्रीय आचार्यों ने आख्यायिका का लक्षण इस प्रकार किया है—आख्यायिका में कवि स्वयं अपने वंश का परिचय देता है। इसमें विषय के अनुकूल शब्द, अर्थ तथा समास का समावेश होता है। यह उच्छवासों में विभक्त तथा उत्तम वर्ण्य वस्तु वाली होती है। आख्यायिका में कथावस्तु के आधार पर आर्या, अपरवक्त्र, पुष्पिताग्रा में से किसी एक छन्द का अथवा प्रायः मालिनी छन्द का प्रयोग किया जाता है।

कथा के प्रारम्भ में कवि श्लोकों द्वारा इष्टदेव तथा गुरुओं के प्रति नमस्कार का वर्णन करता है। कथा कन्या प्राप्ति रूपी अथवा राज्य प्राप्ति रूपी फल वाली होती है। प्रारम्भ में किसी अन्तर कथा को रखना चाहिये, जिसमें मुख्य कथा अच्छी प्रकार संकेतित की गयी हो। कथा शृंगार रस युक्त होती है। संस्कृत भाषा में यह गद्य में रचित होती है किन्तु संस्कृतेतर यथा प्राकृत आदि भाषाओं में इसे पद्य अर्थात् गाथा छन्द में भी लिखी जा सकती है। प्रस्तुत लक्षणों तथा अन्य विद्वानों के मतानुसार 'वासवदत्ता' को आख्यायिका की अपेक्षा कथा की श्रेणी में रखना अधिक उपयुक्त है। 'वासवदत्ता' को कथा सिद्ध करने के पश्चात् आधुनिक परिप्रेक्ष्य में 'वासवदत्ता' को उपन्यास रूप में स्वीकार किया गया है। बलदेव उपाध्याय तथा कलानाथ शास्त्री द्वारा उपन्यास के तत्त्वों के आधार पर वासवदत्ता को उपन्यास ही माना है।

चतुर्थ अध्याय 'वासवदत्ता' के कलापक्ष से सम्बन्धित है। इस अध्याय में सुबन्धु द्वारा प्रयुक्त अलंकार, शैली, भाषा एवं चरित्र-चित्रण आदि का विवरण दिया है।

सुबन्धु ने शब्दालंकारों एवं अर्थालंकारों का प्रयोग अत्यन्त कुशलता से किया है। श्लेष अलंकार के प्रति उनका आग्रह तो कथा में सर्वत्र दर्शनीय है ही साथ ही कवि ने उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक, अतिशयोक्ति, दृष्टान्त, स्वाभावोक्ति, समासोक्ति, निदर्शना, अप्रस्तुतप्रशंसा, परिकर, परिसंख्या, अनुमान, आदि अलंकारों का भी वर्णन किया है। शैली की दृष्टि से सुबन्धु कृत वासवदत्ता उल्लेखनीय है।

सुबन्धु ने सर्वत्र पृथक्-पृथक् रीतियों का प्रयोग किया है। गौड़ी रीति प्रधान होते हुए भी वैदर्भी, पांचाली एवं लाटी रीति के उदाहरण वासवदत्ता में प्राप्त होते हैं। जिनका वर्णन इस अध्याय के अन्तर्गत किया है। रीति के समान ही विविध गुणों का प्रयोग भी 'वासवदत्ता' कथा की अन्यतम विशिष्टता है। गौड़ी रीति का मुख्य रूप से वर्णन होने के कारण 'वासवदत्ता' में ओज गुण की प्रधानता है। इसके अतिरिक्त माधुर्य तथा प्रसाद गुण के उदाहरण भी प्रचुर मात्रा में उपलब्ध होते हैं।

सुबन्धु का भाषा पर पूर्ण अधिकार दृष्टिगत होता है। उन्होंने अनेक प्रचलित, अप्रचलित, विलुप्त एवं सरल दोनों प्रकार के शब्दों का प्रयोग किया है। उनके गद्य में चूर्णक, उत्कलिकाप्राय आदि गद्यरूपों का समावेश अत्यन्त सरलता एवं उत्कृष्टता के साथ प्राप्त होता है। तत्पश्चात् सुबन्धु द्वारा चित्रित पात्रों के चरित्रों को नाट्यशास्त्रीय लक्षणों के आधार पर उद्घाटित किया है। वासवदत्ता कथा का नायक कन्दर्पकेतु धीरोदात्त कोटि का नायक है तथा कथा की नायिका वासवदत्ता परिस्थितियों के अनुकूल प्रथमतः परकीया नायिका तथा अन्ततः स्वकीया मुग्धा नायिका की श्रेणी में आती है। इनके अतिरिक्त मकरन्द, राजा चिन्तामणि, राजा शृंगारशेखर, रानी अनंगवती, मानवेतर पात्रों में शुक, सारिका एवं तमालिका नामक

पात्रों का उल्लेख प्राप्त होता है। इसके अतिरिक्त कवि ने कुछ पात्रों का मात्र नामोल्लेख ही किया है। कथा के पात्रों तथा घटनाओं में सामंजस्य होना आवश्यक है। अन्यथा कथानक अव्यवस्थित हो जाता है। अतः उदाहरण सहित यह इतिवृत्त तथा चित्रणों में तालमेल का वर्णन किया गया है।

पंचम अध्याय में कथानक के मौलिक अभिधेय पर चर्चा करते हुए कथा में विभिन्न रसों की सिद्धि पर प्रकाश डाला है। कथानक के मौलिक अभिधेय का कथन करने के पश्चात् सर्वप्रथम रस शब्द का विभिन्न अर्थों में प्रयोग बताया है। साहित्य की किसी भी विधा में रस का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है। ऋग्वेद, उपनिषद्, पुराणों तथा अन्य ग्रन्थों में रस का प्रयोग उपलब्ध होता है। तत्पश्चात् रसों की संख्या से सम्बन्धित विभिन्न मतों का उल्लेख किया है। सुबन्धु ने शृंगार एवं उसके दो भेदों संयोग तथा वियोग, वीर, रौद्र, हास्य, भयानक, अद्भुत, और वीभत्स रसों का यथोचित् प्रयोग किया है। किन्तु इनमें भी विप्रलम्भ शृंगार रस का वर्णन कवि ने उत्कृष्टता के साथ किया है।

षष्ठ अध्याय का शीर्षक—‘वासवदत्ता में प्रतिबिम्बित समाज एवं संस्कृति’ है। वासवदत्ता कथा में वर्ण व्यवस्था, आश्रम व्यवस्था के संकेत प्राप्त होते हैं। जिनसे यह स्पष्ट हो जाता है कि तत्कालीन समाज में सुव्यवस्थित जीवन पद्धति प्रचलित थी। कथाकार ने तत्कालीन समय में प्रचलित विभिन्न धर्मों की चर्चा की है। कथा के अनुशीलन से अवतारवाद के विषय में ज्ञात होता है। कवि ने ब्रह्मा, विष्णु महेश, सरस्वती, लक्ष्मी, पार्वती, इन्द्र, सूर्य आदि देवताओं तथा उनके विविध पर्यायवाची

नामों का उल्लेख किया है। इसी प्रकार कवि ने तत्कालीन शुभाशुभ शकुनों की भी चर्चा की है।

सुबन्धु के व्यापक भौगोलिक ज्ञान का परिचय वासवदत्ता कथा से प्राप्त होता है। कवि ने प्रसिद्ध पर्वतों, नदियों, नगरों का वर्णन किया है। इसी प्रकार तत्कालीन राजनीतिक, आर्थिक, स्थितियों एवं वस्त्राभूषण भोजन, रोग तथा औषधियों आदि का ज्ञान भी वासवदत्ता कथा के अनुशीलन से प्राप्त होता है, इसको दर्शाया है।

सप्तम अध्याय 'उपसंहार' में अनुसन्धान के फलस्वरूप प्राप्त हुए निष्कर्षों को प्रस्तुत किया है।

इसके पश्चात् सन्दर्भ ग्रन्थ सूची में शोध कार्य में सहायक ग्रन्थों का उल्लेख किया है।

शिल्पी
12-07-2004



Subandhu - Krta Vasavadatta: Eka Alocanatmak Adhyayana

A Critical Study of Subandhu's Vasavadatta

THESIS SUBMITTED FOR THE DEGREE OF

Doctor of Philosophy

IN

Sanskrit

BY

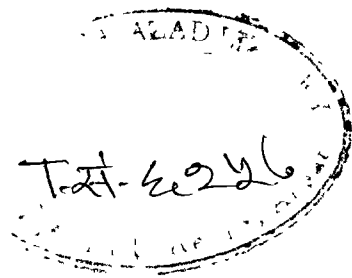
Miss Shilpi

Under the Supervision of

Prof. (Mrs.) Salma Mahfooz

DEPARTMENT OF SANSKRIT
ALIGARH MUSLIM UNIVERSITY
ALIGARH (INDIA)

2004



T6257

Dr. (Mrs.) Salma Mahfooz

M.A. (Hindi); M.A., Ph.D. (Sanskrit)

Professor in Sanskrit
(Former Chairperson, Department of Sanskrit)



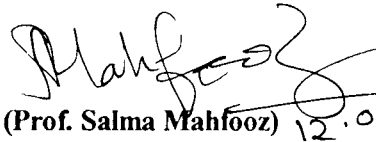
WOMEN'S COLLEGE
ALIGARH MUSLIM UNIVERSITY
ALIGARH- 202 002, (U.P.)
INDIA

CERTIFICATE

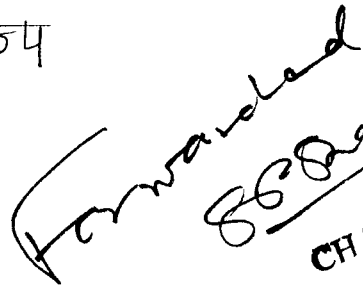
This is to certify that **Ms. Shilpi** has completed her Ph.D. thesis entitled "**Subandhu- Krta Vasavadatta: Eka Alocanatmak Adhyayana**", under my supervision and guidance. It is her own work and to the best of my knowledge it has not been submitted for the award of any degree in this university or anywhere else.

It is further certified that she has given me an attendance of more than 24 months.

I am satisfied with the efforts made by her in this connection.


(Prof. Salma Mahfooz) 12.07.2004

Supervisor


8600000000
12/7/04
CHAIRMAN
Dept. of Sanskrit
Aligarh Muslim University

प्राक्कथन

संस्कृत साहित्य में दो प्रकार की काव्यधाराएँ प्राप्त होती हैं—दृश्य काव्य तथा श्रव्य काव्य। श्रव्य काव्य के पुनः तीन भेद किये गये हैं—पद्य, गद्य तथा मिश्र। संस्कृत साहित्य में पद्य के समान ही गद्य में कवियों ने उत्कृष्ट रचनाएँ की हैं।

कविवर सुबन्धु संस्कृत गद्य के प्रथम कवि माने जाते हैं। यद्यपि वैदिक काल में ही गद्य का प्रादुर्भाव हो चुका था, जो क्रमशः ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद् तथा दार्शनिक ग्रन्थों में पल्लवित एवं पुष्पित होते हुए सुबन्धु के काल तक पूर्ण विकसित हो चुका था।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध का शीर्षक—‘सुबन्धु कृत वासवदत्ता : एक आलोचनात्मक अध्ययन’ है। प्रारम्भ से ही मेरी रुचि गद्य साहित्य में रही है। अतः मैंने इस विषय का चयन किया। यह कोई अछूता विषय नहीं है। किन्तु मेरी शोध निर्देशिका प्रोफेसर (श्रीमती) सलमा महफूज़ को इस ~~विषय~~ ^{विषय} में कुछ नवीन संभावनाएँ नज़र आयीं और उन्होंने इस विषय पर मुझे शोध कार्य करने के लिये प्रेरित किया। अध्ययन को सरल व सहज बनाने के लिये प्रस्तुत विषय को सात अध्यायों में विभाजित किया गया है तथा शोध-प्रबन्ध के अन्त में सन्दर्भ ग्रन्थ सूची है।

प्रथम अध्याय के अन्तर्गत मैंने सर्वप्रथम सुबन्धु के देश-काल निर्णय एवं व्यक्तिगत जीवन पर प्रकाश डाला है। द्वितीय अध्याय में उदयन और वासवदत्ता के पारम्परिक आख्यान के सन्दर्भ में सुबन्धु के इतिवृत्त का पर्यालोचन प्रस्तुत किया है। तृतीय अध्याय का शीर्षक है—गद्यकाव्य के प्रतिमानों के विनिश्चय सुबन्धु की अधमर्णता तथा उत्तमर्णता। चतुर्थ अध्याय में वासवदत्ता के कला पक्ष-अलंकार

योजना, शैली वैविध्य, इतिवृत्त और चित्रणों में तालमेल, भाषा मीमांसा, चरित्र चित्रण विधि की चर्चा की है। पंचम अध्याय में वासवदत्ता के भावपक्ष—कथानक का मौलिक अभिधेय, अभिधेय में भावानुप्रवेश योजना ; रससिद्धि का विवरण दिया है। षष्ठ अध्याय के अन्तर्गत वासवदत्ता में प्रतिबिम्बित समाज एवं संस्कृति का वर्णन किया है। सप्तम अध्याय 'उपसंहार' है।

मेरा यह सौभाग्य है कि इस शोधकार्य का सम्पादन परम स्नेहमयी प्रोफ़ेसर (श्रीमती) सलमा महफूज़ के निर्देशन में हुआ है। समय—समय पर जहाँ कहीं भी मेरे शोधकार्य में बाधा उत्पन्न हुई, उनके वैदुष्यपूर्ण परामर्शों तथा स्नेह ने सदैव मेरा मार्ग प्रशस्त किया। शोध कार्य से सम्बन्धित परिश्रम के कारण तथा निराशा के क्षणों में मेरा उत्साहवर्धन करने के लिए मैं सदैव उनकी ऋणी रहूँगी। अपने व्यस्त क्षणों के मध्य पर्याप्त समय तथा संशोधन हेतु मैं हृदय से उनके प्रति कृतज्ञता व्यक्त करती हूँ। इस शोध प्रबन्ध में जो कुछ उनकी विद्वत्ता, स्नेह, आशीर्वाद तथा सहयोग का परिणाम है। उनके बिना यह शोध कार्य पूर्ण करने में मैं सक्षम नहीं थी।

परम आदरणीय प्रोफ़ेसर महफूज़ुर्रहमान भूतपूर्व विभागाध्यक्ष एवं संकायाध्यक्ष वाणिज्य विभाग, अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय अलीगढ़ के प्रति मैं सदा आभारी रहूँगी, जिन्होंने शोधकार्य एवं व्यावहारिक समस्याओं का समाधान किया तथा सदैव उन्नति के पथ पर अग्रसर होने के लिये मुझे प्रेरित किया।

यह शोध प्रबन्ध मेरे पूज्य नाना—नानी श्री सूर्य गुप्ता तथा स्वर्गीय श्रीमती शकुन्तला गुप्ता के प्रति समर्पित है। इनका आशीर्वाद सदैव मेरे साथ रहा है। अध्ययन के प्रति मेरी रुचि मेरी मौसियों और मेरे दोनों मामा के अथक प्रयासों के

परिणामस्वरूप है। वे मेरे लिए अविस्मरणीय हैं।

प्रोफ़ेसर (श्रीमती) आजरमी दुख्त सफ़वी, वर्तमान अध्यक्ष—फ़ारसी विभाग एवं कलासंकायाध्यक्षा, अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय, अलीगढ़ के प्रति भी मैं आभारी हूँ। पी० एच० डी० में नामांकन होते ही मुझे वीमेन्स कॉलेज, अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय, अलीगढ़ में लगभग दो वर्ष बी० ए० कक्षा को पढ़ाने का सुअवसर प्राप्त हुआ उस बीच प्रोफ़ेसर (श्रीमती) आमिना किशोर, प्रिन्सिपल वीमेन्स कॉलेज, अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय, अलीगढ़ ने प्रत्येक क्षण मेरा उत्साहवर्धन किया। अतः मैं उनके प्रति हृदय से कृतज्ञता व्यक्त करती हूँ।

इस विषय का चयन करने के लिये मुझे प्रेरित करने हेतु मैं प्रोफ़ेसर एस० पी० सिंह, भूतपूर्व अध्यक्ष—संस्कृत विभाग, भूतपूर्व कला संकायाध्यक्ष, अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय, अलीगढ़ तथा उनकी पत्नी श्रीमती पार्वती देवी के प्रति हृदय से आभारी हूँ। उनके आशीर्वाद तथा कृपापूर्ण सुझावों से ही यह शोधकार्य सफल हो सका है।

वर्तमान विभागाध्यक्ष प्रोफ़ेसर एस० पी० शर्मा तथा प्रोफ़ेसर एस० डी० कौशिक के प्रति मैं आभारी हूँ जिन्होंने अपने सुझावों से मेरा मार्गदर्शन किया। डा० ख़ालिद बिन यूसुफ़ ख़ान, रीडर—संस्कृत विभाग, अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय, अलीगढ़ के प्रति कृतज्ञता प्रकट करना आवश्यक समझती हूँ जिन्होंने मेरी शोधकार्य सम्बन्धी समस्याओं का निवारण किया।

मैं अपनी माँ श्रीमती सरोज गुप्ता, पिता श्री राकेश वाष्णीय, अनुजा ऋचा तथा अन्य परिवारीजनों की ऋणी हूँ जिन्होंने निराशा के प्रत्येक क्षण में मेरा साथ दिया तथा मेरा मनोबल बढ़ाया।

मैं सेमीनार प्रभारी नुज़हत किदवई के प्रति अपना आभार व्यक्त करती हूँ जिन्होंने सुगमता से पुस्तकें प्राप्त करने में मेरी हर संभव सहायता की साथ ही अन्य समस्याओं का भी समाधान किया।

मौलाना आज़ाद पुस्तकालय, अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय, अलीगढ़; मालवीय पुस्तकालय, अलीगढ़; वीमेन्स कालिज, अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय, अलीगढ़; दिल्ली विश्वविद्यालय के पुस्तकालय एवं अखण्डानन्द पुस्तकालय, वृन्दावन से मैंने भरपूर लाभ उठाया है। मैं इन संस्थानों के अधिकारियों की अत्यधिक अनुगृहीत हूँ।

मैं अपने सीनियर डा० हिफजुर्रहमान, गीतांजली दीदी, ताबिन्दा दीदी, सखियों रीना वर्मा, नीतू शर्मा तथा असरा को सहयोग देने हेतु धन्यवाद देती हूँ।

संस्कृत विभाग में कार्यरत नज़रे आलम भाई तथा जंगबहादुर भाई को अनेक प्रकार से सहयोग देने के लिए उन्हें धन्यवाद देती हूँ।

शुद्ध एवं स्पष्ट टंकण हेतु बहन सदृश अनुराधा त्रिपाठी तथा भाई विशालमणि त्रिपाठी तथा अनेकविध सहयोग के लिए उनकी माता श्रीमती सुशीला देवी के प्रति आभार प्रकट करती हूँ।

संभावित कमियों तथा टंकण सम्बन्धी अशुद्धियों के लिये मैं क्षमाप्रार्थी हूँ।

सुधीजनकृपाकांक्षिणी

शिल्पी
शिल्पी

विषयानुक्रमणिका

अध्याय		पृ० सं०
प्रथम अध्याय	सुबन्धु का देश-काल निर्णय एवं व्यक्तिगत जीवन।	1-46
द्वितीय अध्याय	उदयन और वासवदत्ता के पारम्परिक आख्यान के सन्दर्भ में सुबन्धु के इतिवृत्त का पर्यालोचन	47 -78
तृतीय अध्याय	गद्य काव्य के प्रतिमानों के विनिश्चय सुबन्धु की अधमर्णता तथा उत्तमर्णता	79-106
चतुर्थ अध्याय	वासवदत्ता का कलापक्ष-अलंकार योजना, शैली वैविध्य, इतिवृत्त और चित्रणों में तालमेल ; भाषा मीमांसा, चरित्र-चित्रण विधि	107-159
पंचम अध्याय	वासवदत्ता का भावपक्ष-कथानक का मौलिक अभिधेय ; अभिधेय में भावानुप्रवेश योजना ; रससिद्धि	160-206
षष्ठ अध्याय	वासवदत्ता में प्रतिबिम्बित समाज एवं संस्कृति	207-250
सप्तम अध्याय	उपसंहार-अनुसंधान के निष्कर्ष	251-256
	सन्दर्भ ग्रन्थ सूची	257-274

सुबन्धु कृत वासवदत्ता : एक आलोचनात्मक अध्ययन

Subandhu-Krta Vasavadatta :
Eka Alocanatmak
Adhyayana

प्रथम अध्याय

सुबन्धु का देश-काल निर्णय एवं
व्यक्तिगत जीवन

प्रथम अध्याय

सुबन्धु का देश—काल निर्णय एवं व्यक्तिगत जीवन

संस्कृत साहित्य के कवियों के विषय में सबसे बड़ी समस्या यह है कि उनके विषय में पर्याप्त सामग्री उपलब्ध नहीं है और जो सामग्री उपलब्ध भी है उसकी प्रामाणिकता के सम्बन्ध में विद्वानों में मतभेद है। जिसके कारण किसी भी निष्कर्ष पर पहुँचना अत्यन्त कठिन हो जाता है। इसके अतिरिक्त बहुत से प्राचीन साक्ष्यों के नष्ट प्राय हो जाने से यह समस्या और अधिक जटिल हो जाती है। सुबन्धु के विषय में भी यह समस्या उपस्थित होती है। सुबन्धु के वंश, माता—पिता के सम्बन्ध में कोई प्रामाणिक साक्ष्य उपलब्ध नहीं है जिससे उनके वंश परिचय के विषय में कुछ ज्ञात हो सके। मात्र अनुमानों के आधार पर ही उनके वंश आदि का उल्लेख किया गया है। कवि ने स्वयं भी अपना परिचय 'वासवदत्ता' कथा में नहीं दिया है। अतः उनके जीवन, शिक्षा—दीक्षा आदि के विषय में कोई सूचना नहीं मिल पाती। कथाकार सुबन्धु के जन्म—स्थान, काल आदि के विषय में तो मतभेद है ही किन्तु उनके नाम के विषय में भी मतभेद है ; क्योंकि सुबन्धु नाम से अन्य कवियों का भी उल्लेख प्राप्त होता है। उपलब्ध साक्ष्यों के आधार पर सुबन्धु के नाम, जन्म—स्थान तथा समय का विवरण इस प्रकार है—

नाम—

संस्कृत साहित्य में सुबन्धु नाम के कई कवियों का उल्लेख मिलने से कथाकार सुबन्धु के विषय में निश्चय करना कठिन हो जाता है। सर्वप्रथम ऋग्वेद में उपलब्ध एक ऋचा से सुबन्धु के विषय में ज्ञात होता है—

अग्ने त्वं नो अन्तम उत्त त्राता शिवो भवा वरुध्यः ।

वसुरग्निर्वसुश्रवा अच्छा नक्षि द्युमत्तम रयिं दा ।।¹

प्रस्तुत ऋचा से यह स्पष्ट हो जाता है कि सुबन्धु गोपायन आदि चार ऋषियों में से एक हैं—

अग्ने त्वं नः ।। गौपायनाः बन्धुः सुबन्धु श्रुत बन्धुर्विप्रबन्धुरिति क्रमेण चतसृणामृषयः ।। अग्ने त्वम् । अस्माकम् । अन्तिकमः । अपि च । रक्षिता । भव । कल्याणकारी गृहहितः ।²

ऋग्वेद सर्वानुक्रमणी में सुबन्धु गोपायन तथा लोपायन के पुत्र तथा चार ऋषियों में से एक ऋषि के रूप में वर्णित हैं—

अग्ने त्वं गौपायना लौपायना वा बन्धुः सुबन्धुः श्रुतबन्धुर्विप्रबन्धुश्चैकर्चा द्वैपदम् ।³

सुबन्धु से संबंधित एक पौराणिक कथा बृहद्देवता में वर्णित है जो इस प्रकार है—

जीवावृत्तिं सबन्धो वा यदि वा मनसः स्तवः ।

राजासमातिरैक्ष्वाको रथप्रोष्ठः पुरोहितान् ।।

व्युदस्य बन्धुप्रभृतीन् द्वैपादा ये त्रिमण्डले ।

दौ किराताकुली नाम ततो मायाविनौ द्विजौ ।।

असमातिः पुरोऽधत्त वरिष्ठौ तौ हि मन्यते ।

1 ऋग्वेद, 5/24/1

2 ऋग्वेद, 5/24/21, दीपिका, पृ० -87

3 ऋग्वेद सर्वानुक्रमणी, 5/24

तौ कपोतौ द्विजौ भूत्वा गत्वा गौपायनानभि ।।
 मायाबलाच्च योगाच्च सुबन्धुमभिपेततुः ।
 स दुःखादभिघाताच्च मुमोह च पपात च ।।
 तौ ततोऽस्यसुमालुच्य राजानमभिजग्मतुः ।
 ततः सुबन्धौ पतिते गतासौ भ्रातरस्त्रयः ।।
 जेपुः स्वस्त्ययनं सर्व्वं मे ति गौपायनाः सह ।
 मनश्चावर्तयन्तोऽस्य सूक्तं य दिति तेऽभ्ययुः ।।
 जेपुश्च भैषजार्थं यं प्रतारी ति परन्ततः ।
 सूक्तस्याद्यस्तु चस्त्वच निऋते रपनोदनः ।।
 त्रयः पादा मोस्वि ति तु सौम्या नैऋत उत्तमः ।
 ऋक् सौम्या नैऋती चैषा असुनीते स्तुतिः परा ।।
 हवे त्वानुमतं पादमन्त्यं यास्कस्तु मन्यते ।
 भूद्यौः सोमश्च पूषा च खं पथ्या स्वस्तिरेव च ।।
 सुबन्धोरेव शान्त्यर्थं पुनर्न इति तु स्मृता ।
 तृचः शमिति रोदसीरैन्द्रोऽर्द्धर्चः स मित्यृचि ।।
 रपसो नाशनार्थं वै तुष्टुवुस्त्वथ रोदसी ।
 रप इत्यभिधानन्तु गदितं पापकृच्छ्रयोः ।।
 ऋग्मिरे ति चतसृभिस्तत ऐक्ष्वाकुमस्तुवन् ।
 इन्द्रक्षत्रे तृचा चास्य स्तुत्वाशंसिषुराशिषः ।।
 अगस्त्यस्ये ति माता च तेषां तुष्टाव तं नृपम् ।

स्तुतः स राजा सब्रीडस्तथौ गौपायनानभि ।।
 सूक्तेनाथ स्तुव न्नग्निं द्वैपदेन यथाचिषु ।
 अग्निरित्यब्रवीदेता नयमन्तः परैत्वसून् ।।
 सुबन्धुरस्य चैक्षाको मया गुप्तो हितार्थिना ।
 सुबन्धवे प्रदायासून् जीवत्युत्वका च पावकः ।।
 स्तुतो गौपायनैः प्रीतो जगाम चिदिवं प्रति ।
 अयं माते ति हृष्टास्ते सुबन्धोरसुमांकयन् ।।
 शरीरमभिनिर्दिश्य सुबन्धोः पतितं भुवि ।
 सूक्तशेषं जगुश्चास्य चेतसो धारणय ते ।।
 लब्धासुंचाय मित्यस्यां पृथक्चारिणभिरस्पृशन् ।
 षडिदं वैश्वदेवानि द्वितीयेऽङ्गिरसां स्तुतिः ।।
 जन्म कर्म च सख्यं च इन्द्रेण सह कीर्तयन् ।
 स्तौति प्रनूनमित्याद्याः सावर्ण्यस्य मनोः स्तुतिः ।।
 तस्यैव चायुषोऽर्थाय देवान् स्तौत्यभ्ययादृषिः ।
 सूत्रामाणं महिमूषु दक्षस्येत्यदितेः स्तुतिः ।।
 पथ्यास्वस्ति स्वस्ति ऋद्धिस्वस्ति तो मरुतां स्तुतिः ।
 मारुतीमृचमन्वाहेत्युक्तमाध्वर्य्वेषु हि ।।'

प्रोफेसर मानसिंह के अनुसार चौदहवीं शताब्दी या पंद्रहवीं शताब्दी के लगभग
 Su-ba-an-di अथवा Su-ba-an-du इस रूप में Tell-el-Amarna Tablets में प्राप्त

होता है।¹ 'अवन्ति सुन्दरी कथा' में सुबन्धु तथा बिन्दुसार का उल्लेख मिलता है—

सुबन्धु. किल निष्क्रान्तो बिन्दूसारस्य बन्धनात्।

तस्यैव हृदयं बद्ध्वा वत्सराजो.....।।

प्रो० मानसिंह द्वारा प्रस्तुत श्लोक के सन्दर्भ में ए० रंगस्वामी सरस्वती के मत को उद्धृत किया गया है। ए० रंगस्वामी सरस्वती 'वत्सराजो' के स्थान पर 'वत्सराजकथा' का प्रयोग करते हैं। इस श्लोक से यह प्रकट होता है कि सुबन्धु बिन्दुसार के समकालीन थे। बिन्दुसार ने सुबन्धु को बन्दी बना लिया था किन्तु वत्सराज की कथा के श्रवण से मोहित होकर उसने सुबन्धु को मुक्त कर दिया।²

अभिनवगुप्त ने नाट्यशास्त्र पर लिखी अपनी व्याख्या में नाट्यायित के उदाहरण स्वरूप महाकवि सुबन्धु रचित 'वासवदत्तानाट्याधार' नामक नाटक की चर्चा की है। इस उदाहरण से ज्ञात होता है कि बिन्दुसार उदयन की कथा के साक्षी हैं तथा उदयन वासवदत्ता के कार्यों के दर्शक हैं—

तत्रास्य बहुख्यापिनो बहुगर्भस्वप्नायिततुल्यस्य नाट्यायितस्य उदाहरणं महाकवि सुबन्धुनिबद्धो वासवदत्तानाट्य धाराख्यः समस्त एव प्रयोगः।

तत्र हि बिन्दुसारः प्रयोज्यवसतून (—वस्तुनि) उदयनचरिते सामाजिकी कृतोऽपि, उदयनः वासवदत्ताचेष्टितैः एष चार्थः स्वस्मिन् सूत्ररूपके (सर्वस्मिस्तत्र रूपके?) दृष्टे सुज्ञानो भवति। अतिवैतत्यभयात् न प्रदर्शितः। एकस्तु प्रदेश उदाह्रियते। तत्र उदयने सामाजिकी कृते सूत्रधारप्रयोगः—

“तव सुचरितैरेष जयति” इति।

1 Cited by Maan Singh, Subandhu And Dandin . Their Works. Appendix-I, page- 475

2 Cited by Maan Singh, Subandhu And Dandin Their Works. Appendix-I, page-475

ततः उदयनः “कुतो मम सुचरितानि” इति सास्रं विलपति ।

एह्यम्ब किं कटकपिंगलवा चस्तै (वाचकैस्तेः?) भक्तोऽहमभ्यु (रक्यु) दयनः
सुललितानीयः (सुतलालानीयः) यौगन्धरायण ममानयं राजपुत्री (त्रीम्) । हा हर्षरक्षित
गतस्त्वमपि प्रभावः ।। तत्रैव बिन्दुसारः सामाजिकीभूतः परमार्थतामभि (मन्य)मानः ‘धन्या
खल्वप्रलापैः.....श्च सति? प्रतीहारी—(आत्मगतम्) अ अणिद परमत्थकलेन हि अि
इखुदेवो इत्यादि ।’¹

अनंगहर्षमातृराज ने ‘वासवदत्तानाट्यधारा’ को महाकवि सुबन्धु की कृति के
रूप में उल्लिखित किया है² तथा नाट्यायित के उदाहरण रूप में अभिनवगुप्त द्वारा
प्रस्तुत उदाहरण को ही कुछ भिन्नता के साथ वर्णन किया गया है ।³ अभिनवगुप्त ने
अन्यत्र भी इस नाटक का उल्लेख किया है ।⁴

रामचन्द्र तथा गुणचन्द्र ने ‘वासवदत्तानृत्तवार’ नामक नाटक का उल्लेख किया
है । उन्होंने नाटक के अंकों में न रखने योग्य अर्थों को इस प्रकार वर्णित किया है—

अभिघातः प्रधानस्य नेतुर्ग्रन्थयो न कुत्रचित् ।

बन्धः पलायनं सन्धिर्योज्यो वा फललिप्सया ।।⁵

प्रस्तुत कारिका में प्रयुक्त ‘बन्धः’ शब्द पर वृत्ति इस प्रकार है—

‘बन्ध’ इति परैर्ग्रहणम् यथा वासवदत्तानृत्तवारे वत्सराजस्य ।⁶

1 नाट्यशास्त्र पर अभिनवगुप्त की अभिनवभारती नामक व्याख्या, पृ०—172, 173.

2 अनंगहर्षमातृराज कृत तापसवत्सराजचरितम्, भूमिका, पृ०—14

3 अनंगहर्षमातृराज कृत तापसवत्सराजचरितम्, भूमिका, पृ०—15

4 नाट्यायितं च वासवदत्तानाट्याधारे प्रतिपदं दृश्यते,—नाट्यशास्त्रपर अभिनवगुप्त की अभिनवभारती नामक व्याख्या, पृ०—174.

5 नाट्यदर्पण, 1/21

6 नाट्यदर्पण, प्रथम विवेक, वृत्ति, पृ०—49

डॉ० नगेन्द्र द्वारा सम्पादित नाट्यदर्पण की भूमिका में 'मनोरमावत्सराजम्' नामक रूपक के अन्तर्गत उदयन के चरित्र से संबंधित विभिन्न ग्रन्थों की चर्चा करते समय सर्वप्रथम वासवदत्ता का नामोल्लेख किया गया है। उदयन के चरित्र को आधार बनाकर अनेक ग्रन्थों का प्रणयन किया गया। यथा—वासवदत्ता, वीणावासवदत्ता, स्वप्नवासवदत्ता, प्रतियौगन्धरायण, रत्नावली, प्रियदर्शिका, कौशालिका, अभिसारिकावचिंतक, तापसवत्सराजचरितम् तथा उदयनचरित आदि।¹ यहाँ वासवदत्ता के रचयिता का नामोल्लेख न किये जाने से यह सन्देह बना रहता है कि इस प्रसंग में वर्णित वासवदत्ता सुबन्धु विरचित वासवदत्ता कथा ही है अथवा अन्य कोई कृति। क्योंकि इस प्रसंग में प्रायः सभी कृतियाँ रूपकों की कोटि में आती हैं। अतः ऐसा प्रतीत होता है कि 'वासवदत्ता' नामक रूपक का ही यहाँ उल्लेख किया गया है न कि वासवदत्ता कथा का। इस सन्दर्भ में प्रो० मानसिंह का कथन है कि संभवतः यह वही सुबन्धु हैं जिनका उल्लेख दण्डी ने किया है तथा यह वही उदयन तथा वासवदत्ता की कथा है जिसे 'नाट्यायित' के उदाहरण स्वरूप दर्पणकार ने प्रस्तुत किया है। इस रूपक की प्रस्तुति ने बिन्दुसार को प्रसन्न किया तथा उन्होंने सुबन्धु को कारागार से मुक्त कर दिया। सुबन्धु को बन्दी बनाये जाने के कारण के विषय में निश्चित रूप से कुछ ज्ञात नहीं है। बिन्दुसार ने तक्षशिला में हुए एक विद्रोह का दमन किया था। यह असम्भव नहीं है कि सुबन्धु ने इस विद्रोह में भाग लिया हो और बिन्दुसार ने उसे बन्दी बना लिया हो। यह घटना बिन्दुसार के पिता चन्द्रगुप्त तथा चाणक्य द्वारा बन्दी बनाये गये राक्षस की घटना से मिलती है, जिसे कुछ समय

1 नाट्यदर्पण, भूमिका, पृ०-43

पश्चात् मुक्त कर दिया गया और मंत्री के रूप में स्वीकार किया गया। सुबन्धु को बिन्दुसार का सलाहकार कहा गया है।¹

आर्यमज्जूश्रीमूलकल्प में बिन्दुसार का उल्लेख प्राप्त होता है—

अर्धरात्रे रुदित्वासौ पुत्र स्थापयेद् भुवि।

बिन्दुवारसमाख्यातं बाल दुष्टमन्त्रिणम्॥²

प्रो० मानसिंह के विचारानुसार आर्यमज्जूश्रीमूलकल्प में बिन्दुसार के साथ-साथ 'स' अक्षर से नाम शुरू होने वाले ब्राह्मण का उल्लेख प्राप्त होता है। इस मत को और अधिक स्पष्ट करने के लिये उन्होंने के० पी० जायसवाल तथा वी० राघवन के विचारों को प्रस्तुत किया है। के० पी० जायसवाल ने यह सम्भावना व्यक्त की है कि जिस ब्राह्मण का उल्लेख किया गया है वह सुबन्धु ही है—

तस्यापरेण विख्यातः सकाराद्यो द्विजस्तथा।³

विकाराद्य द्विज विष्णुगुप्त के पश्चात् सकाराद्य द्विज अथवा सुबन्धु का वर्णन किया गया है। दोनों ब्राह्मणों को मौर्य राजधानी पुष्पपुर का उल्लिखित किया गया है। वी० राघवन ने इण्डियन हिस्ट्री क्वार्टरली में भ्रष्ट अश को पुनः इस प्रकार प्रस्तुत किया है—

तस्यापरेण विख्यातो विकाराख्यो (विकाराद्यो) द्विजस्तथा।

पुरे (पुरे) पुष्पसमाख्याता (ते) भवितासौ etc.॥⁴

1 Subandhu And Dandin Their Works, Appendix-I, page-476, 477

2 गणपति शास्त्री द्वारा संपादित आर्यमज्जूश्रीमूलकल्प, भाग-3 पृ० 613

3 आर्यमज्जूश्रीकल्प भाग-3, पृ० 653

4 Cited by Maan Singh, Subandhu And Dandin Their Works, Appendix-I, page-477

इसके पश्चात् प्रो० मानसिंह ने बिन्दुसार के समय का निर्धारण किया है। उन्होंने सुबन्धु को बिन्दुसार का सलाहकार कहा है। चन्द्रगुप्त मौर्य के राज्याभिषेक का समय 322 ई० पू० माना जाता है। ब्राह्मण तथा बौद्ध लेखकों ने एकमत से चन्द्रगुप्त का राज्यकाल 24 वर्ष पर्यन्त स्वीकार किया है। इस मत की पुष्टि दण्डी ने भी की है—

मनस्विना चाणक्येन मौर्यचन्द्रगुप्तः प्रतिष्ठापितः तस्यास्य.....वत्स्यति
चतुर्विंशतिवर्षाणि मौर्ये लक्ष्मीः।¹

अतः उसके पुत्र बिन्दुसार का शासनकाल 298 ई० पू० से लेकर 273 ई० पू० के मध्य ही रहा होगा क्योंकि पौराणिक कवियों ने उसका शासनकाल 25 वर्ष ही निश्चित किया है तथा 'अवन्तिसुन्दरी' द्वारा भी इस तथ्य की पुष्टि हो जाती है—

परं पंचविंशतिमचिन्त्यबुद्धिसारो बिन्दुसारः कारयिता राज्यम्।²

बर्मा परम्परा ने उसका समय 27 वर्ष माना है जबकि सिलोन के कथा लेखक उसके शासन की सीमा 28 वर्ष सिद्ध करते हैं। यदि बुद्ध के निर्वाण का समय 486 ई० पू० स्वीकार किया जाये तो बिन्दुसार का शासनकाल 300 ई० पू० से 273 ई० पू० तक होगा। ग्रीक उल्लेखों में उसे अमित्रोखात कहा गया है जो कि 'अमित्रोघातिन' का ही स्वरूप है। अमित्रोघातिन से तात्पर्य है—शत्रुओं का वध करने वाला। बिन्दुसार को यह उपाधि उसके द्वारा अनेक राज्यों पर विजय प्राप्त करने के फलस्वरूप प्राप्त हुई। दण्डी ने उसे साहित्य के आश्रयदाता के रूप में विर्णित किया है।³

1 Cited by Maan Singh, Subandhu And Dandin : Their Works, Appendix-I, page-477

2 Cited by Maan Singh, Subandhu And Dandin : Their Works, Appendix-I, page-477

3 Subandhu And Dandin : Their Works, Appendix-I, page-478

शारदातनय ने नाटक को पाँच भागों—पूर्ण, प्रशान्त, भास्वर, ललित तथा समग्र में विभाजित करने वाले नाट्यशास्त्रीय आचार्य के रूप में सुबन्धु का स्मरण किया है—

सुबन्धुर्नाटिकस्यापि लक्षणं प्राह पंचधा ।

पूर्णं चैव प्रशान्तं च भास्वरं ललितं तथा ॥

समग्रमिति विज्ञेया नाटके पंच जातयः ।¹

डॉ० शशि तिवारी ने सुबन्धु को भरतमुनि का परवर्ती आचार्य बताते हुए नाटककार सुबन्धु तथा वासवदत्ता के रचयिता सुबन्धु में ऐक्य स्थापित किया है।² किन्तु पी० वी० काणे के मतानुसार नाटककार सुबन्धु तथा कथाकार सुबन्धु भिन्न—भिन्न हैं। उनके शब्दों में— महाकवि सुबन्धु तथा नाट्यग्रंथ के लेखक सुबन्धु जिनका उल्लेख भावप्रकाशन में हुआ है, एक ही व्यक्ति हैं यह संदेहास्पद है। संभवतया वे भिन्न हैं।³

इसके अतिरिक्त प्रो० मानसिंह ने बिरवानी कॉपर प्लेट शिलालेख के अन्तर्गत उल्लिखित 486 ई० के लगभग गुप्त युग से संबंधित राजा सुबन्धु की भी चर्चा की है।⁴

यह स्पष्ट ही है कि नाटककार सुबन्धु तथा कथाकार सुबन्धुता भिन्न हैं। संस्कृत साहित्य में सुबन्धु नाम से वर्णित अन्य व्यक्तियों से भी कथाकार सुबन्धु का साम्य नहीं है। निष्कर्ष रूप में प्रो० मानसिंह का कथन प्रशंसनीय है—प्रसिद्ध गद्य काव्य के लेखक मात्र सुबन्धु ही हैं जिन्होंने स्वयं अपना नाम संस्कृत साहित्य में

1 शारदातनय कृत भावप्रकाशन, पृ०—238.

2 डॉ० शशि तिवारी कृत शारदातनय का भावप्रकाशन : विवेचनात्मक अध्ययन, पृ०—12

3 इंद्रचंद्र शास्त्री द्वारा अनुदित पी० वी० काणे कृत संस्कृत काव्यशास्त्र का इतिहास, पृ०—75, 76

4 Subandhu And Dandin Their Works, Appendix-I, Page-478

प्रसिद्ध किया। वह संभवतः 385 से 465 ई० के मध्य हुए तथा चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य द्वितीय के पुत्र कुमारगुप्त के दरबारी कवि थे।¹

जन्म स्थान—

सुबन्धु के नाम की भाँति उनके जन्म स्थान के विषय में भी विद्वानों में अनिश्चय की स्थिति रही है। प्रो० मानसिंह ने इस विषय में इण्डियन हिस्ट्री क्वार्टरली, सितम्बर 1939, पृ० 472-474 में वर्णित प्रो० मनमोहन घोष के विचारों को प्रस्तुत किया है। प्रोफेसर मनमोहन घोष का अनुमान है कि सुबन्धु बंगाल के निवासी थे। इस अनुमान को पुष्ट करने हेतु उन्होंने विभिन्न तर्कों को प्रस्तुत किया है। सर्वप्रथम प्रो० घोष ने सुबन्धु द्वारा प्रयुक्त तालव्य तथा दन्तव्य शब्दों के प्रयोग से उत्पन्न भ्रम को अपने तर्क का आधार बनाकर सुबन्धु को उत्तरीपूर्वी भारत का निवासी सिद्ध करने का प्रयास किया है। प्रो० घोष के विचारानुसार सार तथा शार, इसी प्रकार रसना तथा रशना परस्पर परिवर्तन के योग्य हैं। यह मागधी की विशेषता है। अतः सुबन्धु का जन्म स्थान मागधी भाषा बोलने वाला क्षेत्र अर्थात् उत्तरी-पूर्वी भारत है।

प्रो० मानसिंह ने प्रो० घोष के मत का खण्डन करते हुए कहा है कि सार तथा शार, रसना एवं रशना लौकिक संस्कृत में भी परस्पर परिवर्तन के योग्य हैं तथा इनका अर्थ भी समान ही है। अतः यहाँ दन्तव्य तथा तालव्य शब्दों के उच्चारण में कोई सन्देह नहीं है। सुबन्धु ने कृष्णवर्णीय जाल से शफरी नामक मत्स्य को पकड़ने का उल्लेख किया है। यह बंगाल में अत्यधिक प्रचलित है। अन्यत्र भी कवि ने

¹ Subandhu And Dandin : Their Works, Appendix-I, page-478.

पाटलिका पुष्प की उपमा कामदेव के पलाव से दी है। पलाव शब्द का विकास आधुनिक बंगाली के पालो शब्द से हुआ है जो बाँस से बने हुए प्राचीन उपकरण के लिये प्रयुक्त किया जाता है। इस उपकरण को गहरे जल में मत्स्य पकड़ने के लिये प्रयुक्त किया जाता है जो बंगाल में उपलब्ध है। इस मत का खण्डन करते हुए प्रो० मानसिंह का कथन है कि सुबन्धु द्वारा मत्स्य पकड़ने के उल्लेख से यह निश्चय नहीं किया जा सकता कि वे बंगाल के निवासी हैं। क्योंकि उन्होंने केवल मत्स्य की ही नहीं अन्य जलीय जीव-जन्तुओं की भी चर्चा की है। इसके अतिरिक्त कृष्णवर्णीय जाल से तालाब, नहरों, नदियों में मत्स्य पकड़ना न केवल बंगाल अपितु सम्पूर्ण भारत में एक सामान्य बात है। इसके अतिरिक्त 'पलाव' के अर्थ के संबंध में पाण्डुलिपियों तथा टिप्पणीकारों में मूलग्रंथ तथा अर्थ के विषय में मतैक्य नहीं है। अतः यह निर्विवादित रूप से नहीं कहा जा सकता कि सुबन्धु बंगाली थे। कवि द्वारा इस उदाहरण में उपमा का प्रयोग मात्र पुष्प की लालिमा की प्रशंसा के लिये है न कि उसके रूप से और न ही बाँस की यन्त्रता से।

अपने तृतीय तर्क के लिये प्रो० घोष ने पुनः कवि द्वारा वर्णित 'सुन्दरी' वृक्षों को आधार बनाया है। ये वृक्ष दक्षिणी बंगाल में सुन्दरवन नामक क्षेत्र में प्रचुरता से उत्पन्न होते हैं। 'सुन्दरी' शब्द किसी संस्कृत निघण्टु में उपलब्ध नहीं है। इस विषय में प्रो० मानसिंह का कथन है कि संस्कृत निघण्टु में 'सुन्दरी' वृक्ष का नाम प्राप्त होता है। यह वाचस्पत्य के द्वारा दिया गया है तथा 'मेदिनी' के कवि ने इसको पुल्लिङ्ग रूप 'सुन्दर' के रूप में उद्धृत किया है।

प्रो० मनमोहन घोष के चतुर्थ मत के अनुसार सुबन्धु ने वासवदत्ता की रचना

गौड़ी रीति में की है। जिसकी विशेषतायें बंगाल की राजकुमारी के दरबार से उत्पन्न हुई हैं। किन्तु प्रो० मानसिंह ने इस तर्क का खण्डन करते हुए कहा है कि इस तथ्य के आधार पर कि वासवदत्ता गौड़ी रीति में रचित है अतः वे बंगाल के निवासी हैं ; यह उचित नहीं है। क्योंकि गौड़ी रीति का आश्रय लेकर अन्य कवियों ने भी रचनाएँ की हैं किन्तु वे सभी बंगाल के निवासी नहीं हैं—

One need not to be a Bengali to write in the Gaudi Style. Sanskrit rhetoricians have prescribed different styles to express different types of subject-matter and sentiments. By using Prof. Ghosh's arguments, one can also prove that Banabhatta was also a Bengali, which will be an absurd conclusion.¹

अतः प्रो० घोष के अपने मत के समर्थन में दिये गये तर्क प्रामाणिक नहीं सिद्ध होते।² कुछ विद्वानों ने सुबन्धु को उत्तर-भारतीय स्वीकार किया है। इस मत का आधार बाणभट्ट द्वारा हर्षचरित में प्रस्तुत एक श्लोक है। इस श्लोक में बाणभट्ट ने विभिन्न देशों के कवि-कर्म की विशेषता बतलायी है। पश्चिमोत्तर दिशा के कवि श्लेष प्रधान होते हैं अर्थात् वे द्वयर्थक शब्दों का प्रयोग करते हैं। पश्चिम में केवल अर्थाभिधान ही किया जाता है। अलंकारों द्वारा सौन्दर्य विधान को वे नहीं जानते। दक्षिण के कवि कल्पना प्रधान होते हैं। पूर्व में केवल शब्दाडम्बर का प्रयोग किया जाता है। उनकी भाषा में ओज और समासबाहुल्य होता है।³ स्वयं कवि ने

1 Cited by Maan Singh, Subandhu And Dandin : Their Works, Chapter-1, page-27

2 Subandhu And Dandin : Their Works, Chapter-1, page-23-27

3 श्लेषप्रायमुदीच्येषु प्रतीच्येष्वर्थमात्रकम्।

उत्प्रेक्षा दाक्षिणात्येषु गौडेष्वाक्षरडम्बरः॥

—हर्षचरितम्, प्रस्तावना, श्लोक-7

प्रत्यक्षरश्लेष से युक्त रचना को स्वीकार किया है। प्रारम्भिक श्लोक 13 में सुबन्धु ने कहा है— सरस्वती देवी ने वर प्रदान कर जिस पर अनुग्रह प्रकाशित किया है और जो सज्जनों का एकमात्र बन्धु है। उस सुबन्धु ने प्रत्येक अक्षर में श्लेष द्वारा सप्रपञ्च रचना की निपुणता का परिचायक वासवदत्ता नामक कृति का निर्माण किया है।¹ इस श्लोक में कथाकार ने अपनी रचना को सरस्वती देवी की कृपा से रचित माना है। यहाँ यह तथ्य उल्लेखनीय है कि बिल्हण ने कश्मीर को शारदादेश के नाम से उद्धृत किया है—

सहोदराः कुङ्कुमकेसराणां भवन्ति नूनं कविताविलासाः।

न शारदादेशमपास्य दृष्टिस्तेषां अन्यत्र मया प्ररोहः।²

अर्थात् कवियों के विलास निश्चय ही कुङ्कुम केसरो के सहोदर हैं क्योंकि उनका अंकुर शारदा देश अर्थात् कश्मीर के बिना अन्यत्र नहीं देखा गया है। शारदा, सरस्वती का पर्यायवाची रूप है। अतः विद्वानों का यह अनुमान है कि वे उत्तर-भारत से संबंधित हैं। किन्तु यह मत उचित नहीं है।

आर० जी० हर्षे का मानना है कि सुबन्धु मध्य-भारत के निवासी हैं।³ 'वासवदत्ता' के अनुशीलन से यह ज्ञात होता है कि सुबन्धु को मन्दर, सुमेरु तथा हिमालय आदि पर्वतों विषय में धार्मिक ज्ञान था किन्तु रेवा, यमुना नदी एवं विन्ध्य का वर्णन अत्यन्त स्वाभाविक रूप से किया है। ये वर्णन अत्यधिक स्पष्ट हैं। अतः ऐसा प्रतीत होता है कि सुबन्धु उनसे भली-भाँति परिचित रहे। विन्ध्य पर्वत का

1 सरस्वतीदत्तवरप्रसादश्चक्रे सुबन्धु. सुजनैकबन्धु।

प्रत्यक्षरश्लेषमयप्रबन्धविन्यासवैदग्ध्यनिधिर्निबन्धनम्॥ —वासवदत्ता, प्रस्तावना श्लोक—13

2 बिल्हण कृत विक्रमाकदेवचरितम्, 1/21.

3 Cited by Maan Singh, Subandhu And Dandin Their Works, Chapter-1, page-27

वर्णन उनका सर्वाधिक प्रिय वर्णन है जिसे उन्होंने दो स्थलों पर पूर्ण स्पष्टता के साथ प्रस्तुत किया है। प्रो० मानसिंह के अनुसार पुलिन्द राजा के सौन्दर्य का वर्णन भी विन्ध्य पर्वत में निवास करने वाली पर्वतीय जातियों के सम्बन्ध में उनके ज्ञान को प्रकट करता है। उसी प्रकार शबर सेना का पानी की खोज में पर्वत में भ्रमण करने का उदाहरण उनके विन्ध्य तथा सतपुड़ा पर्वत शृंखला के विशेष ज्ञान को प्रदर्शित करता है क्योंकि मधुर तथा पीने योग्य जल को खोजना अत्यन्त कठिन है। खंजन पक्षी को प्रातःकाल देखने से धन की प्राप्ति होती है इस आशा से किरातों द्वारा नर्मदा नदी के तट को खोदने से यह प्रतीत होता है कि उन्हें उस प्रदेश तथा परम्पराओं का सामान्य ज्ञान था। यही नहीं 'करणैरिवशकुनिनागभद्रबालब-कुलोपेतैर्देवखातैरुपशोभितोपान्तः' में क्षत्रियों के अंगिकुल की गुप्त सूचना को खोजने पर भी यही निष्कर्ष प्राप्त होता है कि वे विन्ध्य पर्वत की भौगोलिक स्थिति से पूर्ण परिचित थे।

बिरवानी कॉपर प्लेट में महाराज सुबन्धु का उल्लेख मिलता है जो गुप्तकाल की ओर संकेत करता है। यह माहिष्मती, जो वर्तमान समय में इन्दौर राज्य में माहेश्वर है, से प्रकाशित लेख के विषय में बताता है। प्रो० मानसिंह ने सुबन्धु के गुरु के रूप में दामोदर का स्मरण किया है। जिसे स्वयं सुबन्धु ने तृतीय प्रस्तावना श्लोक में उद्धृत किया है—

कठिनदामवेष्टनलेखासन्देहदायिनो यस्य ।

राजन्ति बलिविभंगा स पातु दामोदरो भवतः॥¹

1 प० शंकरदेव शास्त्री द्वारा सम्पादित वासवदत्ता, प्रस्तावना श्लोक—3

दामोदर नाम मध्य भारत में प्रचलित है। इस मत के समर्थन में प्रो० मानसिंह ने आर० जी० हर्षे उदयपुर में दक्षिणी राजपूताने के शिलालेख में वर्णित दामोदर कवि का उल्लेख किया है।¹

प्रो० मानसिंह के विचारानुसार सुबन्धु द्वारा मरुभूमि में ढोल पीटकर जल की सूचना देने की प्रथा का वर्णन करने से यह प्रतीत होता है कि यह उनके लिये एक सामान्य बात थी। उन्होंने सुबन्धु को वैष्णव मतावलम्बी स्वीकार किया है। इसका कारण देते हुए प्रो० मानसिंह का कथन है कि तत्कालीन शिलालेखों से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि उस समय अन्य धर्मों की अपेक्षा वैष्णव धर्म मध्य भारत में अधिक प्रचलित था। यही नहीं गुप्त सम्राट् भी वैष्णव मतावलम्बी थे। अतः ऐसा नहीं हो सकता कि सुबन्धु, जो कुमारगुप्त प्रथम के आश्रित माने गये हैं वैष्णव धर्म को न मानते हों। प्रो० मानसिंह ने यह सम्भावना व्यक्त की है कि वे मालवा के निवासी थे। इसका कारण यह है कि कवि ने अन्य देश की स्त्रियों की अपेक्षा मालवा की स्त्रियों का वर्णन अधिक किया है। उन्होंने लाट, कर्णाट, केरल, कुन्तल तथा पुलिन्द सौन्दर्य का वर्णन करते समय बंगाल की स्त्रियों के सौन्दर्य का उल्लेख नहीं किया है। यदि प्रो० मनमोहन घोष के अनुसार सुबन्धु को बंगाली स्वीकार कर लिया जाय तो वे बंगाल की स्त्रियों का सौन्दर्य वर्णन अवश्य करते। इसके अतिरिक्त सुबन्धु ने श्वेतगोधूम अर्थात् सफेद चावल का उल्लेख किया है। चावल का यह प्रकार मालवा प्रदेश में प्रचुरता से उत्पन्न किया जाता है। अतः निष्कर्षतः सुबन्धु को मालवा का

1 Cited by Maan Singh, Subandhu And Dandin : Their Works, Chapter-1, page-28

निवासी कहा जा सकता है।¹

समय—

कथाकार सुबन्धु का काल निर्धारण अत्यन्त विवादित रहा है। बाह्य तथा अन्तः साक्ष्यों के आधार पर सुबन्धु के काल का निश्चय किया जा सकता है।

अन्तः साक्ष्य—

सुबन्धु की पूर्ववर्ती सीमा का निर्धारण वासवदत्ता में प्राप्त अन्तः साक्ष्यों के द्वारा किया जा सकता है। अन्तः साक्ष्यों में एक उल्लेखनीय तथ्य स्वयं कवि ने प्रस्तुत किया है। कवि ने राजा विक्रमादित्य की चर्चा की है—

सा रसवत्ता विहता नवका विलसन्ति चरति नो कंकः।

सरसीव कीर्तिशेषं गतवति भुवि विक्रमादित्ये॥²

अर्थात् जिस प्रकार तालाब के पंकमात्र के शेष रह जाने पर वहाँ के सारस पक्षी अन्तर्हित हो जाते हैं। बगुले भी दिखाई नहीं पड़ते और न कंकपक्षी ही विचरते हैं। उसी प्रकार पृथ्वी पर विक्रमादित्य की कीर्तिमात्र शेष रह जाने पर वह रसिकता नष्ट हो गयी, नये-नये राजा प्रकट हो रहे हैं और कौन किसको नहीं खाता है।

किन्तु प्रस्तुत पद्य के आधार पर सुबन्धु के काल का निर्णय करना अत्यन्त कठिन है क्योंकि भारतीय इतिहास में विक्रमादित्य के समय का निर्धारण करना सरल नहीं है। भविष्य पुराण में विक्रमादित्य का नामोल्लेख किया गया है—

तस्मिन्काले द्विजः कश्चिज्जयंतो नाम विश्रुतः।

1 Cited by Maan Singh, Subandhu And Dandin : Their Works, Chapter -1, page-27-29

2 पं० शंकरदेव शास्त्री द्वारा संपादित वासवदत्ता, प्रस्तावना श्लोक—10

तत्फलं तपसा प्राप्तः शक्रतः स्वर्गहं ययौ ।।

जयंतो भर्तृहरये लक्षस्वर्णेन वर्णयन् ।

भुक्त्वा भर्तृहरिस्तत्र योगारुढो वनं ययौ ।।

विक्रमादित्य एवास्य भुक्त्वा राज्यमकण्टकम् ।।¹

राजा विक्रमादित्य का समय डॉ० सत्यनारायण पाण्डेय तथा डॉ० श्रीकान्त पाण्डेय के अनुसार ई०पू० प्रथम शताब्दी है। इसका कारण बताते हुए उनका मानना है कि यह विक्रमादित्य वस्तुतः उज्जयिनी का वही शासक है जो सोमदेव के 'कथासरित्सागर' की अनेक कथाओं का नायक है। कथासरित्सागर का आधार 'बृहत्कथा' है। बृहत्कथा अप्राप्य है। गुणादय का समय प्रथम शती ई० माना गया है। गुणादय के अतिरिक्त हाल प्रणीत गाथासप्तशती में के 65वें पद में राजा विक्रमादित्य की चर्चा की गयी है। यह ग्रन्थ प्राचीन महाराष्ट्री प्राकृत में निबद्ध है—

संवाहरणसुहरसतोसिदेण देन्तेण लक्खम् ।

चलणेण विक्रमाइच्च चरिअमणसिक्खअतिस्सा ।।

इस की संस्कृत छाया इस प्रकार है—

संवाहनसुखरसतीषितेन ददता तव करे लक्षम् ।

चरणेन विक्रमादित्यचरितमनुशिक्षितं तस्याः ।।

हाल का समय 68 ई० स्वीकार किया गया है। प्रस्तुत उदाहरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि उस समय तक राजा विक्रमादित्य अपनी दानशीलता के लिये प्रसिद्ध

1 भविष्यपुराण, 2/23/14-16

हो चुका था। गुणादय ने भी उसका वर्णन पराक्रमी, दानी, शौर्यपूर्ण तथा प्रजारंजक लोकनायक के रूप में किया होगा। कथासरित्सागर में भी विक्रमादित्य को इसी रूप में चित्रित किया गया है। अतः डॉ० सत्यनारायण पाण्डेय तथा डॉ० श्रीकान्त पाण्डेय के अनुसार प्रथम शती ई० के कवि के लिये नायक रूप में प्रयोज्य विक्रमादित्य अवश्य ही उक्त समय से कम से कम एक शती पूर्व अर्थात् ई०पू० प्रथम शताब्दी में हुआ होगा, यह निश्चित हो जाता है। गुणादय के लगभग 100 वर्ष पूर्व विक्रम सम्वत् का प्रारम्भ 57 ई०पू० में हुआ।¹ इस सम्बन्ध में फर्ग्युसन का मत विचारणीय है। उनके अनुसार विक्रमादित्य का समय 545 ई० है न कि 57 ई०पू०। इसका कारण यह है कि हर्ष विक्रमादित्य नामक राजा ने 54 ई० में कोरुर युद्ध में हूणों पर विजय प्राप्त की थी। किन्तु मैक्समूलर आदि ने इस मत को स्वीकार नहीं किया क्योंकि प्रथमतः तो हर्ष विक्रमादित्य नामका कोई राजा छठी शताब्दी ई० में नहीं हुआ। उस समय का एक मात्र महत्त्वपूर्ण राजा यशोधर्मन था।² ऐसा अनुमान किया जाता है कि विक्रमादित्य ने शकों को परास्त कर विक्रम सम्वत् का प्रारम्भ किया अतः उसे शकारि की उपाधि प्राप्त हुई।³ किन्तु फर्ग्युसन द्वारा उद्धृत हर्ष विक्रमादित्य को हुणारि' कहा जाता था। हूणों तथा शक राजाओं का अन्तर स्पष्ट होने से यह मत उचित प्रतीत नहीं होता।⁴

कीलहार्न ने तत्कालीन शिलालेखों के आधार पर यह निष्कर्ष प्रस्तुत किया कि विक्रम सम्वत् किसी विक्रम नामक राजा की स्मृति में न तो प्रारम्भ ही किया गया था

1 डॉ० सत्यनारायण पाण्डेय एवं डॉ० श्रीकान्त पाण्डेय कृत संस्कृत साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृ०-135.

2 Vikramaditya of Ujjayini by Raj Bali Panday, Chapter-2, page 51-52.

3 डॉ० सत्यनारायण पाण्डेय एवं डॉ० श्रीकान्त पाण्डेय कृत संस्कृत साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृ०-135

4 Vikramaditya of Ujjayini by Raj Bali Panday, Chapter-2, page 52.

और न ही स्थापित किया गया था। क्योंकि विक्रमादित्य का नाम प्रारम्भिक शताब्दियों में किसी काल से जुड़ा नहीं था। उन्होंने यह प्रतिपादित किया है कि इसका नाम विक्रम सम्वत् इस कारण कहा गया क्योंकि यह संग्राम के प्रारम्भ होने के समय कार्तिक मास में प्रारम्भ किया गया—

He maintained that the era was called Vikrama, because it was started in Kartika time of starting on wars (Vikrama) in ancient India.¹

यह मत भी प्रचलित नहीं हो सका ; क्योंकि संसार में कोई भी ऐसा काल अथवा सम्वत् प्राप्त नहीं होता जो किसी ऋतु अथवा किसी विशेष प्रकार के कार्य पर आधारित हो। विद्वानों द्वारा यह प्रतिपादित किया जा चुका है कि इस काल के तीन नाम कृत, मालवा तथा विक्रम हैं।

डॉ० फ्लीट तथा कनिंघम के अनुसार विक्रम सम्वत् का सम्बन्ध कनिष्क से है। वे कनिष्क का शासन काल प्रथम शताब्दी ई० पू० मानते हैं। किन्तु पुरातत्त्व सम्बन्धी साक्ष्यों से यह स्पष्ट हो जाता है कि कनिष्क का समय प्रथम शताब्दी ई० का उत्तरार्द्ध अथवा द्वितीय शताब्दी ई० का पूर्वार्द्ध है। इसके अतिरिक्त कुषाणों द्वारा प्रारम्भ किये गये सम्वत् का नाम सप्तर्षि सम्वत् है। यही नहीं कनिष्क को इतनी बड़ी सार्वभौमिक सत्ता के रूप में नहीं स्वीकार किया जा सकता है कि उसके द्वारा प्रचलित सम्वत् इस प्रकार प्रसिद्धि प्राप्त कर सके।²

सर जॉन मार्शल के विचारानुसार गान्धार के शक राजा द्वारा 58—57 ई०पू० विक्रम सम्वत् चलाया गया। किन्तु भारतीय इतिहास से यह ज्ञात होता है कि विक्रम

¹ Cited by Maan Singh, Subandhu And Dandin : Their Works, Chapeter-I, page-53

² Vikramaditya of Ujjayini by Raj Bali Panday, Chapter-2, page-54, 55

सम्वत् मालवा में प्रारम्भ हुआ था तथा इसका प्रारम्भ 'शकारि' अर्थात् शकों के शत्रु द्वारा किया गया न कि स्वयं शक राजा के द्वारा। वी० गोपाल अय्यर ने जहाँ उज्जयिनी के महाक्षत्रप द्वारा विक्रम सम्वत् का प्रारम्भ होना कहा है वहीं दूसरी ओर के० पी० जायसवाल के मतानुसार जैन इतिहास तथा प्रसिद्ध कथाओं में वर्णित विक्रमादित्य गौतमीपुत्र शातकर्णी है। ये मत भी प्रचलित नहीं हो सके।¹ डॉ० डी० आर० भाण्डाकार ने विक्रमादित्य का विक्रमादित्य चन्द्रगुप्त द्वितीय से साम्य प्रदर्शित किया है जिसने पाटलिपुत्र पर 375 ई० से 413 ई० तक राज्य किया।

राजा विक्रमादित्य के समय का निर्धारण करते हुए प्रो० मानसिंह ने विभिन्न मतों को उद्धृत किया है। डॉ० हार्नली ने मालव साम्राज्य के संस्थापक यशोधर्मन, जिनका समय 533–583 ई० माना गया है, तथा विक्रमादित्य को एक मानकर तथा उपलब्ध मुद्राओं को उनसे सम्बद्ध करके सुबन्धु का काल छठी शताब्दी का उत्तरार्द्ध स्वीकार करते हैं। हार्नली के इस मत का आधार मन्दसौर अभिलेख है। उन्होंने इस अभिलेख में उल्लिखित नाम को विकल्प रूप से यशोधर्मन अथवा यशोवर्मन माना है तथा मुख्य रूप से यशोवर्मन नाम ही स्वीकार किया है इस मत को पुष्ट करते हुए उनका कथन है कि चारों ओर के प्रदेशों को जीत कर तथा एक साम्राज्य एवं वंश की स्थापना करने के उपरान्त यशोवर्मन ने अपना नाम विष्णुवर्धन रखा।²

इस मत के खण्डन स्वरूप प्रो० मानसिंह ने डॉ० फ्लीट द्वारा मन्दसौर से प्रकाशित दो अन्य अभिलेख का उल्लेख किया है। इन अभिलेखों में से एक अभिलेख

¹ Vikramaditya of Ujjayini by Raj Bali Panday, Chapter-2, page-55-61

² Cited by Maan Singh, Subandhu And Dandin : Their Works, Chapter-1, page-6

में मात्र यशोधर्मन् तथा विष्णुवर्धन का नामोल्लेख दो पृथक् पृथक् श्लोकों में किया गया है। इस कारण उन्हें एक नहीं माना जा सकता और यशोवर्मन के नाम से युक्त मुद्राएँ यशोधर्मन तथा विष्णुवर्धन से सम्बद्ध नहीं मानी जा सकतीं।¹

प्रो० मानसिंह ने इस सम्भावना को भी स्वीकार नहीं किया कि नवीन राजाओं द्वारा सम्मानित व्यक्तियों को अपमानित करने की जिस प्रवृत्ति की ओर सुबन्धु ने संकेत किया है वह डॉ० हार्नली द्वारा महाराज विक्रमादित्य से अभिन्न माने जाने वाले यशोधर्मन की मृत्यु के फलस्वरूप ही अभिव्यक्त हुई है। राजतरंगिणी के अनुसार विक्रमादित्य के पुत्र शिलादित्य को 593 ई० के लगभग उसके शत्रुओं द्वारा सिंहासन से च्युत किया गया तथा लगभग 604 ई० में पुनः राजसिंहासन पर आसीन किया गया—

वैरिनिर्वासितं पित्र्ये विक्रमादित्यजं न्यधात् ।

राज्ये प्रतापशीलं स शीलादित्यापराभिधम् ।।²

अर्थात् उसने शत्रुओं द्वारा राज्यच्युत किये गये महाराज विक्रमादित्य के पुत्र प्रतापशील के नाम से विख्यात शिलादित्य की सहायता करके फिर उसे उज्जयिनी का राजा बना दिया।

डॉ० हार्नली की परिकल्पनानुसार कान्यकुब्ज नरेश मौखरी ग्रहवर्मा की हत्या करने तथा उसकी पत्नी राज्यश्री को बेड़ियों से बांधकर कारागार में डालने के कारण तथा अनार्य हूणों की सहायता प्राप्त करने के कारण शिलादित्य को दुर्भाग्यशाली ही नहीं अपितु क्रूर तथा देशद्रोही के रूप में चित्रित किया है। राजा

1 Subandhu And Dandin : Their Works, Chapter-1, page-7

2 कल्हण कृत राजतरंगिणी, 3/330

हर्षवर्धन के अग्रज राज्यवर्धन ने लगभग 606 ई० में उसका वध कर दिया। किन्तु विक्रमादित्य एवं यशोधर्मन एक ही व्यक्ति नहीं हैं। इतिहास में जहाँ शिलादित्य को डॉ० हार्नली की कल्पना के विपरीत चित्रित किया गया है वहीं मौखरी ग्रहवर्मा का वध शिलादित्य ने नहीं अपितु देवगुप्त द्वारा किया गया। अतः यह मत उचित नहीं है।¹ लुइस एच० ग्रे के शब्दों में—

.....the dynasties to Which Vikramaditya and Harsavardhana belonged were rivals, and that Bana was the faithful eulogist of Harsavardhana exactly as Subandhu was loyal to Vikramaditya. Since, moreove, Bana's monarch had been victorious over the degenerate son of Subandhu's royal patron I deemed that Bana had deliberately set out to surpass Subandhu, so that Harsavardhana's court might excel Vikramaditya's in Litrature as well as in arms.²

प्रो० मानसिंह ने लुइस एच० ग्रे के इस तर्क को स्वीकार नहीं किया है कि सुबन्धु तथा बाणभट्ट के मध्य उनके आश्रयदाता राजाओं तथा उनके पुत्रों के प्रति उनकी श्रद्धा के कारण कोई प्रतिस्पर्धा रही है। इस कल्पना का कोई प्रामाणिक साक्ष्य नहीं है तथा न ही इतिहास से यह ज्ञात होता है कि उनमें से किसी का पिता विक्रमादित्य है।³ अन्यत्र लुइस एच० ग्रे० का कथन है कि बल्लाल कृत भोजप्रबन्ध की पाण्डुलिपियों के आधार पर यह नहीं माना जा सकता कि सुबन्धु धारानरेश भोज के

1 Cited by Maan Singh, Subandhu And Dandin : Their Works, Chapeter-1, page-7,8

2 Subandhu's Vasavadatta ; A Sanskrit Romance by louis H. Gray, Introduction, page-10

3 Subandhu And Dandin : Their Works by Maan Singh, Chapeter-1, page-8

आश्रित थे तथा उन्होंने अपनी गद्यकथा की रचना भोज की सभा में की। यह असम्भव है क्योंकि राजा भोज का समय 11वीं शताब्दी ई० से पूर्व नहीं माना जा सकता। सुबन्धु को पूर्वी मालव के देवगुप्त अथवा मो-ल-प् ओ के शिलादित्य का सभासद कहने का कारण भोजप्रबन्ध के रचयिता अथवा उसके किसी प्रक्षेपक द्वारा भोज तथा विक्रमादित्य को अनुचित रूप से एक व्यक्ति बतलाना है। किन्तु इस विषय में कोई प्रामाणिक एवं ऐतिहासिक साक्ष्य उपलब्ध नहीं है। अतः यह मत उचित नहीं है।¹

सुबन्धु द्वारा संकेतित विक्रमादित्य को गुप्तनरेश विक्रमादित्य-चन्द्रगुप्त द्वितीय मानना अधिक उचित प्रतीत होता है। वामन ने काव्यालंकारसूत्रवृत्ति में अर्थप्रौढ़ि के अन्तिम भेद साभिप्रायत्व² का वर्णन करते हुए सुबन्धु की चन्द्रगुप्त के मन्त्री के रूप में चर्चा की है।³ इस उदाहरण में 'च सुबन्धु' तथा 'वसुबन्धु' पाठ में विद्वानों में मतभेद रहा है। प्रो० मानसिंह ने 'वसुबन्धु' के स्थान पर 'च सुबन्धु' को ही शुद्ध पाठ माना है क्योंकि 'वसुबन्धु' की अपेक्षा 'च सुबन्धु' पाठ अधिक पाण्डुलिपियों में प्राप्त होता है। इसके अतिरिक्त चन्द्रगुप्तनय⁴ से तात्पर्य विक्रमादित्य चन्द्रगुप्त द्वितीय के पुत्र कुमारगुप्त से है। उन्होंने सम्भावना व्यक्त की है कि लेखकों को पाण्डुलिपियों में 'च' तथा 'व' वर्णों की समानता के कारण च सुबन्धु के स्थान पर वसुबन्धु पाठ जान पड़ा होगा और प्रसिद्ध दार्शनिक वसुबन्धु की ओर संकेत करने के उद्देश्य से 'च

1 Subandhu's Vasavadatta ; A Sanskrit Romance by Louis H. Gray, Introduction, page-12

2 सोऽयं सम्प्रति चन्द्रगुप्तनयश्चन्द्रप्रकाशो युवा।

जातो भूपतिराश्रयः कृतधियां दिष्ट्वा कृतार्थश्रमः॥

—काव्यालंकारसूत्रवृत्ति, 3/2/2

3 आश्रमः कृतधियामित्यस्य च सुबन्धुसाधिव्योपक्षेपपरत्वात् साभिप्रायत्वम्।

—काव्यालंकारसूत्रवृत्ति, 3/2/2, वृत्ति

सुबन्धु' के स्थान पर वसुबन्धु कर दिया गया।¹ आर० नरसिंहाचार्य ने वामन द्वारा उद्धृत श्लोकार्द्ध को किसी सूत्रधार के शब्दों से युक्त किसी नाटक के प्रस्तावना भाग का उद्धरण माना है, जिसे सुबन्धु ने कुमारगुप्त प्रथम को समर्पित किया था।² वामन द्वारा प्रस्तुत वृत्ति से यह स्पष्ट हो जाता है कि कुमारगुप्त प्रथम सुबन्धु का आश्रयदाता था तथा उसने सुबन्धु को अपना मन्त्री बनाया था। प्रो० मानसिंह ने मेहरौली लौहस्तम्भ अभिलेख तथा वामन द्वारा उद्धृत श्लोक में साम्य प्रदर्शित करते हुए अभिलेख तथा नाटक का लेखक एक ही बताया है। उन्होंने इस अभिलेख के द्वितीय अंश तथा 'वासवदत्ता' के प्रस्तावना श्लोक को उद्धृत किया है। इन उदाहरणों से ज्ञात होता है कि भावो की समानता के साथ-साथ यह उदाहरण विक्रमादित्य चन्द्रगुप्त द्वितीय के प्रति ही समर्पित हैं— मेहरौली लौह स्तम्भ अभिलेख का द्वितीय अंश इस प्रकार है—

खिन्नस्येव विसृज्य गां नरपतेर्गामाश्रितस्येतरां मूर्त्या (र्त्या) कर्मजितावनिं
गतवतः कीर्त्या (र्त्या) स्थितस्य क्षितौ शान्तस्येव महावने हुतभुजो यस्य प्रतापो महान्
नाद्याप्युत्सृजति प्रणाशितरिपोर्यतनस्य शेषः क्षितिम्॥

वासवदत्ता कथा का दसवां श्लोक इस प्रकार है—

सा रसवत्ता विहिता नवका विलसन्ति चरति नो कक।

सरसीव कीर्तिशेषं गतवति भुवि विक्रमादित्ये॥³

डॉ० डी० आर० भाण्डारकार ने वामन द्वारा उद्धृत 'चन्द्रगुप्ततनय.' का अर्थ गोविन्दगुप्त किया है। प्रो० मानसिंह ने इस मत को स्वीकार नहीं किया है। उनके

1 Subandhu And Dandin Their Works, Chapter-1, page-10

2 Cited by Maan Singh, Subandhu And Dandin Their Works, Chapter-1, page-10

3 Cited by Maan Singh, Subandhu And Dandin Their Works, Chapter-1, Page-11

दृष्टिकोणानुसार चन्द्रगुप्त का अर्थ कुमारगुप्त प्रथम है जो चन्द्रगुप्त द्वितीय के पश्चात् 414 ई० में राजसिंहासन पर बैठा। यह भी निश्चित नहीं कहा जा सकता कि चन्द्रप्रकाश किस का नाम है। यह कुमारगुप्त का विशेषण भी हो सकता है। जिससे यह ज्ञात होता है कि वह चन्द्रमा के समान सुखद, सुन्दर तथा कीर्तियुक्त था। यह भी उल्लेखनीय है कि कुमारगुप्त प्रथम की तुलना बहुत सी मुद्राओं में चन्द्रमा से की गयी है। बसराह प्राचीन वैशाली में डॉ० ब्लॉक द्वारा खोजी गयी मिट्टी की मुहर, जिसकी तिथि अज्ञात है, पर उसके नाम का लोप हो जाने से यह सिद्ध नहीं हो पाता कि वह गोविन्दगुप्त का अनुज था। गोविन्दगुप्त के वैशाली के सूबे का अधिकारी होने के कारण यह सम्भावना प्रबल हो जाती है कि उसके राजकार्यों में निर्देश देने वाली उसकी माता ने गोविन्दगुप्त के नाम से मुहर प्रकाशित की हो। कतिपय विद्वानों ने गोविन्दगुप्त को कुमारगुप्त प्रथम का अनुज कहा है। इस सन्दर्भ में प्रो० मानसिंह ने मन्दसौर के दत्तभट्ट के अभिलेख को प्रमाणस्वरूप प्रस्तुत किया है। इस अभिलेख में चन्द्रगुप्त द्वितीय तथा उसके पुत्र गोविन्दगुप्त की चर्चा की गयी है। इस अभिलेख के अनुसार दत्तभट्ट का पिता वायुरक्षित गोविन्दगुप्त का सेनापति था। यह एक आश्चर्यजनक तथ्य है कि इसकी तिथि स्कन्दगुप्त के शासनकाल अथवा उसके तुरन्त बाद की है किन्तु इसमें स्कन्दगुप्त का वर्णन नहीं है जबकि गोविन्दगुप्त, जो दत्तभट्ट से एक पीढ़ी पूर्व राज्य करता था, का उल्लेख मिलता है।

ऐतिहासिक साक्ष्यों के आधार पर यह स्पष्ट हो जाता है कि कुमारगुप्त प्रथम के अन्तिम समय में गुप्त साम्राज्य की स्थिति ठीक नहीं थी। अनेक शक्तियों ने गुप्त साम्राज्य पर आक्रमण किया। इस स्थिति में स्कन्दगुप्त ने साम्राज्य की रक्षा की। इसी

का वर्णन सुबन्धु ने दसवें श्लोक में किया है।

प्रो० मानसिंह ने प्रस्तुत साक्ष्यों के साथ सुबन्धु के दसवें प्रस्तावना श्लोक की व्याख्या करते हुए कहा है कि 'नवीन व्यक्ति अब चमक रहे हैं' से सुबन्धु का तात्पर्य संभवतः शत्रु के शक्तिशाली होने से हैं। इसी प्रकार उनकी यह घोषणा 'कौन किसको नहीं खाता' का अर्थ उनके अत्याचारों से है। प्रो० मानसिंह के शब्दों में एक अन्य स्थल पर सुबन्धु 'नवनृपतिचित्तवृत्तिभिरिवकुल्यापमानकारिणीभिः' के द्वारा शत्रुओं के द्वारा गुप्त वंश के सम्मान्य व्यक्तियों के अपमान की ओर संकेत करते दिखायी देते हैं। इसी प्रकार नकुल तथा सर्प के उपमानों दुष्ट व्यक्ति के चरित्र को उजागर करते हुए छठे प्रस्तावना श्लोक में कथाकार ने कहा है कि सर्प नकुलों से द्वेष करता है किन्तु वह अपने कुल का द्वेषी नहीं होता जबकि दुष्ट पुरुष अपने वंश के प्रति भी शत्रुओं के समान कठोर होता है। इस श्लोक के द्वारा उन्होंने गुप्त परिवार के प्रति शत्रुओं द्वारा किये गये दुष्कृत्यों का उल्लेख किया है। इसके अतिरिक्त 'खलोदयसाधुविपत्तिसाक्षिभ्याम्' के द्वारा दुष्ट व्यक्तियों की उन्नति तथा सज्जन व्यक्ति के पतन का कथन किया है।

प्रो० मानसिंह ने यह शंका व्यक्त की है कि सुबन्धु ने 'सकुलद्वेषी' अर्थात् ऐसा शत्रु जो अपने ही वंश का हो, शब्द के द्वारा गोविन्दगुप्त की ओर संकेत किया है। जिसने कुमारगुप्त प्रथम के अंतिम वर्षों में अथवा स्कन्दगुप्त के समय में विद्रोह किया था। कवि का यह कथन कि नवीन राजाओं की चित्तवृत्ति सम्मान्य व्यक्तियों का अपमान करने वाली होती है, गोविन्दगुप्त के सत्ता में आने तथा अपने वंश के सम्मानित व्यक्तियों के प्रति किये दुर्व्यवहार की ओर संकेत करता है। वह सुबन्धु के

प्रति भी कठोर हो गया होगा। अतः यह स्वाभाविक ही है कि ऐसे दिनों में सुबन्धु ने शक्तिशाली राजा विक्रमादित्य चन्द्रगुप्त द्वितीय की मृत्यु का स्मरण किया। विक्रमादित्य चन्द्रगुप्त के अच्छे शासन के कारण ही गुप्त साम्राज्य के बुरे दिनों में सुबन्धु ने अपने दुःख की अभिव्यक्ति 'वासवदत्ता' कथा में की है।¹ इस अन्तःसाक्ष्य के आधार पर प्रो० मानसिंह ने सुबन्धु के जन्म के समय का अनुमान किया है। उनके मतानुसार विक्रमादित्य चन्द्रगुप्त द्वितीय के पश्चात् कुमारगुप्त प्रथम 414ई० में युवावस्था में सिंहासन पर आरुढ़ हुआ तथा योग्य होने के कारण उसने सुबन्धु को अपना मन्त्री नियुक्त किया। सुबन्धु ने जिस समय मन्त्री पद को स्वीकार किया होगा उस समय उनकी आयु बहुत कम नहीं होगी। अतः उनका जन्म 385 ई० अथवा विक्रमादित्य चन्द्रगुप्त द्वितीय के समय हुआ होगा। प्रो० मानसिंह की इस सम्भावना को अस्वीकार नहीं किया जा सकता क्योंकि अवश्य ही उन्होंने चन्द्रगुप्त द्वितीय का शासनकाल 455ई० 467ई० माना है। अवश्य ही सुबन्धु उसके शासन के समय जीवित रहे होंगे। इस प्रकार उनका समय 385 ई० से 465 ई० के मध्य माना जा सकता है।²

इस महत्त्वपूर्ण उल्लेख के अतिरिक्त सुबन्धु ने रामायण, महाभारत, बृहत्कथा, कामसूत्र, अलंकार, अभिज्ञानशाकुन्तलम् आदि का उल्लेख अपनी कथा में किया है। किन्तु इन उदाहरणों से कोई निष्कर्ष प्राप्त नहीं किया जा सकता। क्योंकि इन रचनाओं का समय भी विवादित ही है।³ सुबन्धु ने 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' से दुर्वासा

1 Subandhu And Dandin : Their Works, Chapter-1, page-11-15

2 Subandhu And Dandin : Their Works, Chapter-1, page-15

3 Subandhu And Dandin : Their Works, Chapter-1, page-4,5

द्वारा शकुन्तला को शाप दिये जाने का उदाहरण प्रस्तुत किया है।¹ किन्तु कालिदास स्वयं एक विवादित कवि हैं। इनका समय विविध साक्ष्यों के आधार पर 472 ई० से पूर्व माना गया है।² प्र० मानसिंह की दृष्टि में मन्दसोर के अभिलेख में वत्सभट्टि के कुछ पद्यों पर उनका प्रभाव लक्षित होने से यह निश्चय हो जाता है कि कालिदास सुबन्धु की रचना से पूर्व हुए। सुबन्धु ने अलंकार नामक कृति के रचयिता का उल्लेख नहीं किया है। टीकाकार शिवराम ने इसके लेखक के रूप में धर्मकीर्ति का नाम उद्धृत किया है।³ शिवराम की भाँति पीटर्सन, तेलंग तथा प्र० बटुकनाथ आदि ने धर्मकीर्ति की गणना प्राचीन काव्यशास्त्रीय आचार्यों में की है।⁴ किन्तु प्र० मानसिंह ने ऐतिहासिक साक्ष्य के अभाव में इस मत का खण्डन किया है। उनका विचार है कि सुबन्धु का संकेत या तो अश्वघोष प्रणीत 'सूत्रालंकार' से है अथवा असंग कृत 'महायानसूत्रालंकार' से।

सुबन्धु द्वारा उद्योतकर का उल्लेख किये जाने से भी कुछ निश्चित नहीं हो पाता। क्योंकि उद्योतकर का समय भी निश्चित नहीं है। प्र० मानसिंह ने ए० बी० कीथ के मतानुसार एवं विविध साक्ष्यों के आधार पर वसुबन्धु तथा असंग को भ्राता रूप में उल्लिखित किया है तथा वसुबन्धु का समय चतुर्थ शताब्दी ई० माना है। इस प्रकार एस० सी० विद्याभूषण के इस मत का खण्डन हो जाता है कि उद्योतकर तथा धर्मकीर्ति समकालीन थे। उद्योतकर ने प्रसिद्ध बौद्ध तार्किक दिङ्नाग की आलोचना की है। ए० बी० कीथ ने दिङ्नाग का समय 400 ई० माना है। अतः यह कहा जा

1 पं० शंकरदेव शास्त्री द्वारा संपादित वासवदत्ता, पृ०-168.

2 डॉ० कपिलदेव द्विवेदी द्वारा संपादित अभिज्ञानशाकुन्तलम्, भूमिका, पृ०-15

3 Subandhu And Dandin : Their Works, Chapter-1, page-16

4 Cited by Maan Singh, Subandhu And Dandin : Their Works, Chapter-1, page-16

सकता है कि उद्योतकर दिङ्नाग के पश्चात् तथा सुबन्धु के अग्रजन्मा समकालिक थे।¹ इसी प्रकार मीमांसा द्वारा बौद्ध तथा जैन मतों का खण्डन किये जाने के उल्लेख से तेलंग आदि विद्वानों ने कुमारिल द्वारा नास्तिक दर्शनों के उन्मूलन हेतु किये गये प्रयासों का संकेत ग्रहण किया है। किन्तु कथाकार द्वारा कुमारिल का नामोल्लेख न किये जाने से यह मत प्रो० मानसिंह को अभीष्ट नहीं है।

वासवदत्ता की पाण्डुलिपि के अन्त्यलेख के अनुसार सुबन्धु वररुचि की बहन के पुत्र थे—

इति श्रीवररुचिभागिनेयमहाकविसुबन्धुविरचिता वासवदत्ता नामाख्यायिका समाप्ता।

किन्तु हाल ने इसे उचित नहीं माना है। हाल का कथन है कि सुबन्धु का मामा वररुचि नामका कोई व्यक्ति होगा। यह आवश्यक नहीं है कि 'प्राकृतप्रकाश' के रचयिता वररुचि ही उनके मामा हों।²

इस प्रकार सुबन्धु द्वारा इन कृतियों का उल्लेख किये जाने से उनके समय का निर्धारण नहीं हो पाता। विक्रमादित्य का उल्लेख ही उनके समय के निर्धारण में महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करता है जिसके आधार पर सुबन्धु की पूर्ववर्ती सीमा 385 ई० से 465 ई० के मध्य मानी जा सकती है।

बाह्य साक्ष्य—

दण्डी ने दशकुमारचरित में वासवदत्ता का उल्लेख किया है—

अनुरूपभर्तृगामिनीनां च वासवदत्तादीनां वर्णनेन ग्राहयानुशयम्।³

1 Subandhu And Dandin : Their Works, Chapter-1, page-17, 18

2 Subandhu And Dandin : Their Works, Chapter-1, page-5

3 दण्डी कृत दशकुमारचरितम्, पृ०-84

किन्तु इससे यह स्पष्ट नहीं हो पाता कि दण्डी ने सुबन्धु कृत 'वासवदत्ता' की कथा की ओर संकेत किया है अथवा किसी अन्य कथा की ओर।

वामन का समय 800ई० माना गया है। अपने ग्रन्थ में 'उत्कलिप्राय गद्य' के उदाहरण के रूप में उन्होंने निम्न अंश को प्रस्तुत किया है—

“कुलिशशिखरखरप्रचयप्रचण्डचपेटापाटितमत्तमातंगकुम्भस्थलगलन्मदच्छाटाच्छुरि
तचारुकेसरभारभासुरमुखे केसरिणि”¹

यही अंश वासवदत्ता में निम्न प्रकार से उपलब्ध होता है—

कुलिशशिखरखरप्रचयप्रचण्डचपेटापाटितमत्तमातंगकुम्भस्थलरुधिरच्छाटाच्छुरितचारु
केसरभारभासुरकेसरिकदम्बेन।²

वामन द्वारा इस गद्यांश को उदाहरण के रूप में प्रस्तुत किये जाने से यह ज्ञात होता है कि वे सुबन्धु के उत्तरवर्ती कवियों में से हैं।

वाक्पति ने अपनी प्राकृत रचना गउड्वहो (600—725ई०) में भवभूति के नामोल्लेख के पश्चात् सुबन्धु का वर्णन किया है—

भासम्मि जलणमित्ते कन्तीदेवे अ जस्स रहुआरे।

सोबन्धवे अ बन्धम्मि हारियन्दे अ आणन्दो।।³

इस श्लोक की टीका में टीकाकार ने इसे और अधिक स्पष्ट किया है—

भासे ज्वलनमित्रे कुन्तीदेवे च यस्य रघुकारे सौबन्धवे च बन्धे हारिचन्द्रे च
आनन्दः।।

1 काव्यालंकारसूत्रवृत्ति, 1/3/25

2 पं० शंकरदेव शास्त्री द्वारा संपादित वासवदत्ता, पृ०—284.

3 वाक्पति कृत गउड्वहो, वैदग्ध्यवर्णन, गाथा—800

भासः ज्वलनमित्रः कुन्त्रीदेवः (?) इति कवयः। रघुकारः कालिदासः। सौबन्धवो बन्धः सुबन्धुकृतिर्वासवदत्ता नाम प्रबन्धः। हारिचन्द्रः हरिचन्द्रेण कृतः प्रबन्धः।।¹

कतिपय विद्वानों का यह मानना है कि सुबन्धु बाण के पश्चात् हुए हैं। किन्तु ऐसा नहीं है। बाण ने 'हर्षचरित' में 'वासवदत्ता' नामक रचना की प्रशंसा की है। बाण के अनुसार—

कवीनामगलदर्पो नूनं वासवदत्तया।

शक्त्येव पाण्डुपुत्राणां गतया कर्णगोचरम्।।²

अर्थात् निश्चय ही सुबन्धु की रचना वासवदत्ता के कानों तक पहुँचते ही कवियों का अभिमान उसी प्रकार चूर्ण हो गया जिस प्रकार इन्द्र द्वारा प्रदत्त शक्ति नामक अस्त्र विशेष को कर्ण के पास देखते ही द्रोण आदि का गर्व बिल्कुल नहीं रहा।

विद्वानों का यह मानना है कि जिस वासवदत्ता की प्रशंसा बाण ने प्रस्तुत श्लोक में की है वह सुबन्धु द्वारा रचित वासवदत्ता कथा ही है न कि भास कृत स्वप्नवासवदत्ता। इसका कारण यह है कि बाण ने भास के विषय में पृथक् रूप से कहा है—

सूत्रधारकृतारम्भौ नाटकैर्बहुभूमिकैः।

सपताकैर्यशो लेभे भासो देवकुलैरिव।।³

पतंजलि ने अपने महाभाष्य में 'अधिकृत्य कृते ग्रन्थे लुबाख्यायिकाभ्यो बहुलम्' नामक वार्तिक पर भाष्य लिखते हुए वासवदत्ता, सुमनोत्तरा, भैरथी नामक तीन कृतियों का वर्णन किया है जो कि आख्यायिका के अन्तर्गत आती है।⁴ किन्तु बाण को जो

1 वाक्पति कृत गउडवहो, वैदग्ध्यवर्णन, पृ०-221

2 बाणभट्ट कृत हर्षचरित, प्रस्तावना श्लोक-11

3 हर्षचरित, प्रस्तावना श्लोक-15

4 पतंजलि कृत महाभाष्य, 4/3/87, पृ०-313.

‘वासवदत्ता’ अभिप्रेत है वह पतंजलि द्वारा उल्लिखित आख्यायिका वासवदत्ता नहीं है क्योंकि सुबन्धु कृत वासवदत्ता को विद्वानों ने कथा की श्रेणी में रखा है।

मानसिंह के अनुसार—“यह कह सकना भी कठिन है कि बाण यहाँ संभवतः काव्यगत गुणों के कारण स्वप्नवासवदत्ता की इतनी प्रशंसा कर रहे हैं क्योंकि वे कालिदास के काव्यों की अवहेलना नहीं कर सकते, और रूपक के क्षेत्र में भी इनका ‘अभिज्ञानशाकुन्तलम्’ भास के ‘स्वप्नवासवदत्तम्’ की अपेक्षा कहीं अधिक उत्कृष्ट काव्य है।¹ बाण ने कालिदास की प्रशंसा करते हुए कहा है—

नई उकसी हुई मंजरियों के समान मधुर एवं सरस कालिदास की सूक्तियों में उत्तरमात्र से ही किसे आनन्द नहीं आता।²

इसके अतिरिक्त स्वप्नवासवदत्ता की रचना भास ने सरल शैली में की है। यह इतनी क्लिष्ट नहीं है कि कवियों को भी इसके गूढ़ अर्थों को समझने में कठिनाई हो। अतः बाण ने सुबन्धु की रचना वासवदत्ता कथा की ओर ही संकेत किया है।

एक अन्य श्लोक में बाण ने अपनी कादम्बरी कथा को अतिद्वयी विशेषण से विभूषित किया है—

द्विजेन तेनाक्षकण्ठकौण्ठया मनामनोमोहमलीमसान्धया।

अलब्धवैदग्ध्यविलासमुग्धया धिया निबद्धेयमतिद्वयी कथा।।³

अतिद्वयी से तात्पर्य है दो से श्रेष्ठ। टीकाकार भानुचन्द्र तथा सिद्धचन्द्र ने इन दो ग्रन्थों को गुणादय की बृहत्कथा तथा सुबन्धु कृत वासवदत्ता माना है—

¹ Subandhu And Dandin : Their Works, Chapter-1, page-2

² निर्गतासु न वा कस्य कालिदासस्य सूक्तिषु।

प्रीतिर्मधुरसान्द्रासु मंजरीष्विव जायते।। —हर्षचरित, प्रस्तावना श्लोक—16

³ कादम्बरी, श्लोक—20

अतिद्वयीति विशेषणबलदा बुद्धेरतितीक्ष्णत्व कलितम् द्वयीं बृहत्कथा वासवदत्ता चातिक्रान्तेत्यर्थः ।।¹

प्रो० मानसिंह ने लिखा है कि यदि कादम्बरी के इतिवृत्त में बाण बृहत्कथा से प्रभावित है तो उसकी रचना—शैली एवं कतिपय रुढ़ियों में वे वासवदत्ता के ऋणी हैं। वे वासवदत्ता से कितने ही शब्द एवं भाव ग्रहण करते हैं। यही नहीं हर्षचरित में भी वे सुबन्धु के गद्यकाव्य से अनेक वर्णन, उक्तियाँ तथा भाव ग्रहण करते हैं और उन्हें विकसित एवं उत्कृष्ट रूप में ढाल कर उपस्थित करते हैं। अतएव निश्चय ही बाण का सकेत सुबन्धु की वासवदत्ता की ओर है। चतुर्थ प्रस्तावना श्लोक में प्रशंसित व्यास के अतिरिक्त अन्य सभी प्राचीन कवियों तथा काव्यों से पूर्व 'हर्षचरित' में बाण द्वारा 'वासवदत्ता' की इतनी अधिक प्रशंसा उनके गहन प्रभाव के कारण ही हो सकती है।² किन्तु मोहनदेव पन्त के मतानुसार वासवदत्ता में प्रयुक्त किये गये श्लेष, विरोधाभास, परिसंख्या आदि अलंकारों का प्रयोग वासवदत्ता तथा हर्षचरित में समान रूप में किया गया है इसके अतिरिक्त समास भी एक समान ही प्रयुक्त हुए हैं तथापि बाण सुबन्धु के पूर्ववर्ती ही है पश्चात्वर्ती नहीं—

प्रविकसितकेसरकुसुमकेसररजोविसरधूसरितपरिसरेणपरागपुञ्जपिञ्जरसिन्धुवारम
ज्जरीरज्यमानमधुकरमञ्जुशिञ्जितजनितमुदा मज्जलमेचकितगण्डकाषमुचुकन्द—
काण्डकथ्यमानानि शककरिकरटविकटकण्डूतिना ।

हर्षचरित में भी लगभग यही उदाहरण इस प्रकार है—

1 कादम्बरी, पृ०—7

2 Subandhu And Dandin Their Works, Chapter-1, page-3

प्रविकसितकेसररजोविसरबन्ध्यमानवासरधूसरिमाण परागपिंजरमंजरीरज्यमान—
 मधुपमञ्जुशिंजाजनित जनमुदः मदजलमेचकितमुचुकन्दस्कन्धकाण्डकथ्यमान—
 निःशंककरिकरट कण्डूतयः ।

मोहनदेव पन्त का यह मानना है कि यह कभी नहीं हो सकता कि बाण जैसा सिद्धहस्त 'वश्यवाणी कवि चक्रवर्ती' सुबन्धु को अपना आदर्श मानकर चले तथा स्पष्ट रूप में उसकी चोरी करे। बाण ने स्वयं इस तरह की साहित्यिक चोरी की निन्दा की है—

अन्यवर्ण—परावृत्त्या बन्धाचिन्हनिगूहनैः ।

अनाख्यातः सतां मध्ये कविश्चोरो विभाव्यते ॥¹

अर्थात् दूसरे कवियों के अक्षरों के हेर फेर से तथा उनके रचना प्रकार एवं विशेषताबोधक चिन्हों को छिपा देने से चोर न कहा जाता हुआ भी कवि विद्वानों के मध्य चोर समझा जाता है।

अतः बाण द्वारा उल्लिखित 'वासवदत्ता' सुबन्धु कृत 'वासवदत्ता' नहीं हो सकती। वासवदत्ता का उल्लेख जिस श्लोक में किया गया है उससे पूर्व श्लोक में बाण ने आख्यायिकाओं के विषय में लिखा है—

उच्छ्वासान्तेऽप्यखिन्नास्ते येषां वक्त्रे सरस्वती ।

कथमाख्यायिकाकारा न ते वन्द्याः कवीश्वराः ॥²

सुबन्धु प्रणीत 'वासवदत्ता' कथा है न कि आख्यायिका। इसलिये जिस वासवदत्ता की प्रशंसा बाणभट्ट ने की है वह सुबन्धु विरचित वासवदत्ता नहीं है।³

1 हर्षचरित, प्रस्तावना, श्लोक—6

2 हर्षचरित, प्रस्तावना श्लोक—10

3 मोहनदेव पन्त द्वारा सम्पादित हर्षचरित, भूमिका, पृ०—10

गुणाद्य कृत बृहत्कथा को विरचित महाभारत के समान बताते हुए केदारनाथ ने 'बृहत्कथा' के विषय में प्रशंसा करने वाले कवियों की गणना करते समय सर्वप्रथम कालिदास तत्पश्चात् सुबन्धु, बाण तथा दण्डी इत्यादि आचार्यों का नामोल्लेख किया है। इससे पता चलता है कि सुबन्धु को केदारनाथ ने भी बाण से पूर्ववर्ती ही माना है न कि परवर्ती। केदारनाथ के शब्दों में—जिस महती कथा के विषय में कालिदास, सुबन्धु, बाण, दण्डी, धनिक, गोवर्धन आदि आचार्यों ने प्रशंसा के शब्द लिखे हैं, सचमुच वह भारतीय वाङ्मय की कोई अद्भुत रचना है।¹ यही नहीं बलदेव उपाध्याय ने भी उन्हें बाणभट्ट के पूर्ववर्ती माना है। उनका मत है कि बाणभट्ट के द्वारा प्रशंसित किये जाने के कारण सुबन्धु बाण के पूर्ववर्ती सिद्ध होते हैं।²

प्रो० मानसिंह ने बाणभट्ट तथा सुबन्धु की कृतियों में उपलब्ध साम्य का विस्तृत विवरण दिया है। सुबन्धु विरचित वासवदत्ता एवं बाणभट्ट 'कादम्बरी' में शुक द्वारा कथा कही गयी हैं। प्रातः काल के समय स्वप्न देखना, शुक तथा सारिका की परस्पर कलह, शुक तथा सारिका द्वारा मनुष्य की वाणी में वार्तालाप करना, स्वयंवर, पात्रों द्वारा आत्मोत्सर्ग के लिये उद्यत होना तथा आकाशवाणी द्वारा प्रेमीजनों से पुनर्मिलन की आशा जाग्रत करके पात्रों को पुनः जीवन प्राप्त होना और शाप आदि के प्रसंग दोनों कवियों की रचनाओं में उपलब्ध होते हैं। वासवदत्ता कथा में नायिका नायक के स्पर्श द्वारा पुनः जीवन को प्राप्त करती है, जबकि कादम्बरी कथा में नायक, नायिका के स्पर्श द्वारा पूर्व अवस्था को प्राप्त होता है। इस प्रकार दोनों

1 कथासरित्सागर, भूमिका, पृ०-17

2 बलदेव उपाध्याय कृत संस्कृत साहित्य का इतिहास, पृ०-383.

कवियों द्वारा अपने काल में प्रचलित कथाओं तथा कथा साहित्य से ग्रहण किये गये विचार समान हैं।

बाणभट्ट के बहुत से वर्णन सुबन्धु के वर्णनों के समान हैं। कादम्बरी कथा में वर्णित राजा शूद्रक तथा उज्जयिनी का वर्णन वासवदत्ता में उपलब्ध राजा चिन्तामणि, राजा शृंगारशेखर तथा कुसुमपुर के वर्णनों के समान हैं। बाणभट्ट द्वारा चन्द्रपीड तथा कादम्बरी के प्रथम बार मिलने का वर्णन सुबन्धु द्वारा कन्दर्पकेतु के वासवदत्ता के भवन में प्रवेश तथा उससे प्रथम मिलन के प्रसंग से अत्यधिक साम्य रखता है। हर्षचरित में पुष्पमयी कन्या का वर्णन सुबन्धु द्वारा किये गये वासवदत्ता के वर्णन का स्मरण कराता है जिसमें कवि ने उसे ग्रहमयी स्थिति के सदृश चित्रित किया है। महाश्वेता के प्रेम से उत्पन्न मोह को दूर करने के लिये कपिंजल द्वारा पुण्डरीक को दिया गया उपदेश, मकरन्द द्वारा कन्दर्पकेतु को दिये गये उपदेश के समान है। यही नहीं पुण्डरीक तथा कन्दर्पकेतु द्वारा दिया गया उत्तर भी समान ही है। वासवदत्ता में कन्दर्पकेतु कहता है—

वयस्य! दितिरिव शतमन्युसमाकुला भवत्यस्मादृशजनचितवृत्तिः।
नायमुपदेशकालः। पच्यन्त इव मेऽङ्गानि। कृष्यन्त इवेन्द्रियाणि। भिद्यन्त इव मर्माणि।
निरस्सरन्तीव प्राणाः। उन्मूल्यन्त इव विवेकाः। नष्टेव स्मृतिः। अधुना तदलमनया
कथया। यदि त्वं सहपांसुक्रीडासमदुःखसुखोऽसि तन्मया सममागम्यतामित्युक्त्वा
परिजनालक्षित एव तेन सह पुरान्निर्जगाम।

पुण्डरीक कपिंजल को इस प्रकार उत्तर देता है—

दूरातीतः खलूपदेशकालः। समतिक्रान्तो धैर्यावसरः। गता प्रतिसंख्यानवेला।

अतीतो ज्ञानावष्टम्भसमयः। केन वान्येनास्मिन्समये भवन्तमपहायोपदेष्टव्य-
मुन्मार्गप्रवृत्तिनिवारणं वा करणीयम्। कस्यान्यस्य वा वचसि मया स्थातव्यम्। को
वापरस्त्वत्समो मे जगति बन्धुः। किं करोमि। यन्न शक्नोमि निवारयितुमात्मानम्।
इयमनेनैव क्षणेन भवता दृष्टा दुरवस्था। तद्गत इदानीमुपदेशकालः। यावत्प्राणिभि
तावदस्य कल्पान्तोदितद्वादशदिनकरकिरणातपतीव्रस्य मदनसन्तापस्य प्रतिक्रियां
क्रियमाणमिच्छामि। पच्यन्त इव मेऽङ्गानि। उत्क्वथ्यत् इव हृदयम्। प्लुष्यत इव दृष्टिः।
ज्वलतीव शरीरम्। अत्र यावत्प्राप्तकालं करोतु भवान्।¹

प्रो० मानसिंह ने सुबन्धु कृत वासवदत्ता तथा बाणभट्ट रचित कादम्बरी तथा
हर्षचरित में नायक तथा नायिका द्वारा किये गये विलापों की चर्चा की है।

बाणभट्ट ने अपनी आख्यायिका हर्षचरित में कई बार संध्या का वर्णन किया
है। उन वर्णनों में से एक विशेष एवं विस्तृत वर्णन का सुबन्धु कृत श्रेष्ठ विस्तृत
वर्णन से साम्य रखता है। प्रो० मानसिंह ने उन पदों का स्पष्ट रूप से उल्लेख किया
है जिन्हें बाण ने सुबन्धु से ग्रहण किया है। किन्तु उनमें भी गद्यकार बाण की अपनी
रचना शैली के दर्शन होते हैं।² इसी प्रकार 'हर्षचरित' में प्राप्त एक गद्यांश में
सुबन्धु के समुद्री-दलदल के वर्णन में उपलब्ध पदों का एक समान प्रयोग दृष्टिगत
होता है। प्रो० मानसिंह के अनुसार बाण ने इस वर्णन में सुबन्धु द्वारा किये गये वर्णन
में प्रयुक्त 19 पदों को ग्रहण किया है।³ एक अन्य समान प्रसंग से यह प्रमाणित हो
जाता है कि बाण सुबन्धु का अतिक्रमण करना चाहते थे। 'वासवदत्ता' में नायक

1 Cited by Maan Singh, Subandhu And Dandin : Their Works, Chapter- 9, page-426-428

2 Subandhu And Dandin : Their Works, Chapter -9, page- 432

3 Subandhu And Dandin : Their Works, Chapter-9, page-433

कन्दर्पकेतु का नायिका के वियोग में दुःखी होकर समुद्र में डूबकर मरने का निश्चय करने से पूर्व स्वगत भाषण उपलब्ध होता है। अपना विश्लेषण करने से पूर्व वह अपने अंतःकरण को यह कहकर शान्त करने का प्रयास करता है कि इस संसार में कोई भी दोष रहित नहीं है। इसके लिये वह महाकाव्यों तथा पुराणों में वर्णित दैवीय तथा प्राचीन धार्मिक व्यक्तियों को श्लेषात्मक शैली में उदाहरण रूप में प्रस्तुत करता है। इसी प्रकार का प्रसंग श्यामला तथा बाण के वार्तालाप में मिलता है। सुबन्धु के समान बाण ने महाकाव्यों तथा पुराणों से उदाहरणों को श्लेष अलंकार के साथ प्रयुक्त है। वस्तुतः इस वर्णन में कवि यह दिखाने का प्रयत्न करता है कि मात्र हर्ष ही दोष रहित है जबकि देवता तथा प्राचीन शासक दोष युक्त थे।

प्रो० मानसिंह ने बाणभट्ट तथा सुबन्धु द्वारा प्रस्तुत किये गये उदाहरणों की तुलना की है। उनके अनुसार दोनों कवियों ने एक चन्द्र देवता का ही उदाहरण दिया है। सुबन्धु ने जहाँ 14 राजाओं की चर्चा की है वहीं बाणभट्ट ने उसमें वृद्धि करते हुए 20 राजाओं के उदाहरण प्रस्तुत किये हैं। सुबन्धु तथा बाण द्वारा प्रस्तुत दृष्टान्तों में से आठ दृष्टान्त एक जैसे ही हैं किन्तु शेष सात वाक्यों को गद्यकार बाण ने स्पष्ट रूप से विस्तृत कर दिया है अथवा 'वासवदत्ता' में सुबन्धु ने जिस का एक अर्थ ही दिया है उसे हर्षचरितकार ने द्विअर्थक बना दिया है।¹

प्रो० मानसिंह का यह मानना है कि प्रस्तुत साम्य संयोगवश नहीं हुए हैं। इन साम्यों से यह स्पष्ट हो जाता है कि बाणभट्ट के समक्ष सुबन्धु की रचना जिससे उन्होंने बहुत कुछ ग्रहण किया तथा उसे और भी उत्कृष्ट रूप में प्रस्तुत किया। अतः

बाणभट्ट स्वयं से पूर्व हुए सुबन्धु के अत्यधिक ऋणी हैं।

डॉ० एस० एन० प्रसाद ने बृहत्कथा का सीमा निर्धारण करते हुए सुबन्धु को बाणभट्ट का पूर्ववर्ती कहा है। उनके अनुसार सुबन्धु का समय छठी शताब्दी है।¹ कविराज ने भी वक्रोक्ति मार्ग में निपुण कवियों में सर्वप्रथम सुबन्धु का नाम स्मरण किया है।² राघवपाण्डवीयम् के रचयिता कविराज का समय 1200 ई० है।³ दूसरी ओर मंख ने मेण्ठ, भारवि तथा बाण के साथ सुबन्धु की चर्चा की है।⁴

विशेषावश्यकभाष्य में 'वासवदत्ता' तथा तरंगवती का उल्लेख मिलता है—

जध वा णिदिदट्वसा वासवदत्ता तरंगवतियादि।

तध णिददेसगवसतो लोए मणुरक्खवातो त्ति।।⁵

आचार्य जिनविजयाजि द्वारा प्रकाश में लायी गयी एक प्राचीन पाण्डुलिपि के अन्त्य लेख से यह ज्ञात होता है कि जिनभद्र ने अपने विशेषावश्यक भाष्य की रचना शक संवत् 531 अर्थात् 608-9 ई० में वलभी में चैत्र मास की पूर्णिमा को स्वाति नक्षत्र में बुद्धवार के दिन की थी। उस समय राजा शिलादित्य का शासन था। यह पाण्डुलिपि जैसलमेर में प्राप्त हुई थी। पाण्डुलिपि में उद्धृत अन्त्य लेख इस प्रकार है—

पंच सत्ता इगतीसा सगणिवकालस्स वट्टमाणस्स

तो चेत्तपुण्णिमाए बुधदिण सातिंमि णक्खते।

1 डॉ० एस० एन० प्रसाद कृत कथासरित्सागर तथा भारतीय संस्कृति, तृतीय अध्याय, पृ०-27, 28

2 सुबन्धुर्बाणभट्टश्च कविराज इति त्रयः।

वक्रोक्तिमार्गनिपुणाश्चतुर्थो विद्यते न वा।। —कविराज कृत राघवपाण्डवीयम्, 1/41

3 वाचस्पति गैरोला कृत संस्कृत साहित्य कर इतिहास, पृ०-640

4 वाचस्पति गैरोला कृत संस्कृत साहित्य कर इतिहास, पृ०-640

5 जिनभद्र कृत विशेषावश्यक भाष्य, गाथा-1506

रज्जे णु पालणपरे सी (लाइ) च्चम्मि णखरिणम्मि

वलभीणगरिए इमं महवि.....मि जिणभवणे ।।¹

—भारतीय विद्या (हिन्दी-गुजराती) 3, पृ० 191-96.

प्र० मानसिंह के शब्दों में प्रस्तुत अन्त्य लेख से यह स्पष्ट हो जाता है कि वासवदत्ता की रचना 608-9 ई० से पूर्व ही हो चुकी थी तथा पर्याप्त ख्याति प्राप्त कर चुकी थी। दूसरी ओर पादलिप्त की तरंगवती का काल द्वितीय अथवा तृतीय शती ई० तक माना जाता है। अतः सुबन्धु की परवर्ती सीमा 608-9 ई० है। उन्हें इसके पश्चात् नहीं माना जा सकता।²

वाचस्पति गैरोला ने सुबन्धु तथा बाणभट्ट के इस विवाद को अत्यन्त सरलता के साथ स्पष्ट किया है। सुबन्धु ने नल-दमयन्ती, दुष्यन्त-शकुन्तला, अज-इन्दुमती, नलकूबर-रंभा, कुबेर-ऋद्धि, देवेन्द्र-इन्द्राणी आदि प्रसिद्ध आख्यानों की तो चर्चा की है किन्तु चन्द्रापीड तथा कादम्बरी का उल्लेख नहीं किया है। अतः यह स्पष्ट हो जाता है कि सुबन्धु बाणभट्ट से पूर्ववर्ती हैं। क्योंकि यदि वे कादम्बरीकार के बाद हुए होते तो अवश्य ही अपनी कृति में चन्द्रापीड तथा कादम्बरी का किसी न किसी रूप में स्मरण अवश्य किया होता। इसके अतिरिक्त कादम्बरीकार ने 'अतिद्वयी' विशेषण के द्वारा गुणाढ्य रचित बृहत्कथा तथा सुबन्धु रचित वासवदत्ता की ओर ही संकेत किया है। 'हर्षचरित' में भी कवि ने जिस वासवदत्ता का उल्लेख किया है वह सुबन्धु कृत वासवदत्ता कथा ही है।³

1 Cited by Maan Singh, Subandhu And Dandin : Their Works, Chapter-1 page-4

2 Subandhu And Dandin their Works, Chapter-1, page-4

3 वाचस्पति गैरोला कृत संस्कृत साहित्य का इतिहास, पृ०-639-641

प्रस्तुत विवरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि सुबन्धु बाणभट्ट के पूर्ववर्ती हैं। आचार्य शेषराज शर्मा रेग्मी¹, वेदव्यास², तथा पं० कृष्णमोहन शास्त्री³ का भी यही मत है कि सुबन्धु ही बाणभट्ट के पूर्ववर्ती हैं। वाचस्पति गैरोला ने कादम्बरीकार का स्थितिकाल स्पष्ट करते हुए लिखा है—

हर्ष का राजकवि होने से बाणभट्ट का स्थितिकाल स्पष्ट है। सभी इतिहासकारों ने एकमत से स्वीकार किया है कि 606 ई० में हर्ष राजसिंहासन पर आरुढ़ हुआ तथा 648 ई० में उसका निधन हुआ। हर्ष की थे तिथियाँ उपलब्ध दानपत्रों तथा ताम्रपत्रों से भी प्रमाणित हैं। अतः यह निश्चित है कि बाण सातवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में हुए।⁴ सुबन्धु को बाण का पूर्ववर्ती प्रमाणित किया जा चुका है। अतः सुबन्धु का समय छठी शताब्दी अथवा इससे पूर्व माना जा सकता है।

कृतित्व—

कविवर सुबन्धु के ज्ञान का क्षेत्र अत्यन्त विस्तृत है। उनकी एक मात्र कृति वासवदत्ता कथा उनकी कीर्ति का आधार स्तम्भ है। 'वासवदत्ता' में कवि ने सर्वत्र श्लेष अलंकार के प्रयोग के द्वारा अपने पाण्डित्य का ही प्रदर्शन किया है। यही कृति कथाकार के विविध ज्ञान की परिचायक है। सुबन्धु ने स्थल-स्थल पर वेद, उपनिषद्, रामायण, महाभारत, अष्टाध्यायी, बृहत्कथा, कामसूत्र, छन्दोविंशति आदि के उदाहरणों को प्रस्तुत किया है। जिससे यह स्पष्ट हो जाता है कि सुबन्धु को इन ग्रंथों का

1 शेषराज शर्मा रेग्मी द्वारा संपादित कादम्बरी, उपोद्घात, पृ०-4

2 वेदव्यास कृत संस्कृत साहित्य का इतिहास, पृ०-329

3 पं० कृष्णमोहन शास्त्री द्वारा संपादित कादम्बरी, प्रस्तावना, पृ०-11

4 वाचस्पति गैरोला कृत संस्कृत साहित्य का इतिहास, पृ०-675

भली-भाँति ज्ञान था।

सुबन्धु यत्र तत्र अपने काव्यशास्त्रीय तथा कामशास्त्रीय ज्ञान का परिचय दे देते हैं। उन्होंने, उत्प्रेक्षा, आक्षेप आदि अलंकारों, पुष्पिताग्रा, शिखरिणी, प्रहर्षिणी, मालिनी, माणवकक्रीडित, कुसुमविचित्र आदि छन्दों की चर्चा की है। सुबन्धु द्वारा जैन दर्शन, बौद्ध दर्शन, मीमांसा दर्शन, चार्वाक दर्शन तथा सांख्य दर्शन का नामोल्लेख करने से यह तथ्य ज्ञात होता है कि सुबन्धु के समय तक न केवल इन दर्शनों को प्रसिद्धि प्राप्त हो चुकी थी अपितु स्वयं सुबन्धु भी इन मतों से पूर्णतया परिचित थे।

सुबन्धु का भौगोलिक ज्ञान भी अत्यन्त विस्तृत है। उन्होंने कर्णाट, लाट, केरल, मालवा, अपरान्त, कुन्तल आदि प्रदेशों; गंगा, यमुना, सरस्वती, नर्मदा, तमसा, मालिनी, तुंगभद्रा, गोदावरी, शोण आदि नदियों ; हिमालय, विन्ध्यपर्वत, श्रीपर्वत, कैलाश पर्वत, सुमेरु पर्वत आदि की विभिन्न स्थलों पर प्रशंसनीय एवं सराहनीय चर्चा की है। कवि का शाब्दिक ज्ञान प्रशंसनीय है। उन्होंने एक ही शब्द के विभिन्न पर्यायवाची शब्दों का वर्णन किया है। इस कार्य में श्लेष का प्रयोग सहायक है। सुबन्धु को संगीत का पर्याप्त ज्ञान था। उन्होंने गान्धार, विभास नामक रागों, काकली, चर्चरी नामक गीत का वर्णन किया है। गद्यकार सुबन्धु द्वारा विभिन्न रोगों, औषधियों, ज्योतिष सम्बन्धी मतों, शुभाशुभ शकुनों, नाट्यशास्त्रीय उदाहरणों आदि से कवि के व्यापक एवं विस्तृत ज्ञान की पुष्टि होती है।

सुबन्धु का परवर्ती कवियों पर प्रभाव—

सुबन्धु का परवर्ती कवियों पर पर्याप्त प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। माघ, भवभूति, भर्तृहरि आदि कवियों ने अपनी कृतियों में भावों को कथाकार सुबन्धु से

ग्रहण किया है। प्रातःकाल का वर्णन करते हुए चन्द्रमा के अस्त होने के विषय में कथाकार का कथन है कि पूर्व दिशा, यह चन्द्रमारूपी ब्राह्मण मेरे संसर्ग से उन्नति को प्राप्त हुआ परन्तु वारुणी अर्थात् पश्चिम दिशा रूपी मदिरा के संसर्ग से पतित हो गया यह समझ कर उसका उपहास-सा कर रही थी।¹ यही प्रसंग माघ कृत 'शिशुपालवधम्' महाकाव्य में इस प्रकार दृष्टिगत होता है— मेरे साथ समागम करने से प्रकट कान्ति वाला यह चन्द्रमा उदयाचल को प्राप्त करता है। वही चन्द्रमा दूसरी दिशा अर्थात् पश्चिम दिशा को प्राप्त कर गिर रहा है। इस प्रकार मानों ईर्ष्यायुक्त पूर्वदिशारूपिणी रमणी की मुस्कान निर्मल होती हुई स्फुरित हो रही है।² इसी प्रकार अन्य स्थलों पर भी सुबन्धु एवं माघ में भावसाम्य उपलब्ध होता है।

भर्तृहरि के नीतियुक्त श्लोकों पर भी सुबन्धु का प्रभाव परिलक्षित होता है। सुबन्धु के अनुसार जिस प्रकार कुमुदों को विकसित करने वाली चांदनी अधिक रमणीय प्रतीत होती है ; उसी प्रकार दूसरों के गुणों को प्रकट करने वाले सज्जन और अधिक मनोहर प्रतीत होते हैं।³ यही भाव भर्तृहरि ने इस प्रकार कहा है—मन, वाणी तथा शरीर में पुण्य रूप अमृत से भरे हुए दूसरों के अत्यल्प गुणों को पर्वत के समान विशाल बनाकर सदा अपने हृदय में प्रसन्न रहने वाले सत्पुरुष कम ही हैं।⁴

1 पं० शंकरदेव शास्त्री द्वारा संपादित वासवदत्ता, पृ०-271

2 उदयमुदितदीप्तिर्याति यः संगतौ मे
पतति न वरमिन्दुः सोऽपरामेष गत्वा।
स्मितरुचिरिव सद्यः साभ्यसूर्यं प्रभेति
स्फुरित विशदमेषा पूर्वकाष्ठांगनायाः॥ —माघ कृत शिशुपालवधम्, 11/12

3 आर० वी० कृष्णमाचारियर द्वारा संपादित वासवदत्ता, प्रस्तावना श्लोक-5

4 मनसि वचसि काये पुण्यपीयूषपूर्णाः।
त्रिभुवनमुपकारश्रेभिः प्रीणयन्तः॥
परयुगपरमरमाणून पर्वतीकृत्य नित्यं।
निजहृदि विकसन्तः सन्ति सन्तः कियन्तः॥

—भर्तृहरि कृत नीतिशतकम्, श्लोक-79

वैराग्यशतक में भर्तृहरि ने वैराग्य की श्रेष्ठता को प्रतिपादित करते हुए कहा है कि नाटक में भिन्न-भिन्न भूमिकाओं का निर्वाह करने वाले नट के समान मनुष्य भी अपने जीवन में विविध अवस्थाओं को व्यतीत करता है। नाटक के अन्त में जिस प्रकार नट परदे के भीतर चला जाता है उसी प्रकार मनुष्य अन्त में यमराज की राजधानी रूप यवनिका में प्रवेश कर जाता है।¹ भर्तृहरि का यह भाव सुबन्धु से प्रेरित है। सुबन्धु ने प्रातः कालीन धूप का चित्रण करते हुए उसे काल रूपी नट की चलती-फिरती लाल यवनिका के समान कहा है।² भर्तृहरि प्रणीत 'शृंगारशतक' में सुबन्धु से प्रेरित श्लोकों का उल्लेख मिलता है। सुबन्धु ने नायिका वासवदत्ता को विविध उपमानों द्वारा सूर्य, चन्द्रमा, मंगल, बुध, बृहस्पति आदि ग्रहों के समान बताया है।³ यही वर्णन 'शृंगारशतक' में भी कुछ भिन्नता के साथ इस प्रकार उपलब्ध होता है—अत्यन्त पुष्ट अथवा देवगुरु बृहस्पति रूप स्तनभार से, प्रकाशवान अथवा सूर्य स्वरूप मुखरूपी चन्द्र से, मन्द-मन्द चलने वाले अर्थात् शनैश्चर स्वरूप चरणों से वह सुन्दरी मानों ग्रह स्वरूप ही शोभा पाती थी।⁴

भारवि ने युवावस्था की शोभा को शरत्काल के मेघ के समान चंचल बताते हुए कहा है कि शब्दादिक जो तत्तत् इन्द्रियों के विषय हैं वे उसी काल में रम्य प्रतीत होते हैं परन्तु अन्तिम अवस्था में वे सन्तापप्रद ही होते हैं।⁵ भारवि का यह पद

1 क्षणं बालो भूत्वा क्षणमादि युवा कामरसिकः

क्षणं वित्तैर्हीनः क्षणमपि च सम्पूर्ण विभवः।

जराजीर्णैरगैर्नट इव वलीमण्डिततनु-

नरः संसारान्ते विंशति यमघानीयवनिकाम्।। —भर्तृहरि कृत वैराग्यशतकम्, श्लोक-50

2 पं० शंकरदेव शास्त्री द्वारा संपादित वासवदत्ता, पृ० -274

3 पं० शंकरदेव शास्त्री द्वारा संपादित वासवदत्ता, पृ० -58

4 गुरुणा स्तरनभारेण मुखचन्द्रेण भास्वता।

शनैश्चराभ्यां पादाभ्यां रेजे ग्रहमयीव सा।। —भर्तृहरि कृत शृंगारशतकम्, श्लोक-17

5 शरदम्बुधरच्छायागत्यो यौवनश्रियः। आपातरम्या विषयाः पर्यनतपरितापिनः।। —भारवि कृत किरातार्जुनीयम्, 11/12.

सुबन्धु के इस वर्णन से साम्य रखता है—

तालफलरसइवापातमधुरः परिणामविरसस्तिक्तश्च।¹

अर्थात् दुष्ट पुरुष, आस्वाद काल में मधुर परन्तु अन्त में नीरस तथा तीखे ताल फल के रस के समान प्रारम्भ में मधुर परन्तु अन्त में तीव्र स्वभाव वाला होता है।

भारवि के समान भवभूति ने भी सुबन्धु से विभिन्न भावों को ग्रहण किया है। सुबन्धु द्वारा कि कामपीडित नायिका वासवदत्ता की जिस अवस्था का चित्रण किया गया है।² उसी प्रकार का वर्णन मालतीमाधव में भवभूति द्वारा किया गया है—

लीनेव प्रतिबिम्बितेव लिखितेवोत्कीर्णरूपेव च

प्रत्युप्तेव च वज्रलेपघटितेवान्तर्निखातेव च।

सा नश्चेतसि कीलितेव विशिखैश्चेतोभुवः पंचभिः

श्चिन्तासन्ततितन्तुजालनिबिडस्यूतेव लग्ना प्रिया।।³

वस्तुतः सुबन्धु प्रतिभा के धनी कवि हैं। उनकी एकमात्र कृति वासवदत्ता उनकी प्रतिभा, विद्वत्ता तथा मौलिकता का परिचय देने के लिये पर्याप्त है। यद्यपि सुबन्धु के जीवन का प्रत्येक क्षेत्र अत्यन्त विवादित रहा तथापि विवादों ने ही उनके सम्बन्ध में नवीन सम्भावनाओं एवं अनुसन्धानों को अवकाश प्रदान किया। जिससे सुबन्धु का महत्त्व और अधिक हो जाता है। निष्कर्षतः सुबन्धु गद्य साहित्य में ही नहीं संस्कृत साहित्य में भी अपना विशिष्ट स्थान रखते हैं।

1 पं० शंकरदेव शास्त्री द्वारा संपादित वासवदत्ता, पृ०-64

2 हृदये विलिखितमिव, उत्कीर्णमिव, प्रत्युप्तमिव, कीलितमिव, निगलितमिव, वज्रलेपघटितमिव, अस्थिपिञ्जरप्रविष्टमिव, मर्मन्तरस्थितमिव, मज्जारसशबलितमिव, प्राणपरीतमिव, अन्तरात्मानमधिष्ठितमिव, रुधिराशये द्रवीभूतमिव, पल्लवसंविभक्तमिव — पं० शंकरदेव शास्त्री द्वारा संपादित वासवदत्ता, पृ०-170

3 भवभूति कृत मालतीमाधव, 5/10

द्वितीय अध्याय

उदयन और वासवदत्ता के पारम्परिक
आख्यान के सन्दर्भ में
सुबन्धु के इतिवृत्त का पर्यालोचन।

द्वितीय अध्याय

उदयन और वासवदत्ता के पारम्परिक आख्यान के सन्दर्भ में

सुबन्धु के इतिवृत्त का पर्यालोचन

सुबन्धु कृत वासवदत्ता के इतिवृत्त का पर्यालोचन करने से पूर्व संस्कृत साहित्य के प्राचीन ग्रन्थों तथा काव्यशास्त्रीय ग्रन्थों की दृष्टि से इतिवृत्त क्या है यह जानना अपेक्षित हो जाता है। संस्कृत साहित्य के प्रादुर्भाव से लेकर आधुनिक संस्कृत साहित्य तक इतिवृत्तों की दीर्घ परम्परा रही है। ऋग्वेद के संवाद सूक्त जैसे यम-यमी संवाद, विश्वामित्र-नदी संवाद, सरमापाणि इत्यादि संवादात्मक सूक्त इतिवृत्त को प्रथम आधारीय पृष्ठभूमि प्रदान करते हैं। विश्व के प्राचीनतम साहित्य वेदों की इसी विधा पक्ष से प्रेरित होकर कालान्तर में इतिवृत्त समन्वित साहित्य का प्रादुर्भाव हुआ। इतिवृत्त से तात्पर्य कथा, कथावस्तु अथवा कथानक से है। इतिवृत्त के सन्दर्भ में अग्नि पुराण में कहा गया है—

शरीरं नाटकादीनामिति वृत्तं प्रचक्षते ॥

सिद्धमुत्प्रेक्षितं चेति तस्य भेदावुभौ स्मृतौ ।

सिद्धमागमदृष्टं च सृष्टमुत्प्रेक्षितं कवेः ॥¹

अर्थात् इतिवृत्त को नाटक आदि का शरीर कहा जाता है। इतिवृत्त के दो भेद हैं— सिद्ध और उत्प्रेक्षित। आगम अर्थात् शास्त्र से प्राप्त कथानक सिद्ध कहलाता है। और कवि कल्पना प्रसूत कथानक उत्प्रेक्षित।

¹ अग्नि पुराण, 338/17,18

भरत मुनि ने इतिवृत्त अथवा कथानक को काव्य का शरीर माना है। उनके मतानुसार इतिवृत्त दो प्रकार का होता है— आधिकारिक तथा प्रासंगिक—

इति वृत्तं तु काव्यस्य शरीरं परिकीर्तितम् ।

पंचभिः सन्धिभिस्तस्य विभागाः परिकीर्तिताः ।।

इतिवृत्तं द्विधा चैव बुधस्तु परिवर्जयेत् ।

आधिकारिकमेकं तु प्रासंगिकमथापरम् ।।¹

कार्य के प्रारम्भ से फलप्राप्ति तक जो कथा चलती है उसे आधिकारिक तथा अन्य को प्रासंगिक कहते हैं—

यत्कार्यं तु फलप्राप्त्या सामर्थ्यात्परिकल्प्यते ।

तदाधिकारिकं ज्ञेयमन्यत् प्रासंगिकं विदुः ।।²

धनंजय ने कथावस्तु अथवा इतिवृत्त के विषय में कहा है कि वस्तु तीन प्रकार की होती है। इनमें मुख्य वस्तु आधिकारिक कथावस्तु कहलाती है तथा अंगरूप वस्तु प्रासंगिक कथावस्तु कहलाती है—

तत्राधिकारिकं मुख्यमंगं प्रासंगिकं विदुः ।³

धनंजय आधिकारिक शब्द की व्युत्पत्ति करते हुए उसका लक्षण करते हैं। फल पर स्वामित्व प्राप्त करना अधिकार कहलाता है। तथा उस फल का स्वामी अधिकारी कहलाता है। उस फल या फलभोक्ता के द्वारा फल प्राप्ति तक निर्वाहित वृत्त या

1 नाट्यशास्त्र, 21/1,2

2 नाट्यशास्त्र, 21/3

3 धनंजय कृत दशरूपक, 1/11

कथा आधिकारिक वस्तु कहलाती है।¹ प्रासंगिक वस्तु की व्याख्या करते हुए दशरूपककार कहते हैं—

प्रासंगिकं परार्थस्य स्वार्थो यस्य प्रसंगतः।²

अर्थात् जो कथा या वृत्त दूसरे अर्थात् आधिकारिक के प्रयोजन के लिये होती है किन्तु प्रसंग से जिसका स्वयं का फल भी सिद्ध हो जाता है वह प्रासंगिक वृत्त है। विश्वनाथ के अनुसार—

इदं पुनर्वस्तु बुधैर्द्विविधं परिकल्प्यते।

आधिकारिकमेकं स्यात्प्रासंगिकमथापरम्।³

यह वस्तु दो प्रकार की होती है—एक आधिकारिक, दूसरी प्रासंगिक। नाटक के प्रधान फल का स्वामित्व अधिकार कहलाता है और उस फल का स्वामी अधिकारी कहा जाता है। उस अधिकारी की कथा को आधिकारिक वस्तु कहते हैं—

अधिकारः फले स्वाम्यमधिकारी च तत्प्रभुः।

तस्येतिवृत्तं कविभिराधिकारिकमुच्यते।⁴

प्रधान वस्तु के साधक इतिवृत्त को प्रासंगिक वस्तु कहते हैं—

अस्योपकरणार्थं तु प्रासंगिकमितीष्यते।⁵

1 अधिकारः फलस्वाम्यमधिकारी च तत्प्रभुः।
तन्निर्वृत्तमभिव्यापि वृत्तं स्यादाधिकारिकम्॥
—दशरूपक, 1/12

2 दशरूपक, 1/13

3 विश्वनाथ कृत साहित्यदर्पण, 6/42

4 साहित्यदर्पण, 6/43

5 साहित्यदर्पण, 6/44

इतिवृत्त के ये भेद फल प्राप्ति की दृष्टि से किये गये हैं। लोकवृत्त की दृष्टि से कथावस्तु के तीन भेद किये गये हैं—प्रख्यात, उत्पाद्य एवं मिश्र—

प्रख्यातोत्पाद्यमिश्रत्वभेदात्त्रेधापि तत्त्रिधा ।

प्रख्यातमितिहासादेरुत्पाद्यं कविकल्पितम् ।।

मिश्रं च संकरात्ताभ्यां दिव्यमर्त्यादिभवेत् ।¹

अर्थात् यह तीन प्रकार का इतिवृत्त प्रख्यात उत्पाद्य तथा मिश्र इस प्रकार पुनः तीन-तीन प्रकार का होता है। प्रख्यात इतिहास, पुराण आदि से गृहीत होता है ; उत्पाद्य में कवि की स्वयं की कल्पना होती है तथा मिश्र कथानक में कवि इतिहास तथा पुराण को आधार बनाकर उसे अपनी कल्पना के समावेश द्वारा नवीन रूप देता है।

अरस्तु के अनुसार इतिवृत्त कुछ घटनाओं का ऐसा समूह है जिसमें विभिन्न तत्त्व एक दूसरे से इस प्रकार जुड़े होते हैं कि उनमें से किसी एक का भी परिवर्तन सम्पूर्ण कथानक के टूटने का कारण हो सकता है।

प्रो० मानसिंह का मत है कि कथावस्तु घटनाओं की एक श्रृंखला होती है।² रचना की दृष्टि से देखा जाए तो कथावस्तु को अव्यवस्थित रूप से दो भागों में बाँटा जा सकता है। अव्यवस्थित रूप से इसलिए क्योंकि दोनों प्रकार परस्पर सूक्ष्म प्रभाव डालते हैं। स्वतन्त्र अथवा अव्यवस्थित कथानक में अनेक पृथक्-पृथक् घटनाओं की रचना की जाती है जिनका परस्पर थोड़ा सा ही आवश्यक एवं तार्किक सम्बन्ध होता है। कथा की एकता न केवल कार्य के साधन पर निर्भर है अपितु उस

1 दशरूपक, 1/15, 16

2 Plot is the chain of events in a story and the principle which knits them together with emphasis on causality- Subandhu And Dandin: Their Works, Chapter-3, page-112

व्यक्ति पर भी जो नायक है, मुख्य पात्र है अथवा कथा का केन्द्र बिन्दु है तथा जो इधर-उधर बिखरे हुए कथानक को एक साथ बाँध देता है। इस प्रकार के कथानक से युक्त कथा नियमित तथा संयुक्त कथानक की अपेक्षा व्यक्ति के जीवन में घटित होने वाले मिश्रित साहसिक कार्यों का इतिहास होती है। इस प्रकार का कथानक बहुत सी छोटी उपकथाओं से युक्त तथा सामान्य अभिप्राय वाला होता है जिसके विस्तार में प्रत्येक तथ्य पृथक्-पृथक् तथा अति आवश्यक भूमिका निभाता है। इस प्रकार के कथानक में प्रत्येक दृश्य दूसरे दृश्य को आगे बढ़ाता है। किन्तु इस कथानक में भी अल्प मात्रा में क्रमिक एकता होती है।

दूसरी ओर क्रमिक कथानक में घटनाओं को उपकथाओं की भाँति नहीं माना जाता। वे एक निश्चित कथानक की आकृति के लिए अंगों के समान होती हैं। चरित्र तथा घटनायें अपने उचित स्थान को प्राप्त करने के लिए व्यवस्थित किये जाते हैं। कवि उन पंक्तियों को रख देता है जो षडयंत्र का उद्घाटन करती हैं जिससे हस्त व्यापार की अपेक्षा कथानक का स्वाभाविक विकास सामने आ सके। कवि के लिए यह आवश्यक नहीं कि वह स्वतन्त्र अथवा अव्यवस्थित कथानक के सम्पूर्ण घटनाक्रम को पहले ही निर्धारित कर ले। उसके लिए इतना ही पर्याप्त है कि वह अपने मस्तिष्क में विस्तृत किन्तु सामान्य कल्पना रखे जिससे कहानी उत्पन्न हो सके। जबकि अच्छी प्रकार से संबद्ध क्रमिक कथानक में यह आवश्यक है कि वह अपनी रचना के आरम्भ में ही विस्तृत रूप से सम्पूर्ण योजना को निर्धारित कर ले।¹

उदयन का वर्णन पौराणिक आख्यानों में पुरुवंशी राजा के रूप में हुआ है।

¹ Subandhu and Dandin: Their works, Chapter-3, page-112,113

उसका नाम कुरुक्षेत्र के युद्ध के पश्चात् हुए 29 पुरु राजाओं की सूची में सम्मिलित किया गया है। गंगा की बाढ़ में हस्तिनापुर के डूब जाने के कारण उन पुरु राजाओं ने अपनी राजधानी कौशाम्बी में स्थापित की थी—

Udayana is stated in the Puranas to be a descendent of Puru and his name is found in the list of 24 Puru Kings who lived after the Kurukshetra war. His descent can also be traced from Arjuna, the hero of great war. The Puru Kings removed their capital from Hastinapur to Kaushambi on the destruction of the former town by an inundation of the Ganges.¹

जैन साहित्य में भी उदयन का उल्लेख प्राप्त होता है। सोमप्रभ कृत 'कुमारपालप्रतिबोध' में राजा पज्जोय अर्थात् प्रद्योत द्वारा उदयन के बन्दी बनाये जाने तथा उसके वसुलदत्ता के साथ मुक्त होने की कथा वर्णित है।² हेमचन्द्र कृत 'त्रिषष्टिशलाकापुरुष' में उदयन का आख्यान वर्णित है।³ मालाधारी देवप्रभ ने 'मृगावतीचरित' में उदयन, वासवदत्ता तथा पद्मावती के आख्यान को प्रस्तुत किया है।⁴

बौद्ध साहित्य के अन्तर्गत भी उदयन का आख्यान वर्णित है—

The Cullavagga of the Vinay Pitaka, the Samyutta Nikaya and a few Jatakas are the canonical works which deals with some particulars incidents of Udayana's life. The Majjhima Nikaya is another canonical work which

1 The Dramas of Shri Harsha by Bela Bose, Introduction, page-8

2 The story belongs to the cycle of Udayana legends. Within the 'Paradargamane Pradyotakatha' is related the tale of Udayana's capture by Pajjoaya and his subsequent escape with Vasuladatta- The Story of King Udayana by Niti Adval, Introduction, page-35

3 The Story of King Udayana, Introduction, page-36

4 The Story of King Udayana, Introduction, page-36

gives us some valuable information about his son Bodhi.¹

बैजनाथ शर्मा ने भी बौद्ध साहित्य में प्राप्त उदयन के आख्यान के विषय में लिखा है—

Dhammapada commentry, Majjhim Nikaya commentry entitled Panchasudani, Dalhadhamma Jataka, Cullavagga of Vinaya Pitika, the Somyutta Nikaya, commentry of Visuddhimagga and the Milindapanha²

एक बौद्ध पाठ के अनुसार राजा उदयन मगध के राजा अजातशत्रु तथा उज्जयिनी नरेश प्रद्योत का समकालीन था।³ इसके अतिरिक्त पतंजलि कृत 'महाभाष्य'⁴ तथा कौटिल्य प्रणीत अर्थशास्त्र⁵ में उदयन का उल्लेख मिलता है।

कालिदास⁶ एवं शूद्रक⁷ ने उदयन का नामोल्लेख किया है। दामोदर गुप्त ने रत्नावली तथा वासवदत्ता के साथ उदयन का वत्सेश रूप में उल्लेख किया है—

रत्नावल्यामेता विदधाति करपादविक्षेपम् ।।

वत्सेशभूमिकास्या इयमनुकुरुते नरेश्वरस्यम् ।

वासवदत्ताचरितप्रयोगमेषा विडम्बयति ।।⁸

1 The Story of king Udayana, Introduction.. Page- 31

2 Cited by Baijnath Sharma, Harsha and His Times, page-308

3 a. Udayana, according to a Buddhist text, was a contemporary of King Ajatashatru of Magdhaand of King Pradyota of Ujjaini –The Dramas of Shri Harsha , Introduction, page-8

b. Priyadarshika, translated by Nariman, Jackson and Ogden, Introduction, page-63

4 पतंजलि कृत महाभाष्य, 2/2/13

5 दृष्टा हि जीवित पुनरावृत्ति यथा सुयात्रोदयनाभ्याम् । –कौटिल्य कृत अर्थशास्त्र, 9/7/43

6 क. प्राप्यावन्तीनुदयनकथाकोविदग्रामवृद्धान् । –कालिदास कृत मेघदूत, पूर्वमेघ, श्लोक-30

ख. प्रद्योतस्य प्रियदुहितर वत्सराजोऽत्र जह्ये । –कालिदास कृत मेघदूत, पूर्वमेघ, श्लोक-32

7 यौगन्धरायण इवोदयनस्य राज्ञः । –शूद्रक कृत मृच्छकटिक, 4/26

8 दामोदर गुप्त कृत कुट्टनीमतम्, श्लोक-800,801

भवभूति ने भी अपनी कृति 'मालतीमाधव' में वासवदत्ता तथा उदयन का नामोल्लेख किया है—

वासवदत्ता च संजयाय राज्ञे पित्रा दत्तमात्मानमुदयनाय प्रायच्छदित्यादि तदपि साहसाभासमित्यनुपदेष्टव्य एवायमर्थः।¹

तापसवत्सराजचरित नामक नाटक में वत्सराज उदयन का ही चरित्र ही वर्णित है। इस बात की पुष्टि भूमिका में प्राप्त 'कथाशरीरम्' नामक उपशीर्षक से हो जाती है।² गुणाढ्य ने अपने ग्रन्थ बृहत्कथा में उदयन तथा वासवदत्ता की कथा को विस्तृत रूप से वर्णित किया है। किन्तु पैशाची भाषा में लिखा यह ग्रन्थ अब अनुपलब्ध है। इसके अनुदित तीन संस्करण बुद्धस्वामी कृत बृहत्कथाश्लोकसंग्रह, क्षेमेन्द्र प्रणीत बृहत्कथामंजरी तथा सोमदेव विरचित कथासरित्सागर माने गये हैं। इनके अतिरिक्त कश्मीरी बृहत्कथा का भी उल्लेख मिलता है किन्तु उसके विषय में प्रामाणिक साक्ष्य प्राप्त नहीं होते।³

बृहत्कथाश्लोकसंग्रह—

बुद्धस्वामी द्वारा रचित यह ग्रन्थ खण्डित रूप में उपलब्ध है। इसके केवल 28 सर्ग ही प्राप्त हैं जिनमें लगभग 4539 श्लोक हैं। कवि ने गुणाढ्य की कृति को अपना आधार बनाया है। उन्होंने उदयन की अपेक्षा नरवाहनदत्त का अधिक वर्णन किया है।

1 भवभूति कृत मालतीमाधव, द्वितीय अंक, पृ०-112

2 अनंगहर्षमातुराज कृत तापसवत्सराजचरितम्, भूमिका, पृ०-7

3 क. ए० बी० कीथ कृत संस्कृत साहित्य का इतिहास, पृ०-340

ख. टी० जी० माईणकर कृत संस्कृत साहित्य का इतिहास, पृ०-66

बृहत्कथामंजरी—

क्षेमेन्द्र की यह रचना 18 लम्बकों में विभक्त है। जिनके नाम इस प्रकार हैं—
कथापीठ, कथामुख, लावानक, नरवाहनदत्त जन्म, चतुर्दारिका, सूर्यप्रभ, मदनमंजुका,
बेला, शशांकवली, विषमशील, मदिरावती, पद्मावती, पंचलम्बत, रत्नप्रभा, अलंकारवली,
शक्तियशोलम्बक, महाभिषेक तथा सूरतमंजरी। इसमें नायक की विजय का वर्णन
किया गया है। प्रत्येक लम्बक में नायक की किसी महत्त्वपूर्ण उपलब्धि का वर्णन
किया गया है। कथापीठ भूमिका के रूप में प्रस्तुत किया गया है। इसके पश्चात्
उदयन तथा नरवाहनदत्त के साहसिक कार्यों का उल्लेख किया गया है। इस ग्रन्थ में
वर्णित उदयन का आख्यान कथासरित्सागर के समान ही है। कुछ स्थलों पर ही
वैषम्य है।

कथासरित्सागर—

कथासरित्सागर कथा-साहित्य का शिरोमणि ग्रन्थ है। इसे काश्मीरी पंडित
सोमदेव ने त्रिगर्त अथवा कुल्लू-कांगडा के राजा की पुत्री, कश्मीर के राजा अनन्त
की रानी सूर्यमती के मनोविनोद के लिये ई० 1063 तथा 1081 के बीच में लिखा।
ग्रन्थ में 21388 पद्य हैं और लेखक ने उसे 124 तरंगों में बाटा है। इसका दूसरा
भाग लम्बकों में है, जिनकी संख्या 18 है। यह ग्रन्थ अपने वर्तमान रूप में अनेक
छोटी बड़ी कहानियों का संग्रह है। सोमदेव ने यथार्थ ही इसे कथा रूपी नदियों का
सागर कहा है। अपने ग्रन्थ के आरम्भ में उन्होंने लिखा है—

बृहत्कथायाः सारस्य संग्रहं रचयाम्यहम्।

(प्रथम तरंग, श्लोक—3)

इसी सूचना को अन्तिम प्रशस्ति में इस प्रकार विशद रूप से कहा गया है—

नानाकथामृतमयस्य बृहत्कथायाः सारस्य सज्जनमनोम्बुधिपूर्णचन्द्रः।

सोमेन विप्रवरभूरिगुणाभिरामरामात्मजेन विहितः खलु संग्रहोऽयम्।।¹

कथावस्तु—

कथापीठ नामक प्रथम लम्बक आठ तरंगों में विभाजित है। मंगलाचरण के पश्चात् कथा की उत्पत्ति के संबंध में सोमदेव ने लिखा है—एक बार शिव ने पार्वती से सात विद्याधर चक्रवर्तियों की आश्चर्यमयी कथाओं का वर्णन किया। यद्यपि शिव की वार्ता एकान्त में हुई थी। किन्तु उनके अनुचर पुष्पदन्त ने वे कहानियाँ सुन लीं, और अपनी पत्नी जया को उन्हें सुना दिया। जया ने उन कहानियों को अपनी सखियों से कहा। जब यह बात पार्वती ने सुनी, तो उन्होंने रुष्ट होकर पुष्पदन्त को मर्त्यलोक में जन्म लेने का शाप दिया। पुष्पदन्त के भाई माल्यवान ने उसकी ओर से क्षमा याचना की तो उसे भी वैसा ही दंड मिला। पुष्पदन्त की पत्नी जया पार्वती की परिचारिका थी। जब पार्वती ने अपनी सखी को शोकमग्न देखा, तो उन्होंने अपने शाप का परिहार करते हुए कहा कि पुष्पदन्त का विन्ध्यपर्वत में काणभूति नामक एक पिशाच से मिलना होगा। उसे अपने पूर्व जन्मों की स्मृति बनी रहेगी और जब वह काणभूति को ये कथाएँ सुनायेगा, तब उसकी शाप—मुक्ति होगी। माल्यवान भी जब काणभूति से इन बृहत्कथाओं को सुनकर लोक में इनका प्रचार करेगा, तब वह पुनः स्वर्ग लौट आयेगा। इस विधान के अनुसार पुष्पदन्त ने कौशाम्बी में वररुचि—कात्यायन के रूप में जन्म लिया और वह महान् वैयाकरण एवं नन्द—वंश के

¹ कथासरित्सागर, भूमिका, पृ० 5

अन्तिम राजा योगानन्द का मंत्री हुआ। अंत में वह वनवासी हो गया और विंध्याचल की विंध्यवासिनी देवी की यात्रा में काणभूति से उसकी भेंट हुई। तब उसे अपने पूर्व जन्म की स्मृति हुई और उसने काणभूति को वे सात बृहत्कथाएँ सुनायीं। तत्पश्चात् वह शापमुक्त होकर स्वर्ग चला गया। उसके भाई माल्यवान ने भी मृत्युलोक में प्रतिष्ठान पुरी में गुणाद्य के रूप में जन्म लिया और राजा सातवाहन का मंत्री हुआ। गुणदेव और नन्दिदेव उसके दो शिष्य थे। उन्हें लेकर वह काणभूति के पास आया। वहाँ काणभूति से उसे सात बृहत्कथाएँ प्राप्त हुईं। उसने प्रत्येक को एक-एक लाख श्लोकों में अपने रक्त से लिखा। उन कथाओं को राजा के पास इस निश्चय से भेजा कि वह उनकी रक्षा करेगा। परन्तु पिशाचों की भाषा में लिखी हुई कहानियों को राजा ने पसन्द नहीं किया। इस समाचार से गुणाद्य को बहुत दुःख हुआ और उसने छः कहानियाँ जला दीं। किन्तु शिष्यों के अनुरोध पर एक कहानी बची रहने दी। उस कथा को सुनकर जंगल के जीव भी मोहित हो गये। जब राजा सातवाहन को यह ज्ञात हुआ तो उसे पश्चाताप हुआ और उसने गुणाद्य के स्थान पर जाकर बचे हुए कथाभाग को उससे ले लिया। उसने गुणदेव और नन्दिदेव की सहायता से उसका अध्ययन किया और कथा की उत्पत्ति का वर्णन करने वाला अंश स्वयं जोड़ा। (कृष्णमाचार्य द्वारा संपादित संस्कृत साहित्य का इतिहास, पृ० 414-415)।¹

कथामुख नामक दूसरे लम्बक में उदयन की कथा का प्रारम्भ होता है। राजा उदयन वत्स देश के राजा सहस्रानीक तथा रानी मृगावती का पुत्र था। उसके जन्म

1 कथासरित्सागर, भूमिका, पृ० 19-20.

के समय आकाशवाणी हुई कि यह उदयन नाम का महायशस्वी राजा उत्पन्न हुआ है जो समस्त विद्याधरों का राजा होगा—

श्रीमनुदयनो नाम्ना राजा जातो महायशाः ।

भविष्यति च पुत्रोऽस्य सर्वविद्याधराधिपः ॥¹

वत्स देश का शासन प्राप्त करने के पश्चात् राजा उदयन अपने मंत्रियो—यौगन्धरायण तथा रुमण्वान् पर शासन भार छोड़कर निश्चिंत हो गया। उसके सुखोपभोग का एक मात्र साधन वीणावादन था जो उसे वासुकि से बाल्यकाल में प्राप्त हुई थी।² वासवदत्ता के पिता उज्जैन के राजा चंडमहासेन तथा उदयन परस्पर शत्रु थे। किन्तु चण्डमहासेन अपनी पुत्री के योग्य उदयन को ही मानता था। अतः उसने यह सन्देश देकर भेजा कि मेरी पुत्री वासवदत्ता तुमसे संगीत सीखना चाहती है। किन्तु उदयन ने यह प्रस्ताव अस्वीकार कर दिया। तब चण्डमहासेन ने उदयन को यान्त्रिक गज का प्रलोभन देकर बन्दी बना लिया तथा वासवदत्ता को संगीत शिक्षा के लिये उदयन के समीप भेज दिया। कुछ समय पश्चात् वासवदत्ता को उदयन के प्रति प्रगाढ़ प्रेम हो गया। राजा चंडमहासेन के अभिमान को भंग करने के निश्चय से राजा उदयन ने मंत्री यौगन्धरायण की सहायता से वासवदत्ता का अपहरण कर लिया। किन्तु बाद में राजा चण्डमहासेन ने अपने एक दूत को राजा उदयन के समीप भेज कर यह स्वीकार कर लिया कि जो कुछ राजा उदयन ने किया वही उसे अभिप्रेत था—

1 कथासरित्सागर, 2/1/69.

2 सदा सिंघेवे मृगयां वीणं घोषवतीं च ताम् ।

दत्तां वासुकिनां पूर्वं नक्तन्दिनमवादयत् ॥ —कथासरित्सागर, 2/3/3

स चागत्य प्रणम्यैनं राजानमिदमब्रवीत् ।

राजा चण्डमहासेनस्तव सन्दिष्टवानिदम् ।।

युक्तं वासवदत्ता यतस्वयमेव त्वया हता ।

तदर्थमेव हि मया त्वमानीत इहाभवः ।।¹

लावाणक नामक तीसरा लम्बक है। राजा उदयन वासवदत्ता से अत्यधिक प्रेम होने के कारण राज्य शासन पर तनिक भी ध्यान नहीं देता था। यौगन्धरायण तथा रुमण्वान दोनों मंत्री उसके इस कार्य से असन्तुष्ट थे अतः दोनों मन्त्रियों ने यह योजना बनायी कि राजा उदयन का विवाह मगध के राजा प्रद्योत की पुत्री पद्मावती से करा दिया जाये तथा वासवदत्ता को अन्यत्र छिपाकर यह प्रचारित कर दिया जाये कि वासवदत्ता जल गयी है। इस संबंध में यौगन्धरायण मंत्री रुमण्वान से कहता है कि हमारे उद्योग से राजा उदयन समस्त पृथ्वी का शासक बन सकेगा ऐसी आकाशवाणी पहले हो चुकी है।² राज्य के हित के लिये वासवदत्ता भी इस योजना में सम्मिलित थी। वासवदत्ता के जलने का समाचार सुनकर उदयन स्वयं भी अग्नि में जलकर प्राण देने को उद्यत हो गया। किन्तु तभी नारद ऋषि के वचनों का स्मरण करके उसने यह विचार त्याग दिया। नारद ऋषि ने कहा था कि इस रानी से एक पुत्र उत्पन्न होगा जो विद्याधरों का राजा होगा।³ वासवदत्ता की मृत्यु का समाचार जानकर राजा प्रद्योत ने उदयन तथा पद्मावती के विवाह को स्वीकृति दे दी। उदयन तथा पद्मावती का विवाह होने के पश्चात् वासवदत्ता भी गुप्त रूप से उसके साथ

1 कथासरित्सागर, 2/6/2, 3

2 कृतोद्योगेषु चास्मासु पृथिवीमेष भूपतिः ।

प्राप्नुयादेव पूर्वं हि देव्या वागेवमब्रवीत् ।। -कथासरित्सागर, 3/2/27

3 कथासरित्सागर, 3/2/ 50-52

चली आयी। नगर पहुँचने पर पद्मावती के सैनिकों ने उसे सूचना दी कि अवन्तिका यहाँ आकर राजकुमार गोपालक के घर चली गयी है। उदयन जब गोपालक के घर पहुँचा तो उसने वासवदत्ता को मंत्रियों यौगन्धरायण तथा रुमण्वान के साथ देखा। उदयन उसे वापस ले आया तथा वासवदत्ता एवं पद्मावती के साथ सुखपूर्वक निवास करने लगा। इसके पश्चात् कवि ने राजा उदयन को सिंहासन तथा गुप्त सम्पदा प्राप्त होने तथा दिग्विजय के लिये प्रस्थान करने की कथा का वर्णन किया है।

चौथे लम्बक का नाम नरवाहनदत्त जनन है। इस लम्बक में राजा उदयन तथा वासवदत्ता के पुत्र नरवाहनदत्त तथा मंत्रियों के पुत्रों मरुभूति तथा हरिशिख के जन्म की कथा वर्णित है।

चतुर्दारिका नामक पांचवे लम्बक में मुख्य रूप से शक्तिवेग नामक विद्याधर के उदयन के पुत्र नरवाहनदत्त को देखने के लिये आने तथा विद्याधरत्व की प्राप्ति किस प्रकार होती है इसका वर्णन किया गया है।

मदनमंचुका नामक छठे लम्बक के अन्तर्गत तक्षशिला के राजा कलिंगदत्त की पुत्री कलिंगसेना के विवाह के लिये उदयन के पास आने तथा यौगन्धरायण की नीति से कलिंगसेना एवं विद्याधरपति मदनवेग के विवाह, नरवाहनदत्त तथा कलिंगसेना की पुत्री मदनमंचुका के विवाह का विवरण प्राप्त होता है।

इसके पश्चात् सातवें लम्बक से सत्रहवें लम्बक तक मुख्य रूप से नरवाहन दत्त की कथा का विवरण प्राप्त होता है। अठारहवें लम्बक में महेन्द्रादित्य के पुत्र विक्रमादित्य का आख्यान उपलब्ध होता है।

स्वप्नवासवदत्तम्—

भास ने अपने नाटक 'स्वप्नवासवदत्तम्' में उदयन तथा वासवदत्ता के विवाह के पश्चात् उदयन के द्वितीय विवाह के घटनाचक्र को प्रस्तुत किया है। स्वप्नवासवदत्तम् की कथा इस प्रकार है—

प्रथम अंक में लावाणक ग्राम से निकलकर यौगन्धरायण और वासवदत्ता, क्रमशः ब्राह्मण, संन्यासी और अवन्तिका के वेष में, मगध की राजधानी राजगृह के निकटवर्ती किसी आश्रम में पहुँचते हैं। इसी समय मगधराज दर्शक की बहिन पद्मावती भी उसी आश्रम में एकान्त जीवन बिता रही अपनी माता से मिलने के लिए, अपने परिजनों के साथ वहाँ आती है। अपने धर्मानुरागी स्वभाव के अनुरूप वह वहाँ घोषणा कराती है कि वह तपस्विजनों को इच्छित वस्तु प्रदान करेगी। यौगन्धरायण अवसर पाकर निवेदन करता है— मुझे किसी पदार्थ की इच्छा नहीं, किंतु मेरी प्रार्थना है कि राजकुमारी मेरी इस बहिन अवन्तिका को, जिसका पति विदेश गया हुआ है, कुछ समय के लिए अपने पास रखें। पद्मावती उसकी अभ्यर्थना को स्वीकार करती है और अवन्तिका अर्थात् वासवदत्ता पद्मावती के पास चली जाती है।

उसी समय वहाँ एक ब्रह्मचारी आता है। लावाणक ग्राम से आया वह ब्रह्मचारी उस ग्राम में आग लग जाने एवं उस आग में वासवदत्ता और यौगन्धरायण के जलकर मरने का समाचार सुनाता है। वह उक्त समाचार को सुनकर व्याकुल हो गए उदयन की करुण दशा का भी वर्णन करता है। यौगन्धरायण और वासवदत्ता अनजान बनकर यह सब—कुछ सुनते हैं। कुछ समय पश्चात् यौगन्धरायण पद्मावती से अनुमति लेकर वहाँ से चला जाता है। पद्मावती भी अवन्तिका के साथ आश्रम में

स्थित अपने कक्ष में चली जाती है।

द्वितीय अंक में राजकुमारी पद्मावती के अपने भाई मगधराज दर्शक के राजप्रासाद के साथ लगी वाटिका में अपनी सखियों के साथ गेंद खेलते समय उसकी चेटी अवन्तिका का बताती है कि राजकुमारी वत्सराज उदयन से विवाह-सम्बन्ध की इच्छुक है। इसी बीच पद्मावती की धात्री वहां आकर समाचार देती है कि किसी कार्यवश यहां आए उदयन ने महाराज दर्शक के आग्रह करने पर, पद्मावती के साथ विवाह करना स्वीकार कर लिया और पद्मावती का वाग्दान भी हो गया है। वह यह भी सूचना देती है कि कौतुक-मंगल अर्थात् विवाह सूत्र बांधने का मंगलाचार आज ही सम्पन्न होगा। वह राजकुमारी को उक्त मंगलाचार के अनुष्ठान के लिए अपने साथ ले जाती है।

तृतीय अंक के अन्तर्गत अवन्तिका प्रमदवन के एक कोने में अपने भाग्य को उलाहना देते हुए यह सोचकर दुखी हो जाती है कि उसके पति का अन्य स्त्री से विवाह होने वाला है। अवन्तिका से जयमाला गुंथवाने के लिए उसे ढूँढ़ती हुई महारानी की एक चेटी पुष्प लेकर उसके पास प्रमदवन पहुँचती है और उसे शीघ्र ही जयमाला तैयार करने का कहती है अवन्तिका जयमाला गुंथकर उसे दे देती है।

चतुर्थ अंक में विवाह के अनन्तर उदयन राजकीय अतिथि के रूप में महाराज दर्शक के राजप्रासाद में निवास करता है। उसका मित्र विदूषक भी उसके साथ है। वे दोनों प्रमदवन में प्रवेश करते हैं। वहाँ पहले से ही उपस्थित वासवदत्ता उदयन को देखकर निकटस्थ माधवी-लतामण्डप में प्रवेश करती है। उदयन और विदूषक लतामण्डप के समीप जाते हैं एवं सहज भाव से उसके अन्दर प्रवेश करना चाहते हैं।

यह देख चेटी भौरों से घिरे लताद्वार की एक शाखा को हिलाकर उन्हें बाहर ही रोक देती है। वे बाहर ही एक शिलातल पर बैठ जाते हैं और परस्पर बातें करने लगते हैं। विदूषक पूछता है— आपको पहले वासवदत्ता अधिक प्रिय थी अथवा अब पद्मावती अधिक प्रिय है? उदयन उसके इस अटपटे प्रश्न को टालने का प्रयत्न करता है, किन्तु विदूषक बहुत हठ करके उससे कहलवा लेता है— सुन्दर और गुणवती होने पर भी पद्मावती वासवदत्ता में आबद्ध मेरे हृदय को हर नहीं पाती। वासवदत्ता की स्मृति से उदयन की आँखें बरबस सजल हो जाती हैं। विदूषक मुख धोने के लिए पानी लेने जाता है। तत्क्षण में अवन्तिका अवसर पाकर वहाँ से निकल जाती है और पद्मावती उदयन के पास पहुँचती है। विदूषक और उदयन काश—कुसुम की धूल पड़ जाने से आँखें सजल हो गई हैं यह बहाना बनाते हैं। पद्मावती सब कुछ सुन—समझकर भी चुप रहती है। इसके बाद, स्थिति कहीं बिगड़ न जाए, यह सोचकर विदूषक राजा को वहाँ से चतुराई पूर्वक ले जाता है।

पंचम अंक में महाराज दर्शक के राजप्रसाद में ही निवास करते हुए उदयन विदूषक से पद्मावती की शिरोवेदना का समाचार पाकर, और साथ ही उससे यह जानकर कि उसकी शय्या, उपचार आदि का प्रबन्ध समुद्रगृह में किया गया है, वहाँ पहुँचता है। समुद्रगृह में पद्मावती की प्रतीक्षा में उसकी शय्या पर स्वयं लेट जाता है। लेटते ही उसे नींद आ जाती है। विदूषक शीत से बचाव के लिए चादर लेने चला जाता है। कुछ समय पश्चात् अवन्तिका भी, पद्मावती की शिरोवेदना का समाचार पाकर, वहाँ आती है। वह उसी शय्या पर सोए उदयन को पद्मावती समझकर, लेट जाती है। इसी समय राजा स्वप्न में वासवदत्ता को देखता है और

उसे प्रेमपूर्ण शब्दों से संबोधित करता है। साथ लेटी हुई अवन्तिका स्वप्न में बोल रहे राजा की बातों का उत्सुकतावश उत्तर देने लग जाती है, परन्तु कुछ समय बाद ही, इस भय से कि कहीं राजा जागकर उसे पहचान न लें, वह वहाँ से चल देती है। जाते-जाते वह राजा के नीचे लटक रहे हाथ को पलंग पर टिका देती है। तत्क्षण अचानक राजा की नींद खुल जाती है। वह वासवदत्ता को पकड़ने का प्रयत्न करता है, परन्तु दरवाजे से टकराकर वहीं रुक जाता है। इसी समय विदूषक लौटकर आता है। राजा उसे सारी घटना सुनाकर कहता है कि वासवदत्ता जीवित है, परन्तु विदूषक उसकी बात को यह कहकर अनसुना कर देता है कि उसने वासवदत्ता को स्वप्न में देखा होगा, क्योंकि उसकी मृत्यु हो चुकी है।

इसी समय कंचुकी आकर सूचना देता है कि अमात्य रुमण्वान् ने मगध राज की सहायता से आरुणि पर आक्रमण करने की पूरी तैयारी कर ली है। उदयन युद्ध के लिए प्रस्थान करता है।

षष्ठ अंक के अन्तर्गत युद्ध में आरुणि को पराजित करके उदयन अपना खोया राज्य पुनः प्राप्त करता है। वह पद्मावती तथा अवन्तिका के साथ अपनी राजधानी कौशाम्बी पहुँचता है। एक दिन उदयन ने 'घोषवती' वीणा की, जिसे वासवदत्ता प्रायः बजाया करती थी, मधुर ध्वनि सुनी। अपने सेवक से उस वीणा को मँगवाकर एवं उसे पहचानकर वह वासवदत्ता की स्मृति में विह्वल हो जाता है। तदनन्तर उज्जयिनी से राजा प्रद्योत का कंचुकी और वासवदत्ता की धात्री राजद्वार पर उपस्थित होते हैं। वे दोनों प्रद्योत की ओर से उदयन को, उसकी स्वराज्य-प्राप्ति पर, बधाई देते हैं। कंचुकी उदयन को प्रद्योत का संदेश देते हुए उसके समक्ष उस चित्र को

रखता है जिसे प्रद्योत ने, विवाह-विधि के बिना ही उदयन और वासवदत्ता के उज्जयिनी से छिपकर निकल आने पर, उनके विवाह-संस्कार की रीति पूरी करने के निमित्त बनवाया था। उस चित्र में अंकित वासवदत्ता को देखकर पद्मावती उदयन को बताती है कि ठीक उसी आकृति की एक स्त्री उसके पास रहती है। वह कहती है कि उसके अपने विवाह से पूर्व कोई संन्यासी उसे अपनी प्रोषितपतिका बहिन बताकर उसके पास कुछ समय के लिए धरोहर के रूप में छोड़ गया था।

उसी समय संन्यासी के वेष में यौगन्धरायण वहाँ उपस्थित होता है और अपनी बहिन को वापिस माँगता है। राजा उज्जयिनी से आए कंचुकी और धात्री को साक्षी बनाकर उक्त संन्यासी को उसकी बहिन लौटा देने का आदेश देता है। धात्री देखते ही वासवदत्ता को पहचान जाती है। अब यौगन्धरायण भी अपने वास्तविक स्वरूप को एवं अपनी पूरी योजना को प्रकट कर देता है। उदयन अपनी प्रेयसी वासवदत्ता एवं प्रिय सचिव यौगन्धरायण को पुनः प्राप्त करके प्रसन्न होता है, और यह समाचार प्रद्योत को सुनाने के लिए, वासवदत्ता और पद्मावती को साथ लेकर, कंचुकी और धात्री के साथ उज्जयिनी चलने का प्रस्ताव करता है।

इसके अनन्तर नाटक सुखान्त रूप में भरतवाक्य से समाप्त होता है।¹

वासवदत्ता—

वासवदत्ता कथा में सुबन्धु ने कन्दर्पकेतु तथा वासवदत्ता की प्रणय गाथा को निबद्ध किया है। चिन्तामणि नामक एक राजा था। उसने अपने पराक्रम से पृथ्वी के समस्त राजाओं को विजित कर लिया था। उसका पुत्र कन्दर्पकेतु भी अपने पिता के

1 भास कृत स्वप्नवासवदत्तम्, भूमिका, पृ० 24-25

समान पराक्रमी तथा रूपवान था। उसकी कीर्ति सप्त सागर पर्यन्त फैली थी। एक दिन जब प्रातःकाल होने वाला था तब कन्दर्पकेतु ने स्वप्न में अठारह वर्षीय कन्या को देखा। उस कन्या को देखकर वह उस पर मोहित हो गया। काम पीड़ित राजकुमार ने अन्न जल त्यागकर स्वयं को अपने कक्ष में बन्द कर लिया। उसका मित्र मकरन्द राजकुमार की इस दशा को देखकर दुःखी हो गया। वह अपने मित्र को उचित-अनुचित के विषय में समझाता है। किन्तु राजकुमार उसके नीतिपूर्ण वचनों को सुनकर भी यह कहकर अस्वीकार कर देता है कि यह उपदेश का अवसर नहीं है। मेरी इन्द्रियों मेरे वश में नहीं हैं। कन्दर्पकेतु के वचनों को सुनकर मकरन्द उसके साथ कन्या की खोज में निकल पड़ता है। मार्ग में वे विन्ध्याटवी पहुंचते हैं। वहाँ रात्रि हो जाने के कारण वे जामुन के वृक्ष के नीचे विश्राम करते हैं। अर्ध रात्रि व्यतीत होने पर वे दोनों शुक तथा सारिका के वार्तालाप को सुनते हैं। शुक के विलम्ब से आने के कारण सारिका उस पर क्रोधित होती है। तब शुक अपने देर से आने का कारण बताते हुए उसे कथा सुनाता है—कुसुमपुर नामक नगर पर शृंगारशेखर नाम का राजा राज्य करता था। उसकी पत्नी का नाम अनंगवती तथा पुत्री का नाम वासवदत्ता था। वासवदत्ता अत्यन्त सुंदर थी। वह विवाह योग्य होने पर भी विवाह नहीं करना चाहती थी। एक बार शृंगारशेखर ने उसकी सखियों से उसके अभिप्राय को जानकर उसके विवाह के लिये स्वयंवर का आयोजन किया। उस स्वयंवर में विभिन्न देशों से आये हुए राजकुमार सम्मिलित हुए। किन्तु वासवदत्ता ने किसी भी राजकुमार का वरण नहीं किया। उसी रात्रि में उसने स्वप्न में एक युवक को देखा तथा यह जाना कि वह युवक राजा चिन्तामणि का पुत्र कन्दर्पकेतु है। स्वप्न

में दर्शन होने के पश्चात् वह उस युवक पर अनुरक्त हो गयी और विरह वेदना से व्याकुल हो गयी। तब उसकी सखियों ने विश्वासपात्र तमालिका नामक सारिका को उस युवक की खोज में भेज दिया। शुक सारिका से कहता है कि वह तमालिका नामक सारिका उसके साथ ही आयी है तथा वृक्ष के नीचे बैठी है।

सम्पूर्ण वृत्तान्त को जानने के पश्चात् कन्दर्पकेतु तमालिका का स्वागत करता है तथा उससे वासवदत्ता के विषय में विविध प्रश्न करता है। वे दोनों तमालिका के साथ कुसुमपुर नगर की ओर जाते हैं। रात्रि में जब वह वासवदत्ता के भवन पर पहुँचते हैं तो कन्दर्पकेतु उसके महल के ऐश्वर्य को देखकर चकित हो जाता है। वासवदत्ता को अपने समक्ष देखकर वह आनन्द से मूर्च्छित हो जाता है। वासवदत्ता की भी यही दशा होती है। वासवदत्ता की विश्वासपात्र सखी कलावती कन्दर्पकेतु को उसकी विरह वेदना के विषय में बताती है। वह कन्दर्पकेतु को बताती है कि राजा शृंगारशेखर ने वासवदत्ता का विवाह उसकी इच्छा के विरुद्ध विद्याधरों के प्रमुख विजयकेतु के पुत्र पुष्पकेतु के साथ तय कर दिया है और वासवदत्ता ने यह निश्चय कर लिया कि यदि तमालिका उस युवक को खोजने में सफल नहीं हुई तो वह आत्मदाह कर लेगी। कन्दर्पकेतु वासवदत्ता को मनोजव नामक अश्व पर बैठाकर अपहरण कर लेता है। वे विन्ध्याटवी पहुँचते हैं। वहां थकान के कारण वे एक लताकुंज में विश्राम करते हैं। तदन्तर वासवदत्ता कन्दर्पकेतु के लिये फल मूल आदि लाने चली जाती है। जागने पर कन्दर्पकेतु अपनी प्रिया को खोजने निकलता है किन्तु उसे न पाकर वह विलाप करने लगता है। प्रिया के बिना अपना जीवन व्यर्थ मानकर वह समुद्र में डूबकर अपना जीवन समाप्त करना चाहता है। उसी समय

आकाशवाणी होती है कि तुम्हारा अपनी प्रिया से पुनः मिलन होगा। पुनः मिलन की आशा उसे जीवित रहने के लिये प्रेरित करती है। वह वासवदत्ता की खोज में इधर-उधर भटकता रहता है। शरद ऋतु के आने पर एक प्रस्तर प्रतिमा को देखकर वह उसका स्पर्श करता है। उसी क्षण वह प्रस्तर प्रतिमा वासवदत्ता में परिवर्तित हो जाती है। कन्दर्पकेतु उससे पूछता है कि यह सब किस प्रकार हो गया। वासवदत्ता उत्तर देती है कि मैं आपके भोजन के निमित्त कुछ फल लेने के लिये लता कुंज से बाहर निकली थी। उस समय एक सेना का समूह उसकी ओर आया। वासवदत्ता ने सोचा कि सम्भवतः यह मेरे पिता के द्वारा मेरी खोज में भेजी गयी सेना है। तत्पश्चात् एक अन्य किरात सेना के सेनापति ने उसे देख लिया। दोनों किरात सेनाएँ वासवदत्ता को प्राप्त करने के लिये परस्पर युद्ध करने लगी। उनके युद्ध से समीपस्थ मुनि का आश्रम नष्ट-भ्रष्ट हो गया। अपने आश्रम की दुर्दशा का कारण वासवदत्ता को जानकर उन्होंने उसे प्रस्तर प्रतिमा बन जाने का शाप दे दिया। परन्तु उसे दुःखी जानकर वे शाप अवधि निश्चित कर देते हैं कि स्वामी द्वारा स्पर्श किये जाने पर वह पुनः अपने वास्तविक स्वरूप को प्राप्त कर लेगी। उसी समय मकरन्द भी वहाँ आ गया। तत्पश्चात् कन्दर्पकेतु प्रिया वासवदत्ता तथा मित्र मकरन्द के साथ अपने नगर लौट जाता है तथा सुखपूर्वक निवास करता है।

कथा का मूल स्रोत—

उपर्युक्त कथाओं के विवरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि सुबन्धु कृत वासवदत्ता का अन्य किसी कथा से साम्य नहीं है। एम० कृष्णमाचारियर के शब्दों में भोज ने 'शृंगारप्रकाश' में लीलावती नामक आख्यायिका को उद्धृत किया है, जो अब

अनुपलब्ध है। इस में कन्दर्पकेतु और लीलावती की प्रणय कथा को प्रस्तुत किया गया है तथा इस की कथा 'वासवदत्ता' की कथा के लगभग समान है। केवल नायिका का नाम वासवदत्ता के स्थान पर लीलावती है। उन्होंने स्वयं यह प्रश्न प्रस्तुत किया है कि क्या यह संभव है कि सुबन्धु की कथा का स्रोत लीलावती रही हो जिसका उन्होंने पुनः नवीन रूप में सृजन किया हो। किन्तु स्वयं ही उन्होंने इस मत को अस्वीकार कर दिया है।¹ इस विषय में प्रो० मानसिंह का कथन है कि सुबन्धु की प्रेम कथा का संस्कृत साहित्य में कोई साम्य नहीं है। इसकी कथा उनकी अपनी खोज है अथवा उसका विषय उन्होंने किसी पुरानी लोककथा से लिया है इसका उल्लेख साहित्य में नहीं मिलता। सुबन्धु केवल भास के ऋणी कहे जा सकते हैं जिनकी रचना स्वप्नवासवदत्ता से उन्होंने स्वप्न वृत्तान्त तथा उनकी नायिका के नाम को ग्रहण किया। कवि ने प्रचुरता से साहित्य तथा ग्रामीण कथाओं में पाये जाने वाली घटनाओं का प्रयोग किया है किन्तु कहानी उनकी अपनी है तथा अन्य किसी साहित्यिक रचना से प्रेरित नहीं है।²

इस सम्बन्ध में लुइस एच० ग्रे० का भी यही मत है कि सुबन्धु ने अपनी कृति का नाम भास कृत स्वप्नवासवदत्ता के नाम पर ही रखा है—

The titles of the Vasavadatta of Subandhu, the oldest romantic novel in India, seems to be derived from that of a long lost drama by Bhasa, the Svapnavasavadatta, or Dream Vasvadatta'³

1 History of Classical Sanskrit Literature by M. Krishnamachariar, page-467

2 Subandhu And Dandin : Their Works, Chapter-2 , page-51-

3 Subandhu 1

इसके अतिरिक्त मैक्डानल ने इस तथ्य को स्वीकार किया है कि सुबन्धु कृत वासवदत्ता में केवल नायिका का नाम ही अन्य कृतियों से सादृश्य रखता है।

“Vasavadatta by Subandhu relates the popular story of the heroine Vasavadatta, Princess of Ujjayini, and Udayana, King of Vatsa. Subandhu’s Vasavadatta has, in fact, only the name of the heroine in common.”¹

लुइस एच० ग्रे० के मतानुसार भी मात्र नायिका का नाम ही समान हैं, संस्कृत साहित्य की किसी अन्य कथा से कुछ नहीं लिया गया है—

With the Vasavadatta of these latter works Subandhu’s heroine has only her name in common, nor is any other story concerning her known to exist in sanskrit literature.²

प्रो० मानसिंह ने कहा है कि सुबन्धु ने लोक कथाओं में पायी जाने वाली घटनाओं का प्रयोग किया है। इस सम्बन्ध में यह द्रष्टव्य है कि विंटरनिट्स ने भी इस विषय में अपनी सहमति प्रदान की है। उनके अनुसार विस्तृत रूप से अध्ययन करने पर यह सिद्ध होता है कि कुछ भारतीय तथ्यों ने अपना मार्ग ग्रीक कथाओं से लिया है, किन्तु ग्रीक कथाएँ भारत से पूरी तरह उद्धृत नहीं हैं। सुबन्धु अतिशयोक्ति का बहुत अधिक प्रयोग करते थे। इसीलिये उन्होंने अपनी नायिका की प्रेम-पीड़ा को यह कहकर व्यक्त किया—‘जिस पीड़ा से यह युवती पीड़ित है केवल तभी व्यक्त की जा सकती है, यदि आकाश कागज हो जाये, समुद्र दवात बन जाये, ब्रह्मा लेखक बन

¹ Cited by Maan Singh, Subandhu and Dandin : Their works, Chapter-2, Page 48

² Subandhu 2

जायें, सर्पराज वक्ता हो जायें तो कदाचित् अनेक सहस्र युगों में उसका कुछ भाग लिखा वा कहा जा सके।' यहाँ सबसे रोचक बात यह है कि इसी अतिशयोक्ति का प्रयोग तालमद तथा कुरआन में पाया जाता है, जहाँ यह कहा गया है कि ईश्वर की महानता केवल तभी व्यक्त की जा सकती है जब आकाश को कागज बना दिया जाये इत्यादि। इससे भी अधिक आश्चर्य यह है कि बहुत से यूरोपियन शहरों के लोक गीतों में भी ठीक यही विचार प्राप्त होते हैं जो इस प्रकार हैं—

And if the sky were made all of paper

And every star were a scribe

And every one of them were

Writing with a thousand hands

They could not fully describe my love.¹

अर्थात् यदि पूरा आकाश कागज बन जाये, और प्रत्येक तारा लेखक हो, और उनमें से हर एक हजारों हाथों से लिखे, वे पूर्ण रूप से मेरे प्रेम को व्यक्त नहीं कर सकते। अतः यह स्पष्ट हो जाता है कि सुबन्धु ने तत्कालीन लोक-कथाओं तथा धार्मिक कथाओं से कुछ न कुछ ग्रहण किया है। 'कथासरित्सागर' का अध्ययन करने से यह ज्ञात होता है कि सुबन्धु ने राजा विक्रमादित्य की प्रशंसा संभवतः अठारहवें लम्बक में वर्णित विक्रमादित्य की कथा से प्रेरित होकर की है। यही नहीं नायक कन्दर्पकेतु तथा राजा शृंगारशेखर की पत्नी रानी अनंगवती का नाम भी 'कथासरित्सागर' में वर्णित पात्रों के आधार पर रखा गया है। कन्दर्प नाम के एक

¹ Some problems of Indian literature by M. Winternitz, Chapter-4, page-76.

पात्र का उल्लेख कथासरित्सागर में मिलता है जो रत्नपुर में निवास करता था—

अस्ति वेणानदीतीरे पुरं रत्नपुराख्यययाः ।

तत्र कन्दर्पनामाहामाद्यपुत्रो गृही द्विजः ।¹

संभवतः कन्दर्प से ही कवि ने नायक कन्दर्पकेतु के नाम की कल्पना की थी।

इसी प्रकार अनंगवती का नाम भी कथासरित्सागर में उपलब्ध होता है—

एषानंगवती भार्या कन्दर्पस्य द्विजन्मनः ।

पत्यौ क्वापि गते कालं कंचित्त्प्राप्तिवाञ्छया ।²

उल्लेखनीय है कि कथासरित्सागर को बृहत्कथा का विस्तृत संस्करण कहा जाता है। बृहत्कथा के अनुपलब्ध होने के कारण कथासरित्सागर से उदाहरणों को प्रस्तुत किया गया है। किन्तु प्रस्तुत विवेचन से यह अवश्य स्पष्ट हो जाता है कि सुबन्धु पर भास के साथ-साथ गुणाद्य का भी पर्याप्त प्रभाव था।

वासवदत्ता कथा में कन्दर्पकेतु तथा वासवदत्ता की प्रणय कथा आधिकारिक कथानक के अन्तर्गत आता है। इसके अतिरिक्त शुक-सारिका संवाद, युद्ध वर्णन, आकाशवाणी प्रसंग, शाप वर्णन प्रासंगिक कथायें हैं। ये सभी कथाएँ मुख्य कथा को पुष्ट करती हैं।

शुक-सारिका संवाद कवि की सारगर्भित योजना है। यदि नायक को यह ज्ञात ही नहीं होता कि जिस कन्या को उसने स्वप्न में देखा है उसका परिचय क्या है, तो नायक उस तक किस प्रकार पहुँचता। अतः कवि ने नायक को नायिका के विषय में

1 कथासरित्सागर, 18/14/204

2 कथासरित्सागर, 18/4/288

जानकारी देने के लिये शुक तथा सारिका संवाद की कल्पना की जिससे नायक तथा कथा दोनों अपने लक्ष्य की ओर अग्रसर हुए।

आकाशवाणी वर्णन कवि का एक अन्य उद्देश्यपूर्ण प्रसंग है। नायिका के विरह से व्याकुल नायक यदि समुद्र में डूबकर आत्मोत्सर्ग कर देता तो कथा अपने मूल उद्देश्य से हट जाती। इसलिये सुबन्धु ने नायक को जीवित रखने के लिये उसे आकाशवाणी के द्वारा यह आश्वासन दिलाया कि उसका तथा नायिका का पुनः मिलन होगा। युद्ध वर्णन तथा शाप वर्णन के प्रसंग अधिक सरस नहीं हैं। ये कथाएँ परस्पर एक दूसरे की पूरक हैं। वासवदत्ता को देखकर दोनों किरात सेनायें उसे प्राप्त करने के लिये युद्ध करती हैं जिसके कारण मुनि का आश्रम नष्ट हो जाता है। इस सबका कारण वासवदत्ता को मानकर मुनि उसे शाप दे देते हैं। किन्तु उन दोनों घटनाओं के कारण उत्पन्न हुए वियोग से कंदर्पकेतु का वासवदत्ता के प्रति गाढ़ प्रेम प्रकट होता है।

सुबन्धु के पश्चात् भी कवियों ने बृहत्कथा को आधार बनाकर अपनी कृतियों की रचना की। इनमें से श्रीहर्ष का नाम उल्लेखनीय है।

रत्नावली तथा प्रियदर्शिका नाटिका के रचयिता श्रीहर्ष है। जिन्हें हर्षदेव तथा हर्षवर्धन के नाम से जाना जाता है। थाणीश्वर अर्थात् थानेश्वर के सम्राट हर्ष का समय 606 ई० से 647 ई० माना जाता है।

प्रियदर्शिका—

यह चार अंकों की नाटिका है। इसमें उदयन तथा प्रियदर्शिका की प्रेम-कथा वर्णित है। टीकाकार पण्डित रामचन्द्र मिश्र के अनुसार कालिदास रचित

मालविकाग्निमित्र के कथानक तथा प्रियदर्शिका नाटिका के कथानक में पर्याप्त साम्य है।¹ इस कथा का आधार बृहत्कथा है।

प्रथम अंक के अन्तर्गत एक दिन राजा दृढ़वर्मा के कंचुकी ने कौशाम्बी नरेश वत्सराज उदयन की सभा में आकर यह सूचना दी कि राजा दृढ़वर्मा को कलिंग के राजा ने बन्दी बना लिया है। राजा दृढ़वर्मा की इच्छानुसार कंचुकी उनकी पुत्री प्रियदर्शिका को उदयन की सेवा में प्रस्तुत करने के लिये ला रहा था। किन्तु मार्ग में विन्ध्यकेतु के घर पर प्रियदर्शिका को छोड़ कर जब वह अगस्त्यतीर्थ में स्नान करने के लिये गया तो किसी ने विन्ध्यकेतु का वध कर दिया तथा उस कन्या के विषय में भी कुछ ज्ञात नहीं हुआ। कुछ समय पश्चात् उदयन का सेनापति विजयसेन वत्सराज को बताता है कि उसने विन्ध्यकेतु का वध कर दिया तथा वहाँ प्राप्त हुई एक कन्या को वह कौशाम्बीनरेश की सेवा में उपस्थित करता है उदयन का कन्या का नाम आरण्यका रखकर उसकी शिक्षा-दीक्षा की व्यवस्था अन्तःपुर में ही कर देता है।

द्वितीय अंक में राजा उदयन तथा विदूषक प्रद्योत पुत्री रानी वासवदत्ता से मिलने धारागृहोद्यान जाते हैं। उसी क्षण रानी की चेटी इन्दीवारिका, आरण्यका को खोजती हुई कदलीगृह में पहुँचती है तथा उसके राजा के प्रति प्रेम को जान जाती है। विदूषक आरण्यका को खोजते हुए उसी कदलीगृह में पहुँचता है। वहाँ मनोरमा तथा आरण्यका को ज्ञात होता है कि राजा भी उसके प्रति अनुरक्त है। रानी वासवदत्ता अपने जीवन वृत्तान्त से भिन्न दृश्यों का अभिनय देखकर कुपित हो जाती

¹ प्रियदर्शिका, समालोचना, पृ० 9

है राजा उसको मनाता है किन्तु वह प्रसन्न नहीं होती। वासवदत्ता, आरण्यका को बन्दी बना लेती है।

तृतीय अंक में महारानी वासवदत्ता कौमुदी महोत्सव के अवसर पर राजा उदयन के वृत्तान्त को जो नाटक रूप में निबद्ध किया गया था, उसके अभिनय का आदेश देती है। इसीलिये मनोरमा, आरण्यका को खोजती हुई कदलीगृह में पहुँचती है तथा उसके राजा के प्रति प्रेम को जान जाती है। विदूषक आरण्यका को खोजते हुए उसी कदलीगृह में पहुँचता है। वहाँ मनोरमा तथा आरण्यका को ज्ञात होता है कि राजा भी उसके प्रति अनुरक्त है। रानी वासवदत्ता अपने जीवन वृत्तान्त से भिन्न दृश्यों का अभिनय देखकर कुपित हो जाती है। राजा उसे मनाता है किन्तु वह प्रसन्न नहीं होती। वासवदत्ता, आरण्यका को बन्दी बना लेती है।

चतुर्थ अंक के अन्तर्गत रानी अंगारवती के पत्र को पढ़कर रानी वासवदत्ता को ज्ञात होता है कि दृढवर्मा को कलिंगराज ने बन्दी बना लिया है। अतः वह उद्विग्न हो जाती है। उदयन उसे प्रसन्न करने का प्रयत्न करता है। उदयन रानी वासवदत्ता को आश्वासन देने हुए कहता है कि उसका सेनापति विजयसेन कलिंग पर आक्रमण कर चुका है तथा कुछ समय पश्चात् उसे अपने अधिकार में अवश्य ले लेगा। उसी समय सेनापति विजयसेन वहाँ आकर सूचित करता है कि कलिंगराज का वध करके दृढवर्मा को राज्यासीन कर दिया गया है। इस अवसर पर विदूषक चतुरता से आरण्यका को मुक्त करवा लेता है। आरण्यका मदिरा के व्याज से विष पीकर मरणासन्न हो जाती है। तब वत्सराज वासवदत्ता के कहने पर नागलोक से सीखी हुई विद्या से उसे ठीक कर देता है। दृढवर्मा का कंचुकी आरण्यका की पहचान

प्रियदर्शिका के रूप में करा देता है। सब ज्ञात हो जाने पर वासवदत्ता स्वयं प्रियदर्शिका का हाथ राजा के हाथ में सौंप देती है। इस प्रकार नाटिका का सुखद अन्त हो जाता है।

रत्नावली—

श्रीहर्ष द्वारा रचित 'रत्नावली' नाटिका का कथानक प्रियदर्शिका नाटिका के समान ही है। इसमें भी वत्सराज उदयन के द्वितीय विवाह प्रसंग का वर्णन किया गया है। इस कथा का आधार भी बृहत्कथा ही है। नायक तथा ज्येष्ठा नायिका के नाम भी समान ही हैं किन्तु मुग्धा नायिका का नाम रत्नावली रखा गया है।

प्रथम अंक से पहले विषकम्भक में यौगन्धरायण के द्वारा यह ज्ञात हो जाता है कि भाग्य के अनुकूल होने के कारण उदयन को चक्रवर्ती पद की प्राप्ति कराने में सिंहलेश्वर की कन्या रत्नावली यान भंग हो जाने में डूबने से बच गयी है। किसी प्रकार उसे पहचान कर व्यापारी रत्नावली को यौगन्धरायण के समीप ले जाता है। मंत्री यौगन्धरायण उसे रानी वासवदत्ता को सौंप देता है। कौशाम्बी में वसन्तोत्सव अत्यन्त उत्साहपूर्वक मनाया जा रहा है। सागरिका अर्थात् रत्नावली भी छिपकर कामदेव की पूजा करती है किन्तु वैतालिक की स्तुति से उसे यह ज्ञात होता है कि जिसे वह कामदेव समझ रही थी वह और कोई नहीं स्वयं वत्सराज उदयन है जिसके लिये उसके पिता ने उसे दिया था तो वह अपने जीवन को धन्य मानती है।

द्वितीय अंक में राजा के प्रति अनुरक्त सागरिका अपनी विरह व्यथा को दूर करने के लिये वत्सराज के साथ-साथ अपना चित्र भी बना देती है। सखी सुसंगता द्वारा आग्रहपूर्वक पूछे जाने पर वह उसे सम्पूर्ण वृत्तान्त बता देती है जिसे समीपस्थ

पिंजरे में बंद सारिका सुन लेती है। सारिका सम्पूर्ण वृत्तान्त राजा और विदूषक के समक्ष दुहरा देती है। राजा तथा विदूषक कदलीगृह पहुँचते हैं। उसी समय सागरिका अपनी सखी के साथ चित्रपट लेने के लिये वहाँ पहुँच जाती है। सुसंगता चतुरता से राजा तथा सागरिका का मिलन करा देती है। रानी वासवदत्ता भी मकरन्द उद्यान में आती है तथा विदूषक की गलती से वह राजा तथा सागरिका का चित्र देख लेती है। वह राजा पर कुपित हो जाती है।

तृतीय अंक के अन्तर्गत कदलीगृह में सागरिका को देखकर राजा उस पर अनुरक्त हो जाता है। उसकी व्यथा को देखकर विदूषक, सुसंगता के साथ सागरिका को वासवदत्ता के वेष में माधवीलतामण्डप में राजा से मिलवाने की योजना बनाता है। किन्तु वासवदत्ता की चेटी कांचनमाला उसे इस योजना की जानकारी दे देती है। वह अपनी चेटी के साथ संकेत स्थान पर पहुँच जाती है। राजा के सागरिका के प्रति प्रेम प्रकट किये जाने पर वासवदत्ता स्वयं को उसके समक्ष प्रकट कर देती है। राजा उसके कुपित होने पर अनुनय विनय करता है। किन्तु रानी वासवदत्ता प्रसन्न नहीं होती। सागरिका अपनी योजना के उद्घाटन से दुःखी होकर आत्महत्या का प्रयास करती है किन्तु राजा उसे बचा लेता है तथा पुनः प्रेम प्रदर्शन करता है।

राजा की अवहेलना करने से दुःखी वासवदत्ता पुनः वहाँ आ जाती है तथा राजा को प्रेमालाप करते हुए देखकर क्रोधित हो जाती है वह सागरिका को बन्दी बना लेती है।

चतुर्थ अंक में सागरिका कारागार में रहते हुए निराश होकर अपनी रत्नमाला ब्राह्मण को दान देने के लिये सुसंगता को दे देती है। सुसंगता उस रत्नमाला को

विदूषक को ही दान कर देती है। राजा को यह समाचार मिलता है कि उसके सेनापति रुमण्वान् ने कोसल देश को जीत लिया है। उसी समय अन्तःपुर में भयानक आग लग जाती है। वासवदत्ता के अनुरोध पर राजा सागरिका को बचा कर ले आता है। वसुभूति सागरिका को रत्नावली के रूप में पहचान लेता है। मंत्री यौगन्धरायण भी वहाँ पहुँचकर अपनी योजना को सबके समक्ष प्रकट कर देता है। रानी वासवदत्ता, रत्नावली को आभूषणों से अलंकृत कर उसे राजा को सौंप देती है।

गुणादय द्वारा रचित बृहत्कथा को आधार बनाकर कवियों ने रचनायें की हैं। भास द्वारा रचित स्वप्नवासवदत्तम् तथा श्रीहर्ष द्वारा रचित प्रियदर्शिका तथा रत्नावली इस श्रेणी की उत्कृष्ट कृतियाँ हैं। सुबन्धु गुणादय तथा भास से प्रभावित हैं। किन्तु उन्होंने मात्र पात्रों का नाम ही ग्रहण किया है। कथानक उनके मस्तिष्क की उपज है। उदयन तथा वासवदत्ता के पारम्परिक आख्यान से उसका कोई सम्बन्ध नहीं है।

निष्कर्षतः 'वासवदत्ता' सुबन्धु की मौलिक एवं उत्कृष्ट रचना है।

तृतीय अध्याय

गद्य काव्य के प्रतिमानों के
विनिश्चय सुबन्धु की अधमर्णता
तथा उत्तमर्णता

तृतीय अध्याय

गद्यकाव्य के प्रतिमानों के विनिश्चय सुबन्धु की

अधमर्णता तथा उत्तमर्णता

काव्य दो प्रकार का होता है—प्रथम दृश्य काव्य तथा द्वितीय श्रव्य काव्य। शैली के आधार पर श्रव्य काव्य के तीन भेद माने गये हैं—पद्यकाव्य गद्यकाव्य तथा मिश्र काव्य। अग्नि पुराण में गद्य का लक्षण इस प्रकार दिया गया है—

अपदः पदसन्तानो गद्यं तदपि गद्यते।¹

अर्थात् पद अर्थात् चरण रहित पद समूह गद्य कहलाता है। दण्डी ने भी अपनी कृति काव्यादर्श में इसी मत को स्वीकार किया है।² बलदेव उपाध्याय ने संस्कृत गद्य की विशेषता बताते हुए कहा है कि संस्कृत गद्य की पहली विशिष्टता—लाघव, एवं लघुता है। जो विचार अन्य किसी भाषा में पूरे लम्बे वाक्य में प्रकट किये जा सकते हैं, वे संस्कृत गद्य के एक ही पद में अभिव्यक्त किये जा सकते हैं, इसका कारण समास की सत्ता है। समास संस्कृत भाषा की शक्ति है। समास में अधिक से अधिक अर्थ को कम से कम शब्दों में अभिव्यक्त करने की योग्यता है। ओज गुण के कारण संस्कृत गद्य में विचित्र प्रकार की भावग्राहिता तथा गाढ़-बन्धता का संचार होता है जिससे गद्य का सौन्दर्य पूर्णरूपेण विकसित हो जाता है। ओज का प्रधान लक्षण है समास की बहुलता— समास भूयस्तव और यही ओज गद्य का प्राण है। 'ओजः समासभूयस्तवमेतद् गद्यस्य जीवितम्' यह उक्ति अवश्य ही आलंकारिक दण्डी की है,

1 अग्नि पुराण, 337/9,

2 अपादः पदसन्तानो गद्यम् —दण्डी कृत काव्यादर्श, 1/23

जिनका आविर्भाव गद्य-साहित्य के स्वर्ण युग में हुआ था, परन्तु संस्कृत गद्य की यह विशिष्टता बड़े प्राचीन काल से चली आ रही है।

शास्त्रीय ग्रन्थों में गद्य का ही महत्त्वपूर्ण स्थान है। विचार विनिमय का तथा शास्त्रीय सिद्धान्तों के वर्णन का उचित माध्यम गद्य ही है। इन ग्रन्थों में शास्त्रार्थ के समय तो बोलचाल की शैली के प्रयोग का उल्लेख मिलता है किन्तु युक्तियों तथा तर्कों के प्रदर्शन में प्रौढ़ गद्य का विवरण उपलब्ध होता है। दार्शनिकों ने अपने विचारों को सुचारुरूप से अभिव्यक्त करने के लिए 'विचार-मापक' नवीन पारिभाषिक शब्दों की उद्भावना की है। गद्य तो विचारों को प्रकट करने का मुख्य माध्यम है, उसे बिना युक्तियुक्त तथा प्रौढ़ बनाये दार्शनिक विचारों को यथार्थ रूप में प्रकट नहीं किया जा सकता। इसी कारण दार्शनिकों ने अपनी शैली पर दार्शनिक गद्य की सृष्टि की है। तथ्य तो यह है कि कोमल भावों को प्रकट करने की जितनी शक्ति संस्कृत गद्य में है, उतनी ही या उससे अधिक दर्शनशास्त्र के दुरुह तथ्यों को अभिव्यक्त करने की भी क्षमता उसमें विद्यमान है। लैटिन भाषा का गद्य प्रौढ़, सुन्दर तथा ओजस्वी कहा गया है। किन्तु संस्कृत भाषा के गद्य में ये गुण उससे कहीं अधिक मात्रा में विद्यमान हैं। दर्शन के क्लिष्ट, गूढ़ तथा सूक्ष्म तत्त्वों का प्रतिपादन संस्कृत भाषा के ही द्वारा हो सकता है, यह विद्वानों की माननीय सम्मति है। अतः देववाणी का गद्य प्राचीनता तथा प्रौढ़ता, उपादेयता तथा भावाभिव्यक्ति की दृष्टि से हमारे साहित्य का एक गौरवपूर्ण अंग है—इस कथन में तनिक भी सन्देह नहीं है।¹ उन्होंने गद्य को कवियों के कवित्व की कसौटी माना है—कवि की प्रतिभा का प्रागल्भ्य

1 बलदेव उपाध्याय कृत संस्कृत साहित्य का इतिहास, पृ०— 378, 379.

पद्य की विधा में विशेष दृष्टिगोचर होता है अथवा गद्य की विधा में? इस प्रश्न के उत्तर में आलोचकों की मान्य सम्मति है कि गद्य ही कवियों की कसौटी है, जिस पर कसे जाने पर उनकी कला का चमक उठती है। पद्यबन्ध नाना प्रकार के नियन्त्रणों से जकड़ा हुआ रहता है। मात्रा-छन्द हो अथवा वर्णवृत्त, दोनों में मात्राओं तथा वर्णों की संख्या नियत रहती है ; लघु-गुरु अक्षरों के विन्यास की पूरी व्यवस्था रहती है, ; यति के नियम का भी पद्य में बन्धन रहता है, 'पादान्तस्थं विकल्पेन' अर्थात् पाद का अन्तिम लघु विकल्प से गुरु होता है सामान्यतः मान्य होने पर भी स्थल विशेष पर ही अपना वैभव दिखलाता है। इन व्यवस्थाओं तथा नियमों के जाल में नियन्त्रित कवि की वाणी का प्रसार सर्वतः अवरुद्ध होता है। कवि अपने भावों को अभिव्यक्त करने में स्वतन्त्र नहीं होता। फलतः वह पद्य के माध्यम में स्वयं को नियन्त्रित, परवश तथा परतन्त्र अनुभव करता है। इससे ठीक विपरीत है गद्य का माध्यम। इसमें कवि को अपने चमत्कारों को दिखलाने के लिए पूरी स्वतन्त्र रहती है। वह जैसा भी रूप अपनी कला को देना चाहता है, उसकी कला उसी रूप में ढलने के लिए बाध्य होती है। पद्य का कवि अपनी काव्यगत त्रुटियों के लिए अपने स्वीकृत माध्यम को अपराधी ठहरा कर स्वयं को निरपराधी मान बैठता है, परन्तु गद्य के कवि के लिए ऐसी स्वतंत्रता नहीं है। गद्य के उन्मुक्त माध्यम के ऊपर दोषारोपण करने के लिए उसे अवसर प्राप्त नहीं होता। गद्य-रचना में किसी प्रकार का नियन्त्रण न होने से यदि गद्यकवि की रचना में कोई साहित्यिक त्रुटि परिलक्षित होती है, तो उसका भागी वह स्वयं होता है, माध्यम पर दोषारोपण करके वह सुखपूर्वक शयन नहीं कर सकता। इसीलिए दोनों प्रकार के माध्यमों को स्वीकार कर काव्य लिखने वाले कवियों की

गद्यरचना ही श्रेयस्करी मानी जाती है।¹

वाचस्पति गैरोला के अनुसार पद्य भाषा की अपेक्षा गद्य भाषा को संस्कृत में अधिक सम्मान दिया गया मालूम होता है। गद्य के लिए संस्कृत में एक उक्ति है 'गद्यं कविनां निकषं वदन्ति' अर्थात् गद्य भाषा कवियों के कवित्व बल की कसौटी है।²

चन्द्रशेखर पाण्डेय एवं शान्तिकुमार नानूराम व्यास का भी कथन है कि पद्य की अपेक्षा गद्य की श्रेष्ठता दिखलाने के लिये ही यह उक्ति प्रचलित है — 'गद्य ही कवियों की कसौटी है।'³ भोज के अनुसार माध्यम की विशिष्टता से विषय की विशिष्टता परिलक्षित होती है। कोई अर्थ पद्य के द्वारा, कोई गद्य के द्वारा, कोई मिश्र के द्वारा तथा कोई त्रिविध माध्यम के द्वारा अभिव्यक्त किया जा सकता है—

कश्चिद् गद्येन पद्येन कश्चिन्मिश्रेण शक्यते।

कवितुं कश्चन द्वाभ्यां काव्येऽर्थः कश्चन त्रिभिः॥⁴

वाचस्पति गैरोला का गद्य की विलम्बता के विषय में कथन है—आरम्भ में यद्यपि गद्य—रचना को काव्य कौशल का कारण मानकर अथवा गद्य—कृतियों को काव्य न कहा जाकर उसको कवियों की कसौटी माना गया, इसका परिणाम यह हुआ कि आत्मश्लाघा एवं काव्य—कौशल के लिये कवियों ने ऐसे गद्य का निर्माण किया जो समासबहुल, अतिदुरुह और पाण्डित्य—प्रदर्शन से भरपूर था। एक छोटी—सी कथा

1 बलदेव उपाध्याय कृत संस्कृत साहित्य का इतिहास, पृ०—377, 378.

2 वाचस्पति गैरोला कृत संस्कृत साहित्य का इतिहास, पृ०—635

3 क. पाण्डेय एवं व्यास कृत संस्कृत साहित्य की रूपरेखा, पृ०—187

ख. विजयपाल सिंह कृत संस्कृत साहित्य का इतिहास, पृ०—167

4 भोजराज कृत सरस्वतीकण्ठाभरण, 2/19

को, विभिन्न प्रसंगों में उलझा कर, इतना जटिल बना दिया गया कि मुख्य कथा को समझना ही दुष्कर हो जाता है।¹

गद्य का विकास—

वैदिक काल के आरम्भ से मध्यकाल तक गद्य के विकास का अध्ययन करने पर गद्य के दो रूप उपलब्ध होते हैं—प्रथम वैदिक काल का सीधा-सादा बोलचाल का गद्य तथा द्वितीय लौकिक संस्कृत का प्रौढ़, समास बहुल गाढबन्धवाला गद्य। दोनों प्रकार के गद्यों में अपना विशिष्ट सौन्दर्य तथा मोहकता है।²

वैदिक गद्य में संहिताओं, ब्राह्मणों, आरण्यकों, उपनिषदों तथा सूत्र ग्रन्थों का समावेश होता है। ऐतिहासिक गवेषणाओं से प्रतीत होता है कि भारतीय साहित्य के प्राचीनतम अंश वैदिक साहित्य में गाथाओं का अस्तित्व अत्यन्त प्रभावोत्पादक रीति से स्वीकार किया गया है। ब्राह्मणग्रन्थों के अर्थवाद के एक आवश्यक अंग के रूप में वैदिक साहित्य के क्षेत्र में आख्यान, इतिहास एवं पुराणों का स्पष्ट उल्लेख मिलता है, जो धार्मिक संस्कारों अथवा यज्ञ के अवसरों पर सुनाए जाते थे। इन आख्यानों में गद्य के साथ जो पद्य भाग मिश्रित है, उसे 'गाथा' कहा गया है। ऋग्वेद में 'नाराशंसी' गाथाओं का उल्लेख दानस्तुति के रूप में हुआ। इनके सम्बन्ध में वहाँ यह कहा गया है कि ये मिथ्या हैं। इन गाथानाराशंसियों के रचयिता, वक्ता एवं प्रवक्ता तत्कालीन सूत थे। सूतों के अतिरिक्त एक दूसरी श्रेणी कुशीलवों की भी थी,

1 वाचस्पति गैरोला कृत संस्कृत साहित्य का इतिहास, पृ०-636

2 बलदेव उपाध्याय कृत संस्कृत साहित्य का इतिहास, पृ०-379.

जो समाज में इन गीतों को नाच-गाकर सुनाया करते थे।¹

सत्यनारायण पाण्डेय तथा श्रीकान्त पाण्डेय ने जर्मन विद्वान् ओल्डेनवर्ग के मत को प्रस्तुत करते हुए कहा है कि ऋग्वेद के संवादात्मक सूत्रों में बीच-बीच में गद्य की कड़ियाँ रही होंगी जो समय के प्रवाह में लुप्त हो गयीं।² शुक्ल यजुर्वेद तथा कृष्ण यजुर्वेद दोनों में गद्य का प्रयोग किया गया है। इन गद्य स्तुतियों को 'यजुष' कहा जाता है—

तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत्। पश्येम शरदः शतम् जीवेम शरदः शतम्,
शृणुयाम शरदः शतम्, प्रब्रूयाम शरदः शतम्, अदीनाः स्याम शरदः शतम्³

अथर्ववेद में भी गद्यांश उपलब्ध होते हैं।⁴ वैदिक गद्य में सीधे-सादे, छोटे छोटे शब्दों का प्रयोग किया गया है। 'ह', 'वै', 'उ' आदि अव्ययों को वाक्यालंकार के रूप में प्रयुक्त किया गया है जिससे वाक्य रोचक हो जाता है। वैदिक गद्य में समास का अधिक प्रयोग नहीं किया गया है किन्तु उदाहरणों की प्रचुरता है। उपमा तथा रूपक अलंकार का प्रयोग होने से वैदिक गद्य विद्वानों को अपनी ओर आकर्षित करता रहा है।⁵

समस्त ब्राह्मण ग्रन्थ गद्य में रचित हैं। सत्यनारायण पाण्डेय तथा श्रीकांत पाण्डेय के मतानुसार इन ग्रन्थों में उपलब्ध गद्य याज्ञिक क्रियाकलापों का सशक्त

1 वाचस्पति गैरोला कृत संस्कृत साहित्य का इतिहास, पृ०-635

2 सत्यनारायण पाण्डेय तथा श्रीकान्त पाण्डेय कृत संस्कृत साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृ०-267

3 शुक्ल यजुर्वेद, 36/24.

4 ब्रातृ आसीदीयमान एव स प्रजापतिं समैरयत्। स प्रजापतिः सुवर्णमात्मन्पश्यत् तत् प्राजनयत्। तदेकमभवत्, तल्ललामभवत् तन्महदभवत्, तज्जेष्ठमभवत्, तद् ब्रह्मभवत् तत् तपोऽभवत् तत् सत्यमभवत् तेन प्राजायत। सोऽवर्धत स महानभवत्स महादेवोऽभवत्
—अथर्ववेद, 15/1/1-4

5 बलदेव उपाध्याय कृत साहित्य का इतिहास, पृ०-380

माध्यम रहा है। वैदिक साहित्य में 'ब्रह्मन्' शब्द 'यज्ञ' के लिये भी प्रयुक्त हुआ है। अतः ब्रह्मन् अर्थात् यज्ञ से सम्बन्ध रखने के कारण ये ग्रन्थ ब्राह्मण कहलाते हैं। कर्मकाण्ड सम्बन्धी विवेचना करना ही इनका प्रमुख उद्देश्य है। यज्ञों के अनुष्ठान की विधियों के साथ-साथ इनमें वैदिक मन्त्रों की पौराणिक एवं धार्मिक व्याख्या भी दी गयी है। उनका विचार है कि ब्राह्मण ग्रन्थों में प्रयुक्त वाक्य-विन्यास तथा शब्दावली आर्ष है। इन ग्रन्थों के गद्य को भी स्वर सहित पढ़ने का विधान है। यद्यपि ब्राह्मण ग्रन्थों में प्रयुक्त गद्य की शैली सरल है, तथापि वह अपरिष्कृत है।¹

ऐतरेय ब्राह्मण², कौषीतकि ब्राह्मण³, तैत्तिरीय ब्राह्मण⁴, ताण्डय ब्राह्मण⁵, गोपथ ब्राह्मण⁶ तथा शतपथ ब्राह्मण⁷ में उल्लेखनीय रूप से गद्य का प्रयोग किया गया है।

ब्राह्मण ग्रन्थों के समान ही आरण्यक ग्रन्थ भी गद्य में रचित हैं। इन ग्रन्थों में प्रयुक्त गद्य की भाषा लौकिक संस्कृत के निकट है। आरण्यक ग्रन्थों में कर्मकाण्ड की अपेक्षा आध्यात्मिक सिद्धान्तों के विवेचन को अधिक महत्त्व दिया गया है।

आरण्यक ग्रन्थों के पश्चात् उपनिषदों में भी गद्य के उदाहरण उपलब्ध होते हैं। वेदों के ज्ञानकाण्ड के अन्तर्गत आते हैं। इन्हें वेदान्त भी कहा जाता है।

1 सत्यनारायण पाण्डेय तथा श्रीकान्त पाण्डेय कृत संस्कृत साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृ०-268

2 तदाहु सूर्यो नातिशस्यो बृहती नातिशस्या यत्सूर्यमतिशसेद्ब्रह्मवर्चसमतिपद्येत यद् बृहतीमतिशसेत् प्राणानतिपद्येतेति।

—ऐतरेय ब्राह्मण, 17/3/2

3 अत्र पशवो वै हविष्पक्ति इत्यादिक ब्राह्मण द्रष्टव्यमित्याह तस्या इति। होतु प्रस्थितसोम यागे यज्या विधत्ते—भारद्वाज्या प्रददौ।

—कौषीतकि ब्राह्मण, 15/1/8

4 इन्द्रो वृत्रमहन सेऽप । अभ्याग्नियत तासा यन्मेध्य यज्ञिय सदेवमासीत् । तदपोदक्रामत् । ते दर्मा अभवन् यद्दभैरपि उत्पुनाति । या एव मेध्या यज्ञिया सदेवा आप । ताभिरेवैना उत्पुनाति । द्वाभ्यामुत्पुनाति ।

—तैत्तिरीय ब्राह्मण, 2/3/2/5/1

5 पवित्रन्ते वितत ब्रह्मणस्पते प्रभुर्गात्राणि पर्येषि विश्वतो तप्ततनूर्न तदामो अश्नुते शृतास इद्वहन्त सन्तदाशत ।।

—ताण्डय ब्राह्मण, 1/2/8

6 स आवतश्च परावतश्चान्यैक्षत । तास्तत्रैवाभ्यश्राम्यद् अभ्यपतत् समपतत् । ताम्य श्रान्ताभ्यस्तप्ताभ्य संतप्ताभ्य शमित्यूर्ध्वमक्षरमुदक्रामत् । स य इच्छेत् सर्वाभिरेताभिरावद्भिश्च परावद्भिश्च कुर्वीयेति, एतयैव तद महाव्याहृत्या कुर्वीत ।

—गोपथ ब्राह्मण, पूर्व भाग, 1/11

7 सोऽन्वाह समास्त्वान्मऽऽरुतवो वर्धयन्त्विति प्रजापति विभ्रस्त यत्राग्नि समदधातमब्रवीद्या मत्समिता सामिधेन्यस्ताभिर्मा समिन्त्वेति ।।

—शतपथ ब्राह्मण 6/2/1/25

सत्यनारायण पाण्डेय तथा श्रीकांत पाण्डेय ने उपनिषदों को चार वर्गों में विभाजित किया है।¹ सबसे प्राचीन वर्ग में ऐतरेय² कौषीतकि,³ बृहदारण्यक,⁴ तैत्तिरीय⁵ तथा छान्दोग्य⁶ आते हैं। ये उपनिषद् अधिकांशतः गद्य में हैं। द्वितीय वर्ग के अन्तर्गत ईश, केन, कठ, श्वेताश्वतर, मुण्डक तथा महानारायण उपनिषद् आते हैं। ये उपनिषद् पद्यमय हैं। किन्तु केनोपनिषद्⁷ को प्रथम तथा द्वितीय वर्ग के मध्य की कड़ी माना जा सकता है ; क्योंकि इस में कुछ अंश गद्य में हैं तो कुछ पद्य में। तृतीय वर्ग के उपनिषदों की भाषा पुनः गद्य युक्त है। इस वर्ग में प्रश्नोपनिषद्,⁸ तथा माण्डूक्य उपनिषद्⁹ आते हैं। इस वर्ग के उपनिषदों की भाषा प्रथम वर्ग की अपेक्षा अधिक परिष्कृत है। चतुर्थ वर्ग में अथर्ववेदीय उपनिषद् आते हैं जिनमें से कुछ पद्य में हैं तथा कुछ गद्य में। उपनिषदों में प्रयुक्त गद्य की भाषा वैदिक गद्य की भाँति नीरस तथा लम्बे समासों से युक्त नहीं है, अपितु उसमें प्रवाह, स्वाभाविकता तथा क्रियापदों का प्राचुर्य है। संस्कृत साहित्य के आलोचनात्मक

1 सत्यनारायण पाण्डेय तथा श्रीकांत पाण्डेय कृत संस्कृत साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृ०-268, 269.

2 स इमाल्लोकानसृजत्। अम्भो मरीचीर्मरमापोऽम्भः परेण दिवं, द्यौः प्रतिष्ठा, अन्तरिक्षं मरीचयः। पृथिवी मरो, या अधस्तात् ता आपः॥ —ऐतरेय उपनिषद्, 1/1/2

3 स होवाच बालकिर्य एवैष शब्दे पुरुषस्तमेवाहमुपास इति तं होवाचाजातशत्रुर्मा भैतस्मिन् संवादयिष्ठा मृत्युरिति वा अहमेतमुपास इति स यो हैतमेवमुपास्ते न पुरा कालात्प्रैतीति। —कौषीतकि उपनिषद्, 4/14.

4 अहर्वा अश्वं पुरस्तान्महिमाऽन्वजायत तस्य पूर्वं समुद्रे योनी रात्रिरेनं पश्चान्महिमाऽन्वजायत तस्यापरे समुद्रे योनिरेतौ वा अश्वं महिमानावभितः संबभूवतुः। हयो भूत्वा देवान वहद्वाजी गन्धर्वानर्वाऽसुरानश्वो मनुष्यान्समुद्र एवास्य बन्धुः समुद्रो योनिः। —बृहदारण्यकोपनिषद्, 1/1/2

5 स नौ यशः। सह नौ ब्रह्मवर्चसम्। अथातः संहिताया उपनिषदं व्याख्यास्यामः। पंचस्वधिकरणेषु अधिलोऽमधिज्यौतिषमधिविद्यमप्रजमध्यात्मम्। ता महासंहिता इत्याचक्षते॥ —तैत्तिरीय उपनिषद्, 1/3/2

6 यत्र नान्यत्पश्यति नान्यच्छृणोति नान्यद्विजानाति स भूमाऽथ यत्रान्यपश्यत्यच्छृणोत्यन्यद्विजानाति तदल्पं यो वै भूमा तदमृतमथ यदल्पं तन्मर्त्यं स भगवः कस्मिन्नप्रतिष्ठित इति स्वे महिम्नि यदि वा न महिम्नीति॥

—छान्दोग्य उपनिषद्, 7/24/1.

7 तस्मै तृणं निदधावेतद्देहि, तदुपप्रेयाय —सर्वजनेन तन्न शशाक दग्धुं, स तत एव निववृते नैतदशकं विज्ञातुं यदेतद्यक्षमिति। —केनोपनिषद्, 3/6

8 तान्ह स ऋषिरुवाच भूय एव तपसा ब्रह्मचर्येण श्रद्धया संवत्सरं संवत्स्यथ कामं प्रश्नान्पृच्छत यदि विज्ञास्यामः सर्वं ह वो वक्ष्याम इति। —प्रश्नोपनिषद्, 1/2

9 सोऽयमात्माध्यक्षरमोकारोऽधिमात्रं पादा मात्रा मात्राश्च पादा अकार उकारो मकार इति॥

—माण्डूक्योपनिषद्, 1/8

इतिहास नामक ग्रन्थ में सूत्र साहित्य में हुए गद्य के विकास के विषय में कहा गया है कि उत्तर वैदिक काल में गद्यकारों ने एक अनोखी सूत्र शैली का अविष्कार किया, जो एक साथ लघुतम संक्षेप एवं विपुल विस्तार का आश्चर्यजनक उदाहरण है। श्रौत तथा गृह्यसूत्रों से इस गद्य-शैली का प्रयोग आरम्भ हो गया और शीघ्र ही यह लोकप्रिय बन गई। इस शैली में वेदांगों की रचना की गई। संक्षिप्तीकरण के लिए सूत्रों में दीर्घकाय समास रूपी एक नया आश्रय ढूँढ़ लिया गया, जो बाद में लौकिक संस्कृत गद्य का एक सामान्य भूषण बन गया। पाणिनि (500 ई० पू०) ने भी अपनी 'अष्टाध्यायी' को सूत्रों में पिरोया। सूत्रों की प्रक्रिया का उत्कृष्ट रूप यही है और इसी को दर्शनकारों ने तथा पाणिनी के बहुत बाद आने वाले वैयाकरणों ने भी अपनाया है। सूत्रों की संक्षिप्तता के कारण उन्हें टीका की सहायता के बिना समझना असम्भवप्रायः हो गया है।¹

पौराणिक गद्य, वैदिक तथा लौकिक गद्य के मध्य की कड़ी है। श्रीमद्भागवत पुराण² तथा विष्णु पुराण³ के अध्ययन से पौराणिक गद्य की आलंकारिक एवं प्रासादिक शैली की पुष्टि हो जाती है। यह गद्य, साहित्यिक गद्य के सदृश मनोहारी है।

शिलालेखों में भी गद्य का प्रयोग किया गया है। 150 ई० में लिखे गये रुद्रदामन के गिरनार शिलालेख⁴ में दीर्घसमासों तथा अनुप्रास एवं अन्य अलंकारों से

1 सत्यनारायण पाण्डेय तथा श्रीकान्त पाण्डेय कृत संस्कृत साहित्य का अलोचनात्मक इतिहास, पृ०-269

2 क्वचिच्चाशेषदोष निषेधनं पुरीषविशेषं तद्वर्णगुणनिर्मितमतिः सुवर्णमुपादित्सत्यग्निकामकातर इवोल्मुकपिशाचम् ॥

—श्रीमद्भागवत पुराण, 5/14/7

3 यथैव व्योम्नि वह्निपिण्डोपमं त्वामहमपश्यं तथैवाद्याग्रतो गतमप्यत्र भगवता किञ्चिन् प्रसादीकृतं विशेषमुपलक्ष्या—मीत्युक्ते भगवता सूर्येण निजकण्ठादुन्मुच्य स्यमन्तकं नाम महामणिवरमवतार्य एकान्ते न्यस्तम् ॥

—विष्णु पुराण, 4/13/4

4 प्रमाणमानोन्मान—स्वरगतिवर्ण—सारसत्त्वादिभिः परमलक्षणव्यञ्जनैरुपेतैकांतमूर्तिना स्वयमधिगत—महाक्षत्रपनाम्ना नरेन्द्रकन्यास्वयंवशनेकमाल्यप्राप्तदाम्ना महाक्षत्रपेण रुद्रदाम्ना सेतुं सुदर्शनतरं कारितम्।

—बलदेव उपाध्याय द्वारा उद्धृत संस्कृत साहित्य का इतिहास, पृ०-380

युक्त गद्य का प्रयोग किया गया है।

इस प्रकार रचना का प्रौढ़ रूप 350 ई० के लगभग हरिषेण द्वारा रचित समुद्रगुप्त की प्रशस्ति में मिलता है जो प्रयाग के एक स्तम्भ पर उत्कीर्ण है। इसमें चन्द्रगुप्त प्रथम की राज्य-विश्रान्ति और समुद्रगुप्त के राज्यारोहण का सुन्दर कलात्मक एवं चमत्कृत वर्णन है। इसमें एक सुदीर्घ समास-बहुल और श्रुतिहारी गद्य-काव्य की मनोज्ञ छटा दर्शनीय है। इस प्रशस्ति में श्लेष का भी एक प्रयोग मिलता है, जो आगे चलकर गद्य काव्यकारों का एक अत्यन्त प्रिय उपकरण बन गया। हरिषेण का यह गद्य-गुच्छ स्पष्ट रूप से आडम्बर-बहुल रचना-शैली का अग्रदूत है। जिसका परिष्कृत परिपाक बाणभट्ट की कृतियों में उपलब्ध होता है।¹

समग्र दर्शन ग्रन्थ गद्य में ही रचित हैं। इन ग्रन्थों में शब्द सौन्दर्य की अपेक्षा अर्थ की अभिव्यक्ति पर अधिक ध्यान दिया गया है। बलदेव उपाध्याय ने पतंजलि, शबरस्वामी, शंकराचार्य तथा जयन्तभट्ट इन चार दार्शनिकों की विशिष्ट शैली पर विस्तारपूर्वक चर्चा की है। उनके अनुसार पतंजलि ने महाभाष्य की रचना विलक्षण शैली में की है। उन्होंने बोलचाल की भाषा तथा कथोपकथन शैली का आश्रय लेकर छोटे-छोटे, सारगर्भित वाक्यों का प्रयोग किया है। पतंजलि ने कृत्रिमता को त्यागकर सरलता एवं मनोज्ञता का अद्भुत समन्वय करके व्याकरण जैसे विलिप्त शास्त्र को ही हृदयग्राही बना दिया है—

ये पुनः कार्याभावा निवृत्तौ तावत् तेषां यत्नः क्रियते। तद् यथा-घटेन कार्यं करिष्यन् कुम्भकारकुलं गत्वाह-कुरु घटं कार्यमनेन करिष्यामीति। न तद्वच्छब्दान्

1 सत्यनारायण पाण्डेय तथा श्रीकान्तपाण्डेय कृत सस्कृत साहित्य का अलोचनात्मक इतिहास, पृ०-271.

प्रयुयुक्षमाणो वैयाकरणकुलं गत्वाह—कुरु शब्दान् प्रयोक्ष्य इति। तावत्येवार्थमुपादाय शब्दान् प्रयुज्यते।¹

वर्तमान समय में मीमांसा वाङ्मय का सबसे प्राचीन उपलब्ध ग्रन्थ शबरस्वामी का भाष्य ही है। उन्होंने द्वादशाध्यायी मीमांसा पर भाष्य की रचना की है जिसमें 24,000 श्लोक हैं। उनकी शैली सरल है —

अनुपपन्नमिति न क्वः संप्रत्ययः? यन्न प्रमाणेनाऽवगतम्। विज्ञानातावदन्यं नोपलभामहे। यन्नोपलभामहे तच्छशविषाणवदेव नास्तीत्यवगच्छामः। न च तस्मिन्नसति विज्ञानसद्भावोऽनुपपन्न प्रत्यक्षावगतत्वादेव। क्षणिकत्वं चाऽस्य प्रत्यक्षपूर्वकमेव।²

बलदेव उपाध्याय के विचारानुसार शंकराचार्य का गद्य सारगर्भित प्रौढ़ तथा प्रांजल है। उनके द्वारा उपनिषदों, ब्रह्मसूत्र तथा श्रीमद्भगवद्गीता पर लिखा गया भाष्य उनके विशिष्ट ज्ञान का परिचायक है। बलदेव उपाध्याय ने शंकराचार्य द्वारा रचित एक सारगर्भित वाक्य को उद्धृत किया है—

नहि पदभ्यां पालयितुं पारयमाणो जानुभ्यां रहितुमर्हति।।³

आचार्य शंकर ने वेदान्त भाष्य में अनेक स्थलों पर शाबरभाष्य का अनुकरण किया है। किन्तु उनकी शैली प्राचीन शैली से भिन्न है। उनके शब्दों में क्लिष्टता का समावेश है, किन्तु विषय प्रतिपादन में नवीनता परिलक्षित होती है—

तत्पुनर्ब्रह्म प्रसिद्धमप्रसिद्धं वा स्यात्। यदि प्रसिद्धं न जिज्ञासितव्यम्। अथाप्रसिद्धं नैव शक्यं जिज्ञासितुमिति।... .. एवं बहवो विप्रतिपन्ना युक्तिवाक्यतदाभाससमाश्रयाः

1 बलदेव उपाध्याय कृत संस्कृत साहित्य का इतिहास, पृ०-381.

2 शबरस्वामी कृत मीमांसा-शाबर-भाष्यम्, 1/1/5

3 बलदेव उपाध्याय कृत संस्कृत साहित्य का इतिहास, पृ०-381.

सन्तः ।.....¹

जयन्तभट्ट एक प्रमुख दार्शनिक हैं जिनके द्वारा रचित 'न्यायमंजरी' न्याय शास्त्र का उल्लेखनीय ग्रंथ है। इनका गद्य व्यंग्यपूर्ण है। अपनी रोचक शैली के द्वारा भट्ट ने न्याय जैसे क्लिष्ट विषय को भी मनोहर बना दिया है—

ननु किमर्थोऽयमादिवाक्यारम्भः? कोऽयं प्रश्नः? शास्त्रं चेदारम्भणीयं क्रमवृत्तित्वाद्वाचः प्रथममवश्यं किमपि वाक्यं प्रयोक्तव्यम्। न ह्यादिवाक्यमकृत्वा द्वितीयादिवाक्यप्रणयनमुपपद्यत इति ग्रन्थकरणमेवाघटमानं स्यात्।।²

कुछ शास्त्रीय ग्रन्थों में गद्य तथा पद्य दोनों का प्रयोग मिलता है। इन ग्रन्थों में मुख्य विषय का वर्णन गद्य में किया गया है तथा उसके समर्थन के लिये उदाहरण रूप में अथवा उसी के संक्षिप्त रूप को पद्य में प्रस्तुत कर दिया गया है। इस शैली का स्पष्ट उदाहरण कौटिल्य कृत 'अर्थशास्त्र' है। इसके अतिरिक्त अलंकार शास्त्र तथा चिकित्साशास्त्र के कुछ ग्रन्थों में इसी शैली का अनुकरण किया गया है। किन्तु न्याय अर्थात् व्यवहार की व्याख्या करने के लिये तथा साहित्य की रचना में कवियों ने गद्य को ही अंगीकार किया। इन ग्रन्थों में पारिभाषिक शब्दों तथा दीर्घ समासों का प्रचुरता से प्रयोग किया गया है।

गद्यकाव्य के प्रारम्भिक ग्रन्थ लुप्तप्राय हैं। गद्य की उत्कृष्ट एवं परिष्कृत शैली के दर्शन सुबन्धु, दण्डी तथा बाण की कृतियों में होते हैं। किन्तु इन कवियों से पूर्व भी गद्य में साहित्य सृजन किया जाता रहा है। वाचस्पति गैरोला ने इस परम्परा का

1 शंकराचार्य कृत वेदान्त भाष्य, 1/1/1

2 जयन्तभट्ट कृत न्यायमंजरी, 1/1/1

उल्लेख किया है। कथाकार बाण ने एक सिद्धहस्त गद्यकार भट्टारक हरिश्चन्द्र का नाम उद्धृत किया है। इसी प्रकार जल्हण द्वारा उद्धृत वररुचि कृत 'चारुमती', रोमिल्ल-सौमिल्ल कृत शूद्रककथा', तिलकमंजरीकार धनपाल द्वारा उद्धृत श्रीपालित कृत 'तरंगवतीकथा' और आंध्रभृत्य सातवाहन राजाओं के समय लिखी गई 'शातकर्णी-हरण' एवं 'नमोवंतीकथा' आदि ग्रन्थ भी प्राचीन गद्य की परम्परा का समर्थन करते हैं।¹

विद्वानों ने गद्य के स्वरूप तथा बन्धगत भेदों का पृथक्-पृथक् उल्लेख किया है। वामन ने इस तथ्य को स्पष्ट करते हुए कहा है कि प्रबन्ध काव्यों में दस प्रकार के रूपक उत्तम होते हैं। इन दशरूपकों के आधार पर अन्य भेदों की कल्पना की गयी है।² स्वरूपगत भेदों में भी विद्वानों में मतभेद है। अग्नि पुराण³ तथा काव्यालंकारसूत्रवृत्ति⁴ में तीन भेदों-वृत्तगन्धि, उत्कलिकाप्राय तथा चूर्णक की चर्चा की गयी है। भोज ने उत्कलिकाप्राय तथा पद्यगन्धी दो प्रकारों का ही उल्लेख किया है।⁵ किन्तु साहित्यदर्पणकार⁶ ने चार भेदों का वर्णन किया है। जिनका विवरण इस प्रकार है-
चूर्णक-

जो गद्य अल्पसमास से युक्त हो तथा जिसमें ललित पदों का प्रयोग हो उसे

1 वाचस्पति गैरोला कृत संस्कृत साहित्य का इतिहास, पृ०- 636

2 वामन कृत काव्यालंकारसूत्रवृत्ति, 1/3/32

3 चूर्णकोत्कलिकावृत्तसंधिभेदात् त्रिरूपकम्।। -अग्नि पुराण, 337/9

4 गद्यं वृत्तगन्धि चूर्णमुत्कलिकाप्रायं च। -काव्यालंकारसूत्रवृत्ति, 1/3/22

5 गद्यमुत्कलिकाप्रायं पद्यगन्धीति च द्विधा।

-भोज कृत सरस्वतीकण्ठाभरण, 2/25

6 वृत्तगन्धोज्झितं गद्यं मुक्तकं वृत्तगन्धि च।।

भवेदुत्कलिकाप्रायं चूर्णकं च चतुर्विधम्।

-विश्वनाथ कृत साहित्यदर्पण, 7/330, 331

चूर्णक गद्य कहते हैं।¹

उत्कलिकाप्राय—

दीर्घ समास युक्त पदावली वाला गद्य उत्कलिकाप्राय नामक गद्य भेद कहलाता है।²

वृत्तगन्धि—

इस गद्य में शब्दावली न तो अधिक कर्कश होती है न ही अति कोमल। इसमें प्रयुक्त समास प्रौढ स्तर का नहीं होता तथा वृत्त अर्थात् छन्द की छाया अत्यन्त क्षीण होती है।³ तात्पर्य यह है कि वृत्तगन्धि गद्य में कोई गद्यांश किसी छन्द विशेष का अंश प्रतीत होता है तथा उसमें तत्सदृश ही मात्रा लय अथवा प्रवाह की झलक मिलती है।

मुक्तक—

यह गद्य का सरल रूप है। यह समास रहित होता है। इसका कोई भी भाग किसी छन्द विशेष का अंग प्रतीत नहीं होता है।⁴

विश्वनाथ ने 'मुक्तक' की गद्य के स्वरूपगत भेदों के अन्तर्गत चर्चा की है। किन्तु वामन के मतानुसार गद्य तथा पद्य दोनों प्रकार की रचनाएँ पहले अनिबद्ध

- 1 क. अग्नि पुराण, 337/10
ख. अनाविद्धललितपदं चूर्णम् —काव्यालंकारसूत्रवृत्ति, 1/3/24
ग. साहित्यदर्पण, 7/332
- 2 क. दीर्घसमासोत्कलिका भवेत्। —अग्निपुराण, 337/10
ख. विपरीतमुत्कलिकाप्रायम् —काव्यालंकारसूत्रवृत्ति, 1/3/25
- 3 क. भवेन्मध्यमसन्दर्भ नातिकृत्तिसतविग्रहम्।
वृत्तच्छायाहरं वृत्तसंधिनैतत्किलोत्कटम्॥
—अग्निपुराण, 337/11
ख. पद्यभागवद् वृत्तगन्धि —काव्यालंकारसूत्रवृत्ति, 1/3/23
ग. वृत्तभागयुतम् परम्॥ —साहित्यदर्पण, 7/331.
- 4 विश्वनाथ कृत साहित्यदर्पण, 7/330

अर्थात् परस्पर फुटकर 'मुक्तक' रूप में होती हैं। जब कवि को रचना का अभ्यास हो जाता है तब वह एक सुसम्बद्ध गद्य अथवा पद्यात्मक 'प्रबन्ध' काव्य, नाटक, आख्यायिका आदि की रचना करता है।¹ प्रबन्ध की दृष्टि से गद्य के दो भेद किये गये हैं— आख्यायिका तथा कथा। जिनका वर्णन इस प्रकार है—

आख्यायिका—

जिस गद्यकाव्य में ग्रन्थकर्ता के वंश की प्रशस्ति विस्तारपूर्वक दी हुई हो। कन्याहरण, संग्राम, विप्रलम्भजन्य विपत्तियाँ हों, जहाँ रीति, वृत्ति, प्रवृत्ति अपने चमत्कृत रूप में प्रस्तुत की जाय, जिसके कथा भागों का नाम उच्छ्वास हो और जिसमें चूर्णक नामक गद्य का प्रयोग हो तथा जहाँ कथा नायक के मुख से कही गयी हो अथवा किसी अन्य पात्र के मुख से उसे 'आख्यायिका' नामक गद्य काव्य कहा जाता है—

कर्तृवंशप्रशंसा स्याद्यत्र गद्येन विस्तरात्।

कन्याहरण — संग्राम — विप्रलम्भविपत्तयः॥

भवन्ति यत्र दीप्ताश्च रीतिवृत्तिप्रवृत्तयः।

उच्छ्वासैश्च परिच्छेदो यत्र या चूर्णकोत्तरा॥

वक्त्रं वाऽपरवक्त्रं वा यत्र साऽख्यायिका स्मृता।

श्लोकैः स्ववंशं संक्षेपात्कविर्यत्र प्रशंसति॥²

काव्य के तीसरे भेद 'आख्यायिका' का लक्षण भामह ने इस प्रकार किया है—

प्राकृतानाकुलश्रव्यशब्दार्थपदवृत्तिना।

¹ काव्यालंकारसूत्रवृत्ति, 1/3/27

² अग्निपुराण, 337/13-15

गद्येन युक्तोदात्तार्था सोच्छ्वासाख्यायिका मता ।।

वृत्तमाख्यायते तस्यां नायकेन स्वचेष्टितम् ।

वक्त्रं च परवक्त्रं च काले भाव्यार्थशंसि च ।।¹

अर्थात् गद्य रूप में उच्छ्वासों में विभक्त करके लिखी गयी, विषय के अनुकूल, उपयुक्त, सुनने में अच्छे लगने वाले शब्द, अर्थ और समास आदि से युक्त उत्तम वर्ण्य वस्तु वाली रचना आख्यायिका कहलाती है। उसमें वक्ता और प्रतिवक्ता के वार्तालाप आदि के रूप में नायक अपने पूर्वानुष्ठित और समय पर होने वाली समृद्धि की सूचना से युक्त वृत्तान्त का वर्णन करता है।

वामन ने विस्तार के भ्रम से कथा आख्यायिका आदि का लक्षण नहीं दिया है।² रुद्रट ने आख्यायिका की विस्तारपूर्वक चर्चा की है—

पूर्ववदेव नमस्कृतदेवगुरुर्नोत्सहेत् स्थितेष्वेषु ।

काव्यं कर्तुमिति कवीञ्शंसेदाख्यायिकायां तु ।।

तदनु नृपे वा भक्तिं परगुणसंकीर्तनेऽथवा व्यसनम् ।

अन्यद्वा तत्करणे कारणमविलष्टमभिदध्यात् ।।

अथ तेन कथैव यथा रचनीयाख्यायिकापि गद्येन ।

निजवंशं स्वं चास्यामभिदध्यान् त्वगद्येन ।।

कुर्यादत्रोच्छ्वासान्सर्गवदेषां मुखेष्वनाद्यानाम् ।

द्वे द्वे चार्ये शिलष्टे सामान्यार्थे तदर्थाय ।।

1 भामह कृत काव्यालंकार, 1/25, 26

2 काव्यालंकारसूत्रवृत्ति, पृ०— 62

संशयशंसावसरे भवतो भूतस्य वा परोक्षस्य ।

अर्थस्य भाविनस्तु प्रत्यक्षस्यापि निश्चितये ॥

संशयितुः प्रत्यक्षं स्वावसरेणैव पाठयेत् कंचित् ।

अन्योक्तिसमासोक्तिश्लेषाणमेकमुभयं वा ॥

तत्र छन्दः कुर्यादार्यापरवक्त्रपुष्पिताग्राणाम् ।

अन्यतमं वस्तुवशादाथवान्यन्मालिनीप्रायम् ॥¹

अर्थात् आख्यायिका में कवि गुरु और देवता को नमस्कार करे और ऐसा कर लेने पर वह कवियों की प्रशंसा कर लेने के पश्चात् काव्य रचना प्रारम्भ करे। इसके उपरान्त नृप में भक्ति और दूसरों के गुण वर्णन में प्रवृत्ति का तथा यदि चाहे तो ऐसा करने में कारण का भी उल्लेख सरल रूप से कर दे। तत्पश्चात् उस कवि द्वारा कथा के समान आख्यायिका की रचना भी गद्य में करनी चाहिये। इसमें उसे अपने वंश का तथा अपना वर्णन भी गद्य में ही करना चाहिये। इसमें सर्ग के समान उच्छ्वासों को करना चाहिये, अर्थात् सर्ग के स्थान पर उच्छ्वास नाम देना चाहिये और पहले उच्छ्वास को छोड़कर शेष उच्छ्वासों के प्रारम्भ में प्रस्तुत अर्थ की सूचना देने के लिये सामान्य अर्थ का निर्देश करने वाले श्लेष से युक्त दो-दो आर्या छन्द प्रस्तुत करने चाहिये। कवि किसी संशय-प्रसंग के वर्णन के अवसर पर वर्तमान, भूत, भविष्यत्, परोक्ष तथा प्रत्यक्ष अर्थ को निश्चित करने के लिये संशयशील व्यक्ति के संशय को प्रत्यक्ष रूप से दूर करने के लिये, प्रसंग के अनुकूल अन्योक्ति, समासोक्ति, श्लेष अलंकार से युक्त किसी एक अथवा दो पद्यों का पाठ कराये। कथावस्तु के

1 रुद्रट कृत काव्यालंकार, 16/24-30

आधार पर आर्या, अपरवक्त्र, पुष्पिताग्रा में से किसी एक छन्द का प्रयोग करना चाहिये, अथवा प्रायः मालिनी छन्द में रचना करनी चाहिये।

हेमचन्द्र ने अपने ग्रन्थ काव्यानुशासन में आख्यायिका का लक्षण इस प्रकार दिया है—

नायकाख्यातस्ववृत्ता भाव्यर्थशंसिवकादिः सोच्छवासा संस्कृता गद्ययुक्ताख्यायिका।¹

संघटना की व्याख्या करते हुए आनन्दवर्धन ने आख्यायिका की चर्चा की है। उनके अनुसार आख्यायिका में प्रचुरता से मध्यसमास तथा दीर्घसमास वाली संघटनायें ही होनी चाहिये, क्योंकि गद्य में छाया अर्थात् काव्य-सौन्दर्य विकटबन्ध के आश्रय से ही आता है। क्योंकि विकटबन्ध के कारण गद्य में काव्य सौन्दर्य अधिक प्रकृष्ट हो जाता है। रसौचित्य का महत्त्व देते हुए कवि का कथन है कि यदि आख्यायिका में विप्रलम्भ शृंगार अथवा करुण रस प्रतिपाद्य हो तो आख्यायिका में दीर्घसमास संघटना अधिक प्रिय नहीं लगेगी।²

विद्यानाथ ने गद्य भेदों का वर्णन करते हुए आख्यायिका के लक्षण को उद्धृत किया है।³

विश्वनाथ ने 'साहित्यदर्पण' के षष्ठ परिच्छेद में आख्यायिका का वर्णन किया है। उनके अनुसार आख्यायिका कथा के समान होती है। इसमें कवि के वंश का वर्णन होता है, और अन्य कवियों का वृत्तान्त तथा कहीं-कहीं पद्य भी रहता है। आख्यायिका में कथा भागों का नाम आश्वास होता है। आर्या, वक्त्र, अपरवक्त्र छन्दों

1 हेमचन्द्र कृत काव्यानुशासन, 8/7

2 आनन्दवर्धन कृत ध्वन्यालोक, तृतीय उद्योत, कारिका-8-9, वृत्ति, पृ०-91 तथा 93

3 वक्त्रं चापरवक्त्रं च सोच्छवासत्वं च भेदकम्।

वर्ण्यते यत्र काव्यज्ञैरसावाख्यायिका मता।। -विद्यानाथ कृत प्रतापरुद्रीयम्, 3/72

के द्वारा अन्योक्ति से आश्वास के आरम्भ में कथा की सूचना की जाती है।¹

कथा—

जिस गद्य काव्य में ग्रन्थकार संक्षेप से श्लोकों द्वारा अपने वंश की प्रशंसा करता है। जहाँ मुख्य कथा को लाने के लिये अवान्तर कथा की सृष्टि कथा की जाती है और जिसमें परिच्छेद नहीं होते अथवा कहीं कहीं ग्रन्थ के अन्त में समस्त वर्ण्य विषय प्रबन्ध में अनुस्यूत रहता है उसे कथा कहा गया है।²

अग्नि पुराण के अनुसार कथा में घटना समाप्त नहीं की जाती अपितु अधूरी छोड़ दी जाती है—

समाप्यते तयोर्नाऽऽद्या सा कथामनुधावति।³

कथा के अतिरिक्त खण्डकथा, परिकथा⁴ तथा कथानिका⁵ का उल्लेख भी अग्निपुराण में उपलब्ध होता है।

‘कथा’ का लक्षण करते हुए भामह का कथन है—

कवेरभिप्रायकृतैः कथानैः कैश्चिदकिंता।

कन्याहरणसंग्राम — विप्रलम्भोदयन्विता।।

न वक्त्रापरवक्त्राभ्यां युक्ता नोच्छ्वासवत्यपि।

1 आख्यायिका कथावत्स्यात्कवेर्वशानुकीर्तनम्।
अस्यामन्यकवीनां च वृत्तं पद्यं क्वचित्क्वचित्।।
कथांशानां व्यवच्छेद आश्वास इति बध्यते।
आर्यावक्त्रापवक्त्राणां छन्दसा येन केनचित्।।
अन्यापदेशेनामाश्वासमुखे भाव्यर्थसूचनम्।

—साहित्यदर्पण, 6/334-336

2 मुख्यस्यार्थावताराय भवेद्यत्र कथान्तरम्।
परिच्छेदो न यत्र स्यादभवेद्वा लम्बकैः क्वचित्।। —अग्निपुराण, 337/16

3 अग्निपुराण, 337/19

4 अग्निपुराण, 337/17, 18

5 अग्निपुराण, 337/19, 20

संस्कृतं संस्कृता चेष्टा कथापभ्रंशभाक्तथा ।।

अन्यैः स्वचरितं तस्यां नायकेन तु नोच्यते ।

स्वगुणाविष्कृतिं कुर्यादभिजातः कथं जनः ।।¹

अर्थात् वक्ता, प्रतिवक्ता तथा उच्छ्वास आदि विभागों से रहित कन्या के हरण, उसके कारण संग्राम, उसके विप्रलम्भ, पुनः प्राप्ति रूप उदय आदि के वर्णन से युक्त, कवि के स्वकल्पित कथानक के आधार पर संस्कृत, प्राकृत अथवा अपभ्रंश भाषा में लिखी गयी कथा ही 'कथा' नाम से कही जाती है। उसमें अन्य लोग अपने तथा नायक के चरित्रादि का वर्णन करते हैं। नायक अपने चरित्र का वर्णन नहीं करता है। क्योंकि कुलीन व्यक्ति अपने गुणों को स्वयं अपने मुख से वर्णन करें यह उचित प्रतीत नहीं होता है।

रुद्रट ने कथा को 'महाकथा' नाम से उद्धृत किया है। उनके विचारानुसार महाकथा उसे कहते हैं जिसके प्रारम्भ में कवि श्लोकों द्वारा इष्टदेव तथा गुरुओं को नमस्कार करके कर्तृरूप में अपना तथा अपने कुल का संक्षेप में वर्णन करे। तत्पश्चात् अनुप्रास सहित तथा लघ्वक्षर युक्त गद्य के द्वारा पहले के समान नगर वर्णन आदि करते हुए कथा के शरीर की रचना करे। प्रारम्भ में किसी अन्तर कथा को रखना चाहिये, जिसमें मुख्य कथा अच्छी प्रकार संकेतित की गयी हो। अन्तर कथा की रचना इस प्रकार की जाये कि प्रक्रान्त अर्थात् मुख्य कथा शीघ्र प्रस्तुत हो जाये। यह कथा कन्या प्राप्ति रूप अथवा राज्य प्राप्ति रूप फलवाली होनी चाहिये। इसमें शृंगार रस

1 काव्यालंकार, 1/27-29

के सभी रूपों का विन्यास सम्यक् रीति से करना चाहिये। संस्कृत में तो यह गद्य में लिखी जानी किन्तु संस्कृतेतर यथा प्राकृत भाषाओं में इसे पद्य अर्थात् गाथा छन्द में भी लिखा जा सकता है।

श्लोकैर्महाकथायामिष्टान् देवान् गुरुन् नमस्कृत्य ।
 संक्षेपेण निजं कुलमभिदध्यात् स्वं च कर्तृतया ॥
 सानुप्रासेन ततो भूयो लघ्वक्षरेण गद्येन ।
 रचयेत् कथाशरीरं पुरेव पुरवर्णकप्रभृतीन् ॥
 आदौ कथान्तरं वा तस्यां न्यस्येत् प्रपञ्चितं सम्यक् ।
 लघुतावत्संधानं प्रक्रान्तकथावताराय ॥
 कन्यालाभफलां वा सम्यग्विन्यस्तसकलशृंगाराम् ।
 इति संस्कृतेन कुर्यात्कथामगद्येन चान्येन ॥¹

हेमचन्द्र के मतानुसार—

धीरशान्तनायका गद्येन पद्येन वा सर्वभाषा कथा ।²

हेमचन्द्र ने कथा के चार भेदों—परिकथा, खण्डकथा, सकलकथा तथा उपकथा का भी उल्लेख किया है ।³

आनन्दवर्धन के विचारानुसार कथा में यद्यपि विकटबन्ध की प्रचुरता अपेक्षित होती है तथापि उसमें रसबन्ध में कहे हुए औचित्य का ही अनुसरण करना चाहिये ।⁴

1 काव्यालंकार, 16/20-23

2 काव्यानुशासन-8/8

3 काव्यानुशासन पृ०-464, 465.

4 ध्वन्यालोक, तृतीय उद्योत, कारिका-8 वृत्ति, पृ०- 91

गद्यकाव्य के प्रकारों का निरूपण करने के पश्चात् विश्वनाथ ने कथा की परिभाषा इस प्रकार दी है— कथा में सरस वस्तु गद्यों द्वारा ही बनायी जाती है। इसमें कहीं—कहीं आर्याछन्द और कहीं वक्त्र तथा अपवक्त्र छन्द होते हैं। प्रारम्भ में पद्यमय नमस्कार तथा खलादिकों का चरित निबद्ध होता है यथा कादम्बरी।¹

यहाँ यह तथ्य उल्लेखनीय है कि दण्डी ने आख्यायिका तथा कथा को पृथक्—पृथक् नामों से अभिहित एक ही गद्य जाति अर्थात् गद्य रूप माना है।² उनके मतानुसार आख्यायिका नायक द्वारा ही कही जाती है और कथा नायक द्वारा या अन्य किसी पात्र द्वारा भी कही जा सकती है। वस्तुतः इनमें यथार्थ का कथन करने वाले नायक द्वारा अपने गुणों का प्रासंगिक वर्णन दोष नहीं है। आख्यायिका में भी कहानी का नायक से भिन्न अन्य व्यक्तियों द्वारा आख्यान होने से इस संबंध में नियम भंग देखा जाता है। कहानी कहने वाला स्वयं नायक है अथवा उससे भिन्न कोई अन्य व्यक्ति है—यह भेद कैसा कारण है? अर्थात् भेद का यह कारण उपयुक्त नहीं है।³

वक्त्र और अपवक्त्र छन्दों का प्रयोग तथा उच्छ्वास युक्त होना यदि ये आख्यायिका के भेदक चिह्न हैं तो क्या प्रसंगवश कथाओं में भी आर्या आदि छन्दों

1 कथायां सरसं वस्तु गद्यैरेव विनिर्मितम्।
क्वचिदत्र भवेदार्या क्वचिद्वक्त्रापवक्त्रके।
आदौ पद्यैर्नमस्कारः खलादेवृद्धाकीर्तनम्॥

—साहित्यदर्पण, 6/332, 333

2 तत्कथाख्यायिकेत्येका जातिः संज्ञाद्वयाकिंता।
अत्रैवान्तर्भविष्यन्ति शेषाश्चख्यानजातयः॥ —काव्यादर्श, 1/28

3 नायकेनैव वाच्याऽन्या नायकेनेतरेण वा।
स्वगुणाविष्क्रिया दोषो नात्र भूतार्थशंसिनः॥
अपि त्वनियमो दृष्टस्तत्राप्यन्यैरुदीरणात्।
अन्यो वक्ता स्वयं वेति कीदृग्वा भेदकारणम्॥

—काव्यादर्श, 1/24, 25

के समान वक्त्र और अपवक्त्र छन्दों का प्रयोग नहीं हो जाता? इसके अतिरिक्त लम्भ आदि शब्दों द्वारा भी कथा का विभाजन देखा जाता है। अथवा यदि इसके लिए उच्छ्वास शब्द का भी व्यवहार किया जाय तो क्या अन्तर पड़ता है?'

इस सम्बन्ध धर्मेन्द्र कुमार गुप्त ने टिप्पणी करते हुए कहा है कि दण्डी के समक्ष ऐसे उदाहरण थे जहाँ परम्परा से आख्यायिका के रूप में प्रसिद्ध गद्यरचनाओं में कहानी नायकेतर व्यक्तियों द्वारा कही गयी थी। बाणभट्ट की आख्यायिका 'हर्षचरित' में हर्ष की कहानी स्वयं हर्ष द्वारा आख्यात न होकर बाणभट्ट द्वारा कही गयी है। दूसरी ओर गुणादय की अनुपलब्ध कथा 'बृहत्कथा' में नरवाहनदत्त अपनी कहानी स्वयं कहता है। दण्डी के अनुसार इस प्रकार न केवल कथा और आख्यायिका में अपितु अन्य गद्यरूपों में भी परस्पर कोई अन्तर नहीं है। उसका यह अभिमत तर्कसंगत होते हुए भी उत्तरवर्ती आचार्यों द्वारा मान्य नहीं हुआ। आचार्यों ने न केवल कथा और आख्यायिका के बीच अन्तर को बनाये रखा अपितु अन्य गद्यकाव्य के भेदों की भी चर्चा की।²

सुबन्धु कृत वासवदत्ता कथा है अथवा आख्यायिका इस विषय में विद्वानों में पर्याप्त मतभेद रहा है। प्रो० मानसिंह के अनुसार वासवदत्ता को बहुत सी पाण्डुलिपियों में आख्यायिका रूप में उद्धृत किया गया है।³ लुईस एच० ग्रे का

1 वक्त्रं चापरवक्त्रं च सोच्छ्वासत्वं च भेदकम्।
चिह्नमाख्यायिकायाश्चेत् प्रसंगेन कथास्वपि॥
आर्यादिवत्प्रवेशः किं न वक्त्रापरवक्त्रयोः।
भेदश्च दृष्टो लम्भादिरुच्छ्वासो वास्तु किं ततः॥

—काव्यादर्श, 1/26, 27

2 काव्यादर्श, प्रथम परिच्छेद, पृ०— 22—24.

3 Subandhu And Dandin : Their Works, Chapter-II, Page-51

विचार है कि इन पर अवश्य ही उन कृतियों का प्रभाव रहा होगा। जो नायिका वासवदत्ता के नाम पर रची गयीं।¹ महाभाष्य में वासवदत्ता नामक आख्यायिका का उल्लेख मिलता है।² बाण ने भी इसे आख्यायिका ही कहा है।³

किन्तु विभिन्न काव्यशास्त्रीय आचार्यों द्वारा किये गये लक्षणों का अध्ययन करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि वासवदत्ता एक कथा है न कि आख्यायिका। सर्वप्रथम तो वासवदत्ता में आख्यायिका के समान प्रारम्भिक श्लोकों में गुरु के प्रति नमस्कार नहीं है, अपितु विष्णु, शिव तथा सरस्वती के प्रति नमस्कार युक्त श्लोक हैं। आख्यायिका में, गद्य में अथवा पद्य में कवि के परिवार के विषय में कुछ न कुछ अवश्य ही रहता है। जबकि वासवदत्ता में सुबन्धु के जीवन वृत्त के विषय में कुछ ज्ञात नहीं होता। साथ ही कवि की यह रचना अनुप्रास युक्त है।

‘वासवदत्ता’ में शुक तथा सारिका की प्रासंगिक कथा है जो बाद में मुख्य कथा से सम्बद्ध हो जाती है। यही नहीं इस कृति में कुसुमपुर नगर का स्वाभाविक वर्णन उपलब्ध होता है। आख्यायिका के लक्षणों के अनुरूप कवि ने इसके कथानक को उच्छ्वास नामक भागों में विभाजित नहीं किया है अपितु यह वक्त्र तथा अपवक्त्र छन्दों के द्वारा विभाजित है। कवि ने नायक कन्दर्पकेतु के अतिरिक्त एक अन्य लम्बे प्रसंग वाली शुक तथा सारिका की कथा को रखा है अतः यह एक कथा है आख्यायिका नहीं।

1 Subandhu's Vasavadatta : A Sanskrit Romancee, Introduction, Page No- 14

2 पतंजलि कृत महाभाष्य, 4/2/87

3 बाणभट्ट कृत हर्षचरित, श्लोक-11

कथा कन्या रूपी फल प्राप्ति वाली अथवा राज्य प्राप्ति रूपी फल वाली होनी चाहिये। वासवदत्ता में भी नायक को नायिका की प्राप्ति होती है। इसकी कथा कवि के मस्तिष्क की उपज है। कथा किसी ऐतिहासिक घटना पर आधारित नहीं है। अमरसिंह का मानना है कि वासवदत्ता कथा है न कि आख्यायिका।¹ कवि ने आर्या, अपरवक्त्र, पुष्पिताग्रा तथा मालिनी छन्दों में से किसी छन्द में श्लोकों की रचना नहीं की है। इसके अतिरिक्त यह संदेहास्पद व्यक्ति के संशय को प्रत्यक्ष रूप से दूर करने के लिये अन्योक्ति, समासोक्ति अथवा श्लेष अलंकार से युक्त एक अथवा दो पद्यों से युक्त भी नहीं है। अतः यह स्पष्ट हो जाता है कि वासवदत्ता कथा है। प्रो० मानसिंह का विचार है कि वासवदत्ता किसी भी मूल्य पर आख्यायिका नहीं हो सकती। इसका हर्षचरित नामक आख्यायिका से कोई साम्य नहीं है अपितु कादम्बरी कथा से इसका अवश्य ही सादृश्य दिखायी देता है।

आधुनिक कवियों ने सुबन्धु विरचित वासवदत्ता तथा बाणभट्ट कृत कादम्बरी कथा को तत्त्वतः उपन्यास माना है। अतः सर्वप्रथम उपन्यास क्या है यह ज्ञात करना आवश्यक है। उपन्यास का शाब्दिक अर्थ निकट रखना, धरोहर, वक्तव्य, सुझाव, प्रस्ताव, भूमिका, प्रस्तावना, उल्लेख शिक्षा तथा विधि आदि है।² वस्तुतः साहित्य में उपन्यास से उस विधा को अभिहित किया गया है जो मानवीय जीवन की आदि से अन्त तक की कथा को सहज सुरुचिपूर्ण एवं सजीव रूप में वर्णित करती है। यह मानव चरित्र को यथातथ्य रूप में उद्घाटित करती है। उपन्यास में पात्रों के चरित्र—

1 अमरसिंह कृत नामलिङ्गानुशासनम्, 1/6/5, 6

2 संस्कृत हिन्दी कोश—वामन शिवराम आप्टे, पृ०—207.

चित्रण, संवाद, घटनाक्रमों एवं भावात्मक अभिव्यक्ति के माध्यम से कथावस्तु की सर्वांगीण उद्देश्यपूर्ण कलात्मक प्रस्तुति की जाती है।

बलदेव उपाध्याय के अनुसार 'उपन्यास' शब्द का नॉवेल के पर्याय के रूप में प्रयोग आधुनिक युग में ही किया गया है। इससे पूर्व संस्कृत साहित्य में उपन्यास का यह अर्थ ग्रहण नहीं किया जाता था। उपन्यास शब्द का प्रयोग नाट्यशास्त्र में नाट्यसंधियों के एक उपभेद के रूप में किया गया था जिसे 'उपन्यासः प्रसादनम्' तथा 'उपपत्तिकृतो ह्यर्थ उपन्यासः' द्वारा परिभाषित किया गया है। सामान्य भाषा में उपन्यास शब्द किसी भी पक्ष को प्रस्तुत करने के अर्थ में बीसवीं सदी में प्रचलित हुआ। जो नॉवेल पाश्चात्य कथाविधा के प्रभाव स्वरूप रचे गये, उनके वाचक शब्द विभिन्न भारतीय भाषाओं में पृथक्-पृथक् रूप से कहे गये। जहाँ गुजराती, भाषा में शब्दसाम्यत्व के आधार पर 'नवलकथा' नाम दिया गया ; वहाँ मराठी आदि भाषाओं में भारतीय परम्परा से जोड़कर 'कादम्बरी' ही कहा गया। मराठी भाषा में उपन्यास को 'कादम्बरी' नाम से अभिहित किये जाने की प्रथा से यह प्रमाणित होता है कि यह विधा भारत में अन्य किसी देश के साहित्य की देन नहीं है।¹ कलानाथ शास्त्री ने भी इस तथ्य को स्वीकार किया है।² शास्त्री के मत में आधुनिक उपन्यासों पर प्राचीन कथाओं का पर्याप्त प्रभाव है। उनके विचारानुसार उन्नीसवीं सदी के अन्तिम चरण में पुनर्जागरण काल में उपन्यासों का प्रारम्भ हुआ। ये उपन्यास कादम्बरी जैसी विशाल तथा प्राचीन कथा लिखने की संस्कृत रचनाकार की प्रवृत्ति तथा नवीन शैली के

1 बलदेव उपाध्याय कृत आधुनिक संस्कृत साहित्य का इतिहास, पृ०- 441.

2 कलानाथ शास्त्री कृत आधुनिक काल का संस्कृत गद्य साहित्य, पृ०-40, 41.

परस्पर आदान-प्रदान के फलस्वरूप रूपान्तरण मात्र थे। 'शिवराजविजय' नामक प्रथम उपन्यास से पूर्व भी कादम्बरी की परंपरा में लिखे उपन्यासों की शृंखला संस्कृत साहित्य में थी इसके अनेक उदाहरण उपलब्ध होते हैं। यथा— अठारहवीं सदी में लिखी गयी विश्वेश्वर कृत मन्दारमंजरी जो कादम्बरी से प्रभावित है।¹

बलदेव उपाध्याय का कथन है— कथा साहित्य की लोकप्रिय विधा उपन्यास को पाश्चात्य या भारतीयेतर साहित्य की देन मानने वाले नितान्त भ्रान्त हैं। यह बात अनेक विद्वानों ने स्पष्ट की है। जिस प्रकार कथा साहित्य के प्राचीनतम पंचतंत्र आदि भारत में खोजे गये हैं उसी प्रकार उपन्यास विधा का अस्तित्व भी लगभग एक हजार वर्षों से किसी न किसी रूप में भारत में उपलब्ध होता है। सुबन्धु की वासवदत्ता और बाणभट्ट की कादम्बरी तत्त्वतः उपन्यास नहीं हैं तो क्या है? हो सकता है उसमें आज के उपन्यास के तथाकथित तत्त्वों जैसे कथावस्तु, पात्र और चरित्र चित्रण, कथोपकथन देशकाल, वातावरण, उद्देश्य या सन्देश तथा शैली आदि में से कुछ तत्त्व उस रूप में विद्यमान न हों जिस रूप में हम उन्हें पाते हैं, किन्तु एक विधा की दृष्टि से जीवन की समग्रता का एक कथात्मक चित्रण जिस विशाल फलक पर इन उपन्यासों में हुआ है वही तो उपन्यास का तात्त्विक रूप में भेदक पहचान कराने वाला तत्त्व है। आज से शताब्दियों पूर्व संभवतः ही किसी अन्य भाषा के साहित्य में इतनी उत्कृष्ट शैली का उत्कृष्ट स्तर के उपन्यास उपलब्ध होते हों।²

1 कलानाथ शास्त्री कृत आधुनिक काल का संस्कृत गद्य साहित्य, पृ०-41

2 बलदेव उपाध्याय कृत आधुनिक संस्कृत साहित्य का इतिहास, पृ०- 440

यहीं नहीं ईसा पूर्व की वररुचि कृत चारुमती ; रामिल्ल, सौमिल्ल कृत तरंगवती एवं शूद्रककथा ; भोज कृत शृंगारमंजरी ; कुलशेखर कृत आश्चर्यमंजरी ; रुद्रक कृत त्रैलोक्यसुन्दरी ; अपराजित कृत मृगांकलेखा ; आनन्दधर कृत माधवानलकथा ; धनपाल कृत तिलकमंजरी ; सोऽढल कृत उदयसुन्दरी आदि को उपन्यास के निकट की कथा विधा ही कहा गया है।¹ कलानाथ शास्त्री तथा बलदेव उपाध्याय ने 'कादम्बरी' कथा को कालजयी रचना के रूप में प्रस्तुत किया है जिससे प्रभावित होकर प्रायः परवर्ती कवियों ने उसी शैली की रचनाएँ की हैं। संभवतः सुबन्धु विरचित 'वासवदत्ता' कथा विलुप्त होने के कारण सर्वग्राह्य नहीं हो सकी।

परिवर्तन प्रकृति का शाश्वत नियम है। प्रत्येक परिवर्तन के पीछे उसके पूर्व के कारणों का भी योगदान रहता है। आधुनिक संस्कृत साहित्य विविध परिवर्तनों से युक्त है। इन परिवर्तनों में प्राचीन साहित्य का भी योगदान रहा है।

यह तो स्पष्ट ही है कि प्राचीन मानदण्डों के अनुसार सुबन्धु कृत वासवदत्ता एक कथा है। यदि आधुनिक कवियों के मतानुसार इसे वर्तमान समय में उपन्यास कहा जाये तो कोई हानि नहीं है।

1 कलानाथ शास्त्री कृत आधुनिक काल का संस्कृत गद्य साहित्य, पृ०- 42.

चतुर्थ अध्याय

वासवदत्ता का कलापक्ष-अलंकार
योजना, शैली वैविध्य, इतिवृत्त और
चित्रणों में तालमेल ; भाषा मीमांसा,
चरित्र-चित्रण विधि

चतुर्थ अध्याय

वासवदत्ता का कलापक्ष—अलंकार योजना, शैली वैविध्य,

इतिवृत्त और चित्रणों में तालमेल, भाषा मीमांसा,

चरित्र—चित्रण विधि

प्रस्तुत अध्याय में वासवदत्ता के कलापक्ष के अन्तर्गत अलंकार, शैली, भाषा एवं चरित्र—चित्रण आदि का वर्णन किया गया है।

अलंकार योजना—

अलंकार का व्युत्पत्तिगत अर्थ है—जिसके द्वारा अलंकृत किया जाता है अथवा जो अलंकृत करता है, वह अलंकार है। इन दोनों व्युत्पत्तियों के निष्कर्ष स्वरूप यह कहा जा सकता है कि जिस तत्त्व से काव्य की शोभा होती है उसे अलंकार कहते हैं। काव्यशास्त्रीय आचार्यों में से भामह ने सर्वप्रथम अलंकार को काव्य का आवश्यक तत्त्व स्वीकार किया। उनका मानना है कि अनेक आचार्यों द्वारा प्रस्तुत विविध अलंकार काव्य में उसी प्रकार आवश्यक हैं जिस प्रकार सुन्दर मुख वाली नारी के लिये भी आभूषणों की आवश्यकता होती है—

रूपकादिरलंकारस्तथान्यैर्बहुधोदितः।

न कान्तमपि निर्भूषं विभाति वनितामुखम्।¹

दण्डी ने काव्य का लक्षण करते हुए कहा है कि जो धर्म काव्य की शोभा करते हैं वे अलंकार कहलाते हैं—

¹ भामह कृत काव्यालंकार, 1/13

यथोक्तं तेन तत्रैव काव्यशोभाकरान् धर्मानलंकारान् प्रचक्षते।¹

वामन के अनुसार गुण काव्यशोभा के जनक है² तथा अलंकार उस काव्यशोभा में वृद्धि करने वाले तत्त्व हैं।³

आनन्दवर्धन ने अलंकार को शब्द एवं अर्थ का आश्रित माना है। उनके विचारानुसार काव्यगत अलंकार लौकिक आभूषणों, कटक-कुण्डल आदि के सदृश शब्द तथा अर्थ रूप शरीर के शोभाजनक धर्म हैं—

अंगाश्रितास्त्वलंकाराः मन्तव्याः कटकादिवत्⁴

मम्मट के अलंकार की परिभाषा इस प्रकार दी है—

उपकुर्वन्ति तं सन्तं येऽङ्गद्वारेण जातुचित्।

हारादिवदलंकारास्तेऽनुप्रासोपमादयः।।⁵

अर्थात् जो शब्दार्थ रूप काव्य-शरीर के अस्थिर धर्म के रूप में काव्य की अतिशय शोभा में वृद्धि करते हुए रसादि का कभी उपकार करते हैं, उन्हें अलंकार कहा जाता है। विश्वनाथ को भी यही मत अभीष्ट है—

शब्दार्थयोरस्थिराः ये धर्माः शोभातिशायिनः।

रसादीनुपकुर्वन्तोऽलंकारास्तेऽङ्गदादिवत्।।⁶

1 दण्डी कृत काव्यादर्श, 2/1

2 काव्यशोभायाः कर्तारो धर्मा गुणाः —वामन कृत काव्यालंकारसूत्रवृत्ति, 3/1/1

3 तदतिशयहेतवस्त्वलंकाराः —काव्यालंकारसूत्रवृत्ति, 3/1/2

4 आनन्दवर्धन कृत ध्वन्यालोक, 2/6

5 मम्मट कृत काव्यप्रकाश, 8/67

6 विश्वनाथ कृत साहित्यदर्पण, 10/1

अनुप्रास—

स्वरों के असमान रहने पर भी व्यंजनों की समानता होने पर अनुप्रास अलंकार होता है।¹ वासवदत्ता कथा में अनुप्रास अलंकार का उदाहरण इस प्रकार है—

सरभसकेसरिससहस्रखरनखरधाराविदारितमत्तमातंगकुम्भस्थलविगलितस्थूलमुक्ता
फलशबलशिखरतया शिखरावलग्नं तारागणमिवोद्धहन—²

वृत्यनुप्रास—

मम्मट के अनुसार वृत्यनुप्रास की परिभाषा इस प्रकार है—“एकस्याप्यसकृत्परः”³
अर्थात् एक व्यंजन का अथवा अनेक का, अनेक बार सादृश्य वृत्यनुप्रास है। राजा
चिन्तामणि के वर्णन में कवि ने वृत्यनुप्रास का उदाहरण दिया है—

अभूदभूतपूर्वः सर्वोर्वीपतिचक्रचारुचूडामणिश्रेणीशाणकोणकषणनर्मलीकृतचरण—
नखमणिनृसिंह इव ।⁴

छेकानुप्रास—

अनेक व्यंजनों की एक बार समानता छेकानुप्रास है—

सोऽनेकस्य सकृत्पूर्वः⁵

1 क. सरूपवर्णविन्यासमनुप्रासं प्रचक्षते ।

कितंया चिन्तया कान्ते नितान्तते यथोदितम् ।। —भामहकृत काव्यालंकार, 2/5

ख. दण्डी कृत काव्यादर्श, 1/55

ग. शेषः सरूपोऽनुप्रासः —वामन कृत काव्यालंकारसूत्रवृत्ति, 4/1/7

घ. वाग्भट कृत वाग्भटालंकार, 4/17

ङ. रुद्रट कृत काव्यालंकार, 2/41, 42.

च. रुय्यक कृत अलंकाररसर्वस्व, सूत्र-4

छ. भोज कृत सरस्वतीकण्ठाभरण, 2/70

ज. मम्मट कृत काव्यप्रकाश, 9/79

झ. विश्वनाथ कृत साहित्यदर्पण, 10/3

2 शंकर देव शास्त्री द्वारा संपादित वासवदत्ता, पृ०-76, 77

3 काव्यप्रकाश, 9/79

4 शंकर देव शास्त्री द्वारा संपादित वासवदत्ता, पृ०-8

5 काव्यप्रकाश-मम्मट, 9/79

विषधरतोऽप्यतिविषमः खल इति न मृषा वदन्ति विद्वांसः ।

यदयं नकुलद्वेषी सकुलद्वेषी पुनः पिशुनः ॥¹

श्लेष—

अर्थ भेद के कारण भिन्न-भिन्न होकर भी जहाँ शब्द एक उच्चारण के विषय होते हुये श्लेष अर्थात् एकरूप प्रतीत होते हैं वहाँ श्लेष अलंकार होता है।²

सुबन्धु ने अपनी रचना में आदि से अन्त तक 'श्लेष' अलंकार का प्रयोग किया है। उन्होंने वासवदत्ता के प्रस्तावना श्लोक संख्या 13 में ही अपने मन्तव्य को पूर्ण रूप से स्पष्ट कर दिया है। कवि ने श्लेष के तीनों पक्षों सभंग श्लेष, अभंग, श्लेष तथा भंगाभंग श्लेष का प्रयोग 'वासवदत्ता' कथा में किया हैं। जहाँ पद-भंग की आवश्यकता होती है वहाँ सभंग श्लेष होता है। आचार्य मम्मट ने वर्णश्लेष, पद श्लेष, लिंग श्लेष, वचन श्लेष, भाषा श्लेष, प्रकृति श्लेष, प्रत्यय श्लेष, विभक्ति श्लेष इन आठ प्रकारों को सभंग श्लेष के अन्तर्गत माना है। राजा विक्रमादित्य की प्रशंसा करते हुये कवि द्वारा सभंग का प्रयोग सराहनीय है—

1 शंकरदेव शास्त्री द्वारा संपादित वासवदत्ता, श्लोक-6

2 क. उपमानेन यत्तत्त्वमुपमेयस्य साध्यते ।

ख. गुणकियाभ्यां नाम्ना च श्लेषं तदभिधीयते ॥ —भामह कृत काव्यालंकार, 3/14

ग. काव्यादर्श, 2/310

घ. काव्यालंकारसूत्रवृत्ति-4/3/7

ङ. वाग्भटालंकार, 4/127

च. काव्यालंकार, 4/1

छ. अलंकारसर्वस्व, सूत्र-34

ज. सरस्वतीकण्ठाभरण, 2/68

झ. काव्यप्रकाश, 9/84

ञ. साहित्यदर्पण, 10/11

ट. कुवलयानन्द, कारिका-64,65

ठ. रसगंगाधर, द्वितीय आनन, पृ0-482

सा रसवत्ता विहता नवका विलसन्ति चरति नो कंकः ।

सरसीव कीर्तिशेषं गतवति भुवि विक्रमादित्ये ॥¹

इस पद्य के दो अर्थ निकलते हैं प्रथम तो राजा विक्रमादित्य के पक्ष में तथा दूसरा सरोवर के पक्ष में। जिस प्रकार पक्षियों के संचरण से, सूर्य के समान कान्तिमान सरोवर में कीचड़ मात्र शेष रह जाने पर सारस पक्षी अन्तर्हित हो जाते हैं, बगुले भी नहीं विचरते और न ही कंक पक्षी घूमते हैं उसी प्रकार कवि मण्डल से सुशोभित राजा विक्रमादित्य की कीर्तिमात्र शेष रह जाने पर अर्थात् उनके स्वर्ग चले जाने पर संसार में सरसता अर्थात् गुणग्राहकता समाप्त हो गयी है राजाओं से अनुकम्पा प्राप्त कवि ही घूमते हैं अतः कौन किसको नहीं खाता अर्थात् पीड़ित करता है।

जहाँ पद का भंग नहीं किया जाता अर्थात् जहाँ पदों को तोड़ा नहीं जाता वहाँ अभंग श्लेष होता है। अभंग श्लेष का उदाहरण देते हुए कवि कहता है कि वासवदत्ता ने स्वप्न में एक युवक को देखा जो अंगद से सुशोभित बाली के समान अंगद अर्थात् केयूर नामक आभूषण से युक्त था। सुरीली आवाज वाली कोयल के समान गले में हार धारण किये हुये था। भगवान् राम को आकृष्ट करने में निपुण स्वर्णमय मृग मारीच की तरह अपने सौन्दर्य से स्त्रियों को आकर्षित करने में प्रवीण था। अमृततुल्य वचनों से इन्द्र को सन्तुष्ट करने वाले जयन्त के समान अपने वचनों से पण्डितों को आनन्दित करता था। भगवान् कृष्ण को देखकर कंस को हर्ष नहीं होता था किन्तु कन्दर्पकेतु को देखकर सभी प्रसन्न होते थे। ओलों से युक्त महामेघ के समान जिसके दोनों हाथ सुशोभित थे। जो समुद्र के समान उदार स्वभाव वाला था ।

1 पं० शंकर देव शास्त्री द्वारा संपादित वासवदत्ता, प्रस्तावना श्लोक, 10

बालिनमिवांगदोपशोभितम्, कुहूमुखमिव हारिकण्ठम्, कनकमृगमिव रामाकर्षणनिपुणम्, जयन्तमिव वचनामृतानन्दितवृद्धश्रवसम्, कृष्णमिव कंसहर्षम् न कुर्वन्तः, महामेघमिव विलसत्करम्, समुद्रमिव महासत्त्वम्।¹

जहाँ कुछ पदों में भंग किया जाता है तथा कुछ पदों में भंग नहीं किया जाता वहाँ भंगाभंग श्लेष होता है। इस श्लेष का उदाहरण राजा चिन्तामणि के वर्णन में मिलता है। सुबन्धु के अनुसार राजा चिन्तामणि यशोदा से युक्त नन्दगोप के समान यश और दया से युक्त था। जरा नामक पिशाची के द्वारा जोड़ी गई सन्धियों वाले जरासन्ध के समान दान सन्धि युद्ध करने वाला था। सर्वदा आकाशगामी शुक्राचार्य के समान दान, भोग करने वाला था। अपनी रानी सुमित्रा तथा सुमन्त्र नामक सारथि से युक्त दशरथ के समान उत्तम मित्रों तथा उत्तम मन्त्रणाओं से युक्त था। सुदक्षिणा से युक्त तथा गौ की रक्षा करने वाले राजा दिलीप के समान कुशल विद्वानों से युक्त तथा पृथ्वी की रक्षा करने वाला था। कुश लव के सम्बन्ध में अत्यधिक महिमा उत्पन्न करने वाले राम के समान, कुशल-क्षेम यौवन और सौन्दर्य की महिमा से युक्त था—

नन्दगोप इव यशोदताऽऽश्रितः, जरासन्ध इव घटितसन्धिविग्रहः, भार्गव इव सदानभोगः, दशरथ इव सुमित्रोपेतः सुमन्त्राधिष्ठितश्च, दिलीप इव सुदक्षिणानुरक्तो रक्षितगुश्च, राम इव जनितकुशलवयोरुपोच्छ्रायः।²

उपर्युक्त विवरण से यह स्पष्ट है कि सुबन्धु का श्लेष प्रेम वासवदत्ता में सर्वत्र

1 पं० शंकरदेव शास्त्री द्वारा संपादित वासवदत्ता, पृ०-162, 163.

2 पं० शंकरदेव शास्त्री द्वारा संपादित वासवदत्ता, पृ०-24.

दृष्टिगोचर होता है। वस्तुतः कवि ने श्लेष अलंकार का प्रयोग सर्वत्र पाण्डित्य प्रदर्शन के लिये किया है। श्लेष की अधिकता से वासवदत्ता में चमत्कार उत्पन्न हो गया है। कहीं-कहीं श्लेष का प्रयोग सरसता को उत्पन्न करता है तो कहीं-कहीं पाठक श्लेष की क्लिष्टता से कथा में बोझिलता का अनुभव करने लगता है।¹

यमक—

सार्थक, किन्तु भिन्न-भिन्न अर्थ वाले वर्ण समुदाय की पूर्वक्रम से ही आवृत्ति होने पर यमक अलंकार होता है।² यमक अलंकार का उदाहरण कन्दर्पकेतु के वासवदत्ता के भवन में प्रविष्ट होने के समय मिलता है—

क्षणमीक्षणमीलनादपि चटुलं चटुलम्पटं सखीजनमायासयसि। सुरते सुरते स्तनताऽनेषु यत्सौख्यं लब्धं तत्स्मरता स्मरतापनोदनं दयितेन दयितेन विमुक्तासि। किं मुह्यसि महतो महतो दयितः स्मरति स्मरतिप्रियं तव कौशलम्। नवनिशानखराणां नखराणां स्मरजन्यां स्मरजन्यां कुरुते कुरुतेन रुजम्। तव लोचनाभ्यां लोचनाभ्यां प्रीणिताखिलजनेक्षणदेशः क्षणदेशः किं न पीयते। प्रियसखि ! मदनमालिनी ! बिम्बाधर

1 सुबन्धु एवं श्लेष, शिल्पी, शोध पत्र, ऑल इण्डिया ओरिएन्टल कान्फ्रेंस, 41वाँ अधिवेशन, पुरी, 2002

2 क. अग्नि पुराण, 194/11,12

ख. शब्दाभ्यासस्तु यमकं पदादिषु विकल्पितम्। —नाट्यशास्त्र, 16/59

ग. काव्यालंकार, 2/17

घ. काव्यादर्श, 3/1

ङ. काव्यालंकारसूत्रवृत्ति, 4/1/1

च. वाग्भटालंकार, 4/22

छ. काव्यालंकार, 3/2

ज. अलंकारसर्वस्व, सूत्र-7

झ. सरस्वतीकण्ठाभरण, 2/58

ञ. काव्यप्रकाश, 9/83

ट. साहित्यदर्पण, 10/8

संगत्या संगत्यागेच्छया विरागं कुरु मधुमदारुणमालवी कपोलतलसमानो लसमानो
रक्तमण्डलतया लतया त्वया को विशेषः?¹

उपमा—

उपमान तथा उपमेय का भेद होने पर दोनों के गुण, क्रिया, धर्म की समानता
का वर्णन उपमा अलंकार है।² उपमा अलंकार का उदाहरण देते हुए कवि कहता है—

हस्त इव भूतिमलिनो यथा यथा लंघयति खलः सुजनम् ।

दर्पणमिव तं कुरुते तथा तथा निर्मलच्छायाम् ॥³

अर्थात् जिस प्रकार राख से सना हुआ हाथ जैसे-जैसे दर्पण पर घिसा जाता
है वैसे-वैसे उसके प्रतिबिम्ब को साफ करता है उसी प्रकार ऐश्वर्यमत्त दुर्जन
जैसे-जैसे सज्जन का अनादर करता है, वैसे-वैसे वह उसकी कान्ति को बढ़ाता है।

प्रस्तुत उदाहरण में राख से सने हुए हाथ की तुलना ऐश्वर्य मत्त दुर्जन से
तथा दर्पण की तुलना सज्जन से की गयी है। अतः यहाँ उपमा अलंकार है।

1 पं० शंकरदेव शास्त्री द्वारा संपादित वासवदत्ता, पृ०-246, 248

2 क. उपमा नाम सा यस्यामुपमानोपमेययोः।

सत्ता चान्तरसामान्ययोगित्वेऽपि विवक्षितम् ॥ -अग्निपुराण, 344/6

ख. नाट्यशास्त्र, 16/41

ग. काव्यालंकार, 2/30

घ. काव्यादर्श, 2/14

ङ. काव्यालंकारसूत्रवृत्ति, 4/2/1

च. वाग्भटालंकार, 4/50

छ. काव्यालंकार, 8/4

ज. अलंकारसर्वस्व, सूत्र-12

झ. सरस्वतीकण्ठाभरण, 4/5

ञ. काव्यप्रकाश, 10/87

ट. साहित्यदर्पण, 10/14

ठ. कुवलयानन्द, कारिका-6

ड. रसगंगाधर, द्वितीय आनन, पृ०-2.

3 पं० शंकरदेव शास्त्री द्वारा संपादित वासवदत्ता, प्रस्तावना श्लोक-9

उत्प्रेक्षा—

प्रकृत अर्थात् वर्णनीय वस्तु की सम अर्थात् उपमान के साथ सम्भावना करना है उत्प्रेक्षा अलंकार है।¹

भिन्नपदातिकरितुरगरुधिराद्रो जयलक्ष्मीपादालक्तकरागरज्जित इव—खंगो रराज।²

अर्थात् सागर के समान युद्ध के मैदान में मरी हुई पैदल सेना, हाथी और घोड़ों के रुधिर से आर्द्र होने से जयलक्ष्मी के चरण के महावर से रंगे हुए के समान कन्दर्पकेतु का लोहे का खंग सुशोभित हुआ। यहाँ तलवार की जयलक्ष्मी के चरणराग से सम्भावना होने के कारण उत्प्रेक्षा अलंकार है।

रूपक—

जो उपमान तथा उपमेय का अभेदारोप है वह रूपक अलंकार कहलाता है, अर्थात् जिन उपमान तथा उपमेय का भेद प्रकट है उनमें अत्यन्त साम्य के कारण अभेद का आरोप करना रूपक है³—

1 क अग्निपुराण, 344/24, 25

ख काव्यालंकार, 2/91

ग काव्यादर्श, 2/221

घ काव्यालंकारसूत्रवृत्ति, 4/3/9

ड वाग्भटालंकार, 4/89

च काव्यालंकार, 8/32

छ अध्यवसाये व्यापारप्राधान्ये उत्प्रेक्षा —अलंकारसर्वस्व, सूत्र-22

ज सरस्वतीकण्ठाभरण 4/50

झ सम्भावनमथोत्प्रेक्षा —काव्यप्रकाश, 10/92

ञ साहित्यदर्पण 10/40

ट कुवलयानन्द, कारिका-32,

ठ रसगंगाधर, द्वितीय आनन पृ०-278

2 आर०वी० कृष्णचमाचारियर द्वारा संपादित वासवदत्ता, पृ०-56

3 क अग्नि पुराण, 344/22

ख स्वविकल्पेन रचितं तुल्यावयवलक्षणम्।

ग किंचित्सादृश्यसम्पन्नं यद्रूपं रूपकं तु तत्।। नाट्यशास्त्र, 16/56

घ काव्यालंकार, 2/12

ड काव्यादर्श, 2/66

च काव्यालंकारसूत्रवृत्ति, 4/3/6

छ वाग्भटालंकार, 4/64

ज काव्यालंकार, 8/38

झ अलंकारसर्वस्व, सूत्र-16

ञ सरस्वतीकण्ठाभरण, 4/24, ट काव्यप्रकाश, 10/139

ठ साहित्यदर्पण, 10/28,

ड कुवलयानन्द, कारिका-17

ढ रसगंगाधर द्वितीय आनन, पृ०-166

स हिमानीगिरिस्थितः, वृषध्वजश्च । स सदागतिः, अवधूताखिलकान्तारः, पावकाग्रेसरः,
न भोगोत्सुकः, सुमनोहरश्च । स रत्नाकरः, अनहिभयः, अगाधः, समर्यादः नोद्रोकः, विस्मयः,
सदा हिमकराशयः, अमृतमयः, सत्पात्रः तस्याचलो न क्रोधः महानदीनः, समुद्रश्च । स
क्षणदानन्दकरः, कुमुदवनबन्धुः, सकलकलाकुलग्रहम्, नतारातिबलः, चन्द्रश्च । स
मित्रोदयहेतुः, कांचन शोभां बिभ्रत्, अचलाधिकलक्ष्मीः, सुमेरुश्च ।¹

यहाँ उपमेय चिन्तामणि का उपमानों शिव, वायु, समुद्र, चन्द्रमा तथा सुमेरु
पर्वत के साथ अभेद वर्णित है । अतः यहाँ रूपक अलंकार है ।

अपह्नुति—

जहाँ उपमेय को असत्य बताकर उपमान को सत्य रूप में स्थापित किया जाता
है वहाँ अपह्नुति अलंकार होता है ।² कवि के अनुसार मेघों के नीचे उड़ती हुई
बकपंक्तियाँ ऐसी प्रतीत हो रही हैं मानों अत्यन्त प्यास तथा स्पृहा के आवेग से समुद्र
जल पीने के समय मेघ ने जल के अन्तःस्थित शंखों का भी पान कर लिया था और
अब वमनकर उन्हीं को बलाका के बहाने से निकाल रहा है—

अतितृष्णावेगपीतजलनिधिजलशंखमानां बलाकाच्छलादुद्वमन्निवादृश्यत जलधर—
निकरः ।³

1 आर० वी० कृष्णमाचारियर द्वारा संपादित वासवदत्ता पृ० 31-36

2 क. अपह्नुतिरपह्नुत्य किंचिदन्यार्थसूचनम् ।

पर्यायोक्तं यदन्येन प्रकारेणाभिधीयते ।। अग्नि पुराण, 345/18

ख. काव्यालंकार, 3/21, ग. काव्यादर्श 2/304 घ. काव्यालंकारसूत्रवृत्ति, 4/3/5.

ड. वाग्भटालंकार, 4/85 च. काव्यालंकार, 8/57, छ. अलंकारसर्वस्व, सूत्र-21

ज. सरस्वतीकण्ठाभरण, 4, झ. काव्यप्रकाश, 10/146 अ. साहित्यदर्पण, 10/39,

ट. रसगंगाधर, द्वितीय आनन, पृ०-267

3 पं० शंकरदेव शास्त्री द्वारा संपादित वासवदत्ता, पृ०-301

यहाँ उपमेय बक पंक्ति का निषेध करके उपमान शंखमाला का स्थापन किया गया है। अतः यहाँ अपह्नुति अलंकार है।

अर्थान्तरन्यास—

जहाँ किसी संभाव्यमान अर्थ की सिद्धि के लिये उससे भिन्न किसी दूसरे अर्थ की स्थापना की जाती है वहाँ अर्थान्तरन्यास अलंकार होता है। अर्थान्तरन्यास में दो वाक्य होते हैं एक सामान्य अर्थ का कथन करता है, दूसरा विशेष अर्थ का दोनों अर्थों में समर्थ्यसमर्थक भाव होता है।¹ वासवदत्ता कथा में अर्थान्तरन्यास अलंकार का उदाहरण इस प्रकार दिया गया है—

भवति सुभगत्वमधिकं विस्तारितपरगुणस्य सुजनस्य ।

वहति विकाशितकुमुदो द्विगुणरुचिं हिमकरोद्द्योतः ।।²

अर्थात् दूसरे के गुणों को प्रकट करने वाले सज्जन उसी प्रकार और भी अधिक मनोहर प्रतीत होते हैं, जिस प्रकार कुमुदों को खिलाने वाली चाँदनी पहले से भी अधिक रमणीय प्रतीत होती हैं। प्रस्तुत उदाहरण में विशेष चाँदनी के द्वारा सामान्य सज्जनों का समर्थन होने से अर्थान्तरन्यास अलंकार है।

1 क. भवेदर्थान्तरन्यास. सादृश्येनोत्तरेण सः — अग्नि पुराण, 344/24

ख। काव्यालंकार, 2/71

ग। काव्यादर्श, 2/169

घ। काव्यालंकारसूत्रवृत्ति, 4/3/21

ङ। वाग्भटालंकार, 4/91

च। काव्यालंकार, 8/79

छ। अलंकारसर्वस्व, सूत्र — 36

ज। काव्यप्रकाश, 10/109

झ। साहित्यदर्पण, 10/61.62

ञ। कुवलयानन्द, कारिका— 122

ट. रसगंगाधर, द्वितीय आनन, पृ०—290

2 पं० शंकरदेव शास्त्री द्वारा संपादित वासवदत्ता, प्रस्तावना श्लोक — 5

निदर्शना —

जहाँ पदार्थों अथवा वाक्यार्थों का अनुपपद्यमान अर्थात् उपयुक्त न होता हुआ सम्बन्ध उपमा की कल्पना कर लेता है वहाँ निदर्शना अलंकार होता है—¹

गुणिनामपि निजरूपप्रतिपत्तिः परत एवं सम्भवति ।

स्वमहिमदर्शनमक्षणोर्मुकुरतले जायते यस्मात् ॥²

अर्थात् गुणवान् पुरुषों को भी अपने स्वरूप का ज्ञान दूसरों के द्वारा ही होता है, क्योंकि आँखें अपने बड़प्पन का दर्शन दर्पण में ही कर सकती हैं ।

दृष्टान्त—

दृष्टान्त का व्युत्पत्तिकृत अर्थ है—‘दृष्टोऽन्तः निश्चयो यत्र’ अर्थात् जहाँ दृष्टान्तिक वाक्य के द्वारा दृष्टान्तिक वाक्य के अर्थ का निश्चय देखा जाता है अथवा जहाँ साधारण धर्म आदि का बिम्ब प्रतिबिम्ब भाव होने से दो वाक्यार्थों का औपम्य प्रतीत होता है, वहाँ दृष्टान्त अलंकार होता है।³

1 क काव्यालंकार, 3/33

ख काव्यादर्श, 2/348

घ. काव्यालंकारसूत्रवृत्ति, 4/3/20

ङ अलंकारसर्वस्व, सूत्र — 28

च सरस्वतीकण्ठाभरण 3/31

छ काव्यप्रकाश, 10/97

ज साहित्यदर्पण, 10/51

झ. कुवलयानन्द, कारिका—53

ञ रसगंगाधर, द्वितीय आनन, पृ०—384

2 आर० वी० कृष्णमाचारियर द्वारा संपादित वासवदत्ता, प्रस्तावना श्लोक—12

3 क विद्वान् पूर्वोपलब्धौ यत्समत्वमुपपादयेत् ।

निदर्शनकृतस्तजैः स दृष्टान्त इति स्मृतः ॥ —नाट्यशास्त्र, 16, 25

ख वाग्भटालंकार, 4/81

ग. काव्यालंकार, 8/94

घ अलंकारसर्वस्व, सूत्र—27

ङ. दृष्टान्तः पुनरेतेषा सर्वेषा प्रतिबिम्बनम् ॥ —काव्यप्रकाश, 10/102

च दृष्टान्तस्तु सधर्मस्य वस्तुन प्रतिबिम्बनम् । —साहित्यदर्पण, 10/51

दृष्टान्त अलंकार का उदाहरण देते हुए कवि कहता है कि महाकवियों की सूक्तियाँ प्रसाद, माधुर्यादि गुणों के अनुभव के बिना भी केवल सुनने मात्र से कानों में मधु की वर्षा करती हैं। जैसे मालती पुष्प की माला सुगन्ध ग्रहण किये बिना भी दर्शनमात्र से दृष्टि को आकर्षित करती है—

अविदितगुणाऽपि सत्कविभणितिः कर्णेषु वमति मधुधाराम् ।

अनधिगतपरिमलाऽपि हि हरति दृशं मालतीमाला ॥¹

प्रस्तुत उदाहरण में उपमान तथा उपमेय के भिन्न होने पर भी सादृश्य के कारण बिम्ब प्रतिबिम्ब भाव होने से दृष्टान्त अलंकार है।

व्यतिरेक—

व्यतिरेक शब्द का अर्थ है— विशेषेण अतिरेकः। गुणविशेष के कारण कोई पदार्थ किसी का उपमान है। इसका अभिप्राय है कि वह उपमेय से उत्कृष्ट है। किन्तु जब कोई कवि उपमेय को उपमान से उत्कृष्ट दिखलाना चाहता है तब व्यतिरेक अलंकार होता है। प्रसिद्ध उपमान की अपेक्षा उपमेय का उत्कर्ष दिखलाने में ही इस अलंकार का चमत्कार निहित है।² व्यतिरेक अलंकार का उदाहरण राजा चिन्तामणि के वर्णन में प्राप्त होता है—

1 आर० वी० कृष्णमाचारियर द्वारा संपादित वासवदत्ता, प्रस्तावना, श्लोक—11

2 क. उपमानवतोऽर्थस्य यद्विशेषनिदर्शनम् । व्यतिरेकं तमिच्छन्ति विशेषापादनाद्यथा ॥

—काव्यालंकार, 2/75

ख. काव्यादर्श, 2/180

ग. काव्यालंकारसूत्रवृत्ति, 4/3/20

घ. वाग्भटालंकार, 4/83

ड. काव्यालंकार, 7/86

च. अलंकारसर्वस्व, सूत्र—29

छ. सरस्वतीकण्ठाभरण, 3/32

ज. काव्यप्रकाश, 10/105

झ. साहित्यदर्पण, 10/52

ञ. कुवलयानन्द, कारिका—57

ट. रसगंगाधर, द्वितीय आनन, पृ०—401

स हिमालयो नावश्यायोच्छलितः नो मायाजन्मने हितश्च।¹

अर्थात् राजा चिन्तामणि हिमालय से भी विलक्षण था। क्योंकि हिमालय अवश्य ही हिम से वृद्धि को प्राप्त था तथा माया अर्थात् पार्वती के जन्म लाभ के लिये हितकर था परन्तु राजा चिन्तामणि माया अर्थात् लक्ष्मी का निवास स्थान होते हुये भी अहंकार से अपनी मर्यादा से च्युत नहीं था न ही छल आदि के अनुकूल था।

यहाँ उपमान हिमालय से उपमेय राजा चिन्तामणि का उत्कर्ष वर्णित हैं। अतः प्रस्तुत उदाहरण में व्यतिरेक अलंकार है।

एक अन्य स्थल पर कवि ने राजा शृंगारशेखर का वर्णन करते हुए उसे इन्द्र से भी श्रेष्ठ बताया है। सुबन्धु के अनुसार शृंगारशेखर ने अपने गुणों द्वारा इन्द्र को भी नीचा दिखा दिया, क्योंकि वह इन्द्र केवल देवताओं का रक्षक है तथा मद्यपायी है किन्तु शृंगारशेखर का हृदय अत्यन्त पवित्र है।

इन्द्र की सभा के भगवान् बृहस्पति ग्रह रूप हैं तथा वह अनुचित अवसर पर आग्रह करने लगते हैं जबकि शृंगारशेखर सर्वदा उचित मार्ग में ही प्रवृत्त होता है। इन्द्र सर्वदा वज्र हाथ में लिये रहते हैं तथा इनका हाथ सदैव माँगने के लिये उद्यत रहता है, लेकिन शृंगारशेखर तृण के समान अपना सर्वस्व दे डालता है।² यहाँ पर उपमेय राजा शृंगारशेखर का उपमान इन्द्र से अधिक्य वर्णित हैं अतः यहाँ व्यतिरेक अलंकार है।

1 आर० वी० कृष्णमाचारियर द्वारा संपादित वासवदत्ता, पृ०-31.

2 सुराणां पाताऽसौ स पुनरतिपुण्यैकहृदयो
ग्रहस्तस्यास्थाने गुरुचित्तमार्गे स निरतः।
करस्तस्यात्यर्थं वहति शतकोटिप्रणयितां
स सर्वस्वं दाता तृणमिव सुरेन्द्र विजयते॥

—आर० वी० कृष्णमाचारियर द्वारा संपादित वासवदत्ता, पृ०-142

समासोक्ति—

समास का अर्थ है— संक्षेप। अतः समासोक्ति से तात्पर्य है संक्षेप से दो अर्थों का कथन। श्लिष्ट अर्थात् प्रस्तुत और अप्रस्तुत दोनों में उपर्युक्त विशेषणों के द्वारा अप्रकृत अर्थ का कथन ही समासोक्ति है। केवल विशेषण ही श्लिष्ट होते हैं विशेष्य नहीं।¹

कन्दर्पकेलिसम्पल्लम्पटलाटीललाटतटलुलितालकधम्मिल्लभारबकुलकुसुमपरिमलमे
लनसमृद्धमधुरिमगुणः, कामकलाकलापकुशलचारुकर्णाटसुन्दरीस्तनकलशघुसृणधूलि—
पटल—परिमलामोदवाही, रणरणकरसितापरान्तकान्तकुन्तलोल्ललन संक्रान्तपरिमलमिलि—
तालिमालामधुरतरङ्गकाररवमुखरितनभःस्थलः, नवयौवनरागतरलकुरलीकपोलपालि—
पद्मालीपरिचयचतुरः, चतुषष्टिकलापविदग्धमुग्धमालवनितम्बिनीनितम्बबिम्ब—
संवाहनकुशलः, सुरतश्रमपरवशान्धपुरन्धीनीरन्ध्रीनपयोधरभारनिदाघजलकणनिकर—
शिशिरितो मलयमारुतौ ववौ।²

इस उदाहरण में विविध विशेषणों के द्वारा दक्षिण वायु में नायक की प्रतीति होने से समासोक्ति अलंकार है।

-
- 1 क. अग्निपुराण, 345/17,
ख. काव्यालंकार, 2/79
ग. काव्यादर्श, 2/205,
घ. काव्यालंकारसूत्रवृत्ति, 4/3/3
ङ. वाग्भटालंकार, 4/94,
च. काव्यालंकार, 8/67
छ. अलंकारसर्वस्व, सूत्र-32,
ज. काव्यप्रकाश, 10/97
झ. साहित्यदर्पण, 10/56,57,
ञ. कुवलयानन्द, कारिका-61
ट. रसगंगाधर, द्वितीय आनन, पृ०-438,
2 पं० शंकरदेव शास्त्री द्वारा संपादित वासवदत्ता, पृ०-148

अप्रस्तुतप्रशंसा—

जो अप्रकृत वस्तु का वर्णन प्रकृत वस्तु की प्रतीति का निमित्त होता है वही अप्रस्तुतप्रशंसा अलंकार है ।¹

सत्त्वसारिचितो यो रिपुमण्डलाग्रतो निर्वृतिमुपेत्य तिष्ठति ।²

अर्थात् जो पुरुष शत्रु की तलवार के सामने भी सन्तोष प्राप्त करके स्थित रहता है वही महामना पुरुष है। प्रस्तुत उदाहरण में अप्रस्तुत अर्थ के द्वारा 'आप धैर्यवान हैं' इस प्रस्तुत अर्थ की प्रतीति होने से अप्रस्तुतप्रशंसा अलंकार है।

परिकर—

जहाँ अभिप्राययुक्त विशेषणों के द्वारा विशेष्य की परिपुष्टि होती है वहाँ परिकर अलंकार होता है ।³ सुबन्धु के अनुसार—

विध्वस्तपरगुणानां भवति खलानामतीव मलिनत्वम् ।

अन्तरितशशिरुचामपि सलिलमुचां मलिनिमाऽभ्यधिकः ।।⁴

1 क. काव्यालंकार, 3/29

ख. अप्रस्तुतप्रशंसा स्यादप्रक्रान्तेषु या स्तुतिः । —काव्यादर्श, 2/340

ग. काव्यालंकार सूत्रवृत्ति, 4/3/4

घ. काव्यालंकार, 8/74

ङ. अलंकारसर्वस्व, सूत्र-35

च. सरस्वतीकण्ठाभरण, 4/52

छ. काव्यप्रकाश, 10/98,99

ज. साहित्यदर्पण, 10/58-60

झ. कुवलयानन्द, कारिका-66

ञ. रसगंगाधर, द्वितीय आनन, पृ० 505

2 पं० शंकरदेव शास्त्री द्वारा संपादित वासवदत्ता, पृ०-221

3 क. रूद्रट्टकृत काव्यालंकार, 2/72

ख. अलंकारसर्वस्व, सूत्र-23

ग. सरस्वतीकण्ठाभरण, 4/27

घ. काव्यप्रकाश, 10/

ङ. साहित्यदर्पण, 10/57

च. रसगंगाधर, द्वितीय आनन, पृ०-473

4 पं० शंकरदेव शास्त्री द्वारा संपादित वासवदत्ता, प्रस्तावना, श्लोक-8

अर्थात् दूसरे के गुणों पर पर्दा डालने वाले दुर्जनों की नीचता उसी प्रकार और भी अधिक बढ़ जाती है, जिस प्रकार चन्द्रमा की किरणों को छिपाने वाले मेघों की कालिमा अधिक हो जाती है।

यहाँ मेघों के लिये 'सलिलमुचा' इस पद का जलों को बरसाने वाले मेघ 'यह' अर्थ है। अतः साभिप्राय होने से यहाँ परिकर अलंकार है।

अनुमान —

अनुमान वह अलंकार है जिसमें साध्य अर्थात् सिद्ध करने योग्य अग्नि आदि और साधन भाव का कथन किया जाता है।¹

जलदकालसरसीव गन्धपरिभ्रमदभ्रमरमालानुमीयमानजलमूलमग्नकुमुदपुण्डरीका²

अर्थात् वर्षाकाल में तालाबों में जल भर जाने के कारण, कुमुद तथा कमल ऊपर दिखाई नहीं पड़ते, परन्तु उनकी गन्ध से जल के ऊपर मंडराते हुए भ्रमरों को देखकर उस स्थान पर जल में उनके अस्तित्व का सहज ही अनुमान कर लिया जाता है।

परिसंख्या—

परिसंख्या अलंकार में पूछी गयी अथवा न पूछी गयी वस्तु शब्द के द्वारा कही जाकर अपने जैसी किसी अन्य वस्तु के व्यवच्छेद में पर्यवसित हो जाती है।³ परिसंख्या के दो भेद होते हैं— आर्थी परिसंख्या एवं शाब्दी परिसंख्या।

1 क. काव्यादर्श, 2/235, ख. वाग्भटालंकार, 4/137 ग. काव्यालंकार, 7/56,
घ. अलंकारसर्वस्व, सूत्र 9 ड. सरस्वतीकण्ठाभरण, 3/47, च. काव्यप्रकाश, 10/117
छ. साहित्यदर्पण, 10/63, ज. रसगंगाधर, द्वितीय आनन, पृ०-700
2 पं० शंकरदेव शास्त्री द्वारा सम्पादित वासवदत्ता, पृ०-114, 115
3 क. वाग्भटालंकार, 4/141 ख. रुद्रट कृत काव्यालंकार, 7/79
ग. एकस्थानेकप्राप्तावेकत्र नियमनं परिसंख्या —अलंकारसर्वस्व, सूत्र-63
घ. काव्यप्रकाश, 10/119 ड. साहित्यदर्पण, 10/81 च. कुवलयानन्द, कारिका-113.

यत्र च शासति धरां छलजातिनिग्रहप्रयोगो वादेषु, नास्तिकता चार्वाकेषु, कष्टकयोगो योगेषु, परीवादो वीणासु, खलसंयोगः शालिषु, द्विजिह्वसंगृहीतिः अहितुण्डकेषु, करच्छेदः कुङ्कुमलग्रहणेषु, नेत्रोत्पाटनं मुनीनाम्, राजविरुद्धता पंकजानाम्, सार्वभौम योगो दिग्गजानाम्, सूचिभेदो मणीनाम्, शूलभङ्गो युवतिप्रसवेषु, अग्नितुलाशुद्धिः स्वर्णानाम्¹

यहाँ शब्दतः निषेध नहीं किया गया अतः यहाँ आर्थी परिसंख्या है।

कोषसंकोचः कमलाकरेषु न जनेषु, जातिविहीनता मालासु न कुलेषु, शृङ्गारहानिः जरत्करिषु न जनेषु, दुर्वर्णयोगः कटकादिषु न कामिनीकान्तिषु, गान्धारविच्छेदो रागेषु न पौरवनितासु, मूर्च्छाधिगमो गानेषु न प्रजासु।²

प्रस्तुत उदाहरण में शब्दतः निषेध होने के कारण शाब्दी परिसंख्यालंकार हैं।

स्वाभावोक्ति—

स्वाभावोक्ति वह अलंकार है जिसके अन्तर्गत बालक आदि पदार्थों की स्व-आश्रित क्रिया तथा रूप आदि का वर्णन किया जाता है।³

जहाँ कवि ने विन्ध्याचल पर्वत का वर्णन सिंह के रूप में किया वहाँ स्वाभावोक्ति अलंकार है। कवि के अनुसार सिंह का अगला भाग उठा हुआ है तथा

1 आर० वी० कृष्णचरितामाचारियर द्वारा संपादित वासवदत्ता, पृ०-24-28

2 पं० शंकरदेव शास्त्री द्वारा संपादित वासवदत्ता, पृ०-127,128

3 क. नानावस्थं पदार्थानां रूपं साक्षाद्विवृण्वती। स्वाभावोक्तिश्च जातिश्चेत्याद्या सालंकृतिर्यथा॥

—काव्यादर्श, 2/8

ख. सूक्ष्मवस्तुस्वभावयथावद्वर्णनं स्वाभावोक्तिः —अलंकारसर्वस्व, सूत्र-79

ग. स्वाभावोक्तिस्तु डिम्भादेः स्वकियारूपवर्णनम् —काव्यप्रकाश, 10/111

घ. साहित्यदर्पण, 10/93

ड. कुवलयानन्द, कारिका-160

पिछला भाग झुका हुआ है। पूँछ सीधी एवं स्थिर है। पूँछ का अगला भाग कुछ मुड़ा हुआ तथा पीठ पर रखा हुआ है। उसने अपने अयाल उठाये हैं और कान खड़े किये हुये हैं। वेदना के घोर शब्द करते हुए पर्वत कन्दरा में हाथी के विशाल मस्तक पर स्थित इस सिंह का चित्र भी नहीं खींचा जा सकता है। इसके अयाल उठे हैं और यह अपनी स्वाभाविक उग्रता से शत्रुओं को नष्ट करने में समर्थ है। इसके केसर अत्यधिक चमकीले हैं मुख भयंकर तथा विशाल है। पूँछ निश्चल और उठी हुई है, इसके सभी अंग संकुचित हो रहे हैं।¹

मालादीपक—

मालादीपक वहाँ होता है जहाँ आद्य अर्थात् पूर्व-पूर्व वस्तु उत्तरोत्तर वर्णनीय वस्तु में उत्कर्षाधायक होती हैं।²

कवि ने मालादीपक का उदाहरण कन्दर्पकेतु के पराक्रम के वर्णन में दिया है—

यस्य च समरभुवि भुजदण्डेन कोदण्डं, कोदण्डेन शराः, शरैररिशिरः अरिशिरसा
भूमण्डलं, भूमण्डलेमानुभूतपूर्वो नायकः, नायकेन कीर्तिः, कीर्त्या च सप्त सागराः, सागरैः,
कृतयुगादिराजचरितस्मरणम् स्मरणेन स्थैर्यम्, स्थैर्येण प्रतिक्षणमाश्चर्यं— मासादितम्।³

यहाँ पूर्व की वस्तुएँ बाद की वस्तुओं का उत्कर्ष बढ़ाती हैं। इसके अतिरिक्त यहाँ उपमेय तथा उपमान के धर्मों का एक बार ही वर्णन किया गया है। अतः यहाँ

1 पं० शंकरदेव शास्त्री द्वारा संपादित वासवदत्ता, पृ०-95, 96.

2 क. काव्यादर्श, 2/108

ख. अलंकारसर्वस्व, सूत्र-56

ग. काव्यप्रकाश, 10/104

घ. साहित्यदर्पण, 10/77

ड. कुवलयानन्द, कारिका-107

3 पं० शंकरदेव शास्त्री द्वारा संपादित वासवदत्ता, पृ०-95, 96

मालादीपक अलंकार है।

रसवद्—

रस जब किसी भाव का अंग हो तो रसवद् अलंकार होता है।¹

खिन्नोऽसि मुंच शैलं विभृमो वयमिति वदत्सु शिथिलभुजः ।

भरभुग्नवितथ बाहुषु गोपेषु हसन् हरिर्जयति ॥²

अर्थात् तुम थक गये हो, पर्वत को छोड़ दो, हम सँभाले रहेंगे, ऐसा गोपों के कहने पर हरि ने भुजा को कुछ शिथिल कर लिया तब गोपों की भुजाएँ बोझ से झुक गयीं और व्यर्थ हो गयीं, पर्वत के बोझ को सँभाल न सकीं। इस पर हरि हँसने लगे। इस प्रकार हँसते हुए हरि विजय को प्राप्त हों। यहाँ रति रूप भाग हास्य रस का अंग बन जाने से रसवद् अलंकार हैं।

प्रेय—

भाव यदि किसी का अंग हो, तो प्रेय अलंकार होता है। अत्यन्त प्रिय होने से इसे प्रेय कहते हैं।³

स जयति हिमकरलेखा चकास्ति यस्योमयोतसुकान्निहिता ।

नयनप्रदीपकज्जलजिघृक्षया रजतशुक्तिरिव ॥⁴

1 क. काव्यालंकार, 6/3

ख. काव्यादर्श, 2/275

ग. अलंकारसर्वस्व, सूत्र — 84

घ. साहित्यदर्पण, 10/95, 96

ड. कुवलयानन्द, कारिका—170

2 आर० वी० कृष्णमाचारियर द्वारा संपादित वासवदत्ता, प्रस्तावना, श्लोक—2

3 क. काव्यादर्श, 2/275

ख. कुवलयानन्द, कारिका—170

4 आर० वी० कृष्णमाचारियर द्वारा संपादित वासवदत्ता, प्रस्तावना, श्लोक—4

उपर्युक्त उदाहरण में उत्सुकता का भाव शृंगार रस का अंग बन गया है ।

अतः यहाँ प्रेय अलंकार है ।

अतिशयोक्ति—

जहाँ उपमान के द्वारा प्रकृत अर्थात् उपमेय का निगरण अर्थात् पृथक् निर्देश न करके उसके साथ कल्पित अभेद का निश्चय, वर्णनीय का अन्य रूप से वर्णन, यदि अर्थ वाले शब्दों का कथन करके असम्भव अर्थ की कल्पना तथा कार्य तथा कारण के पूर्व अपरभाव का विपरीत होना वर्णित किया जाता है वहाँ अतिशयोक्ति अलंकार होता है ।¹

इत्थं नास्ति वागवसरः पूर्वतरराजसु । स पुनरन्य एव देवो न्यक्कृतसर्वोर्वी-
पतिचरितः ।²

अर्थात् इस प्रकार पहले के राजाओं के सम्बन्ध में कुछ कहा नहीं जा सकता । वह सबसे विलक्षण राजा था जिसने अपने चरित्र से सब राजाओं के चरित्र को तिरस्कृत कर दिया था ।

शैली वैविध्य—

अरस्तु के मतानुसार शैली एक ग्राम्य अर्थात् अनुदात्त विषय है । अरस्तु का कथन है कि वर्ण्य विषय पर अधिकार होना पर्याप्त नहीं है । अपितु यह आवश्यक है

1 क. लोक सीमातिवृत्तस्य वस्तुधर्मस्य कीर्तनम् । भवेदतिशयो नाम संभवसंभवद्विधा ।।

—अग्निपुराण, 344/25,26

ख. काव्यालंकार, 2/81 ग. काव्यादर्श, 2/214

घ. सम्भाव्यधर्मतदुत्कर्षकल्पनाऽतिशयोक्तिः —काव्यालंकार सूत्रवृत्ति, 4/3/10

ङ अलंकारसर्वस्व, सूत्र — 23 च. सरस्वतीकण्ठाभरण, 81

छ. काव्यप्रकाश, 10/100,101 ज. साहित्यदर्पण, 10/46

झ. कुवलयानन्द कारिका—36 झ. रसगंगाधर, द्वितीय आनन, पृ0—318

2 पं0 शंकरदेव शास्त्री द्वारा संपादित वासवदत्ता, पृ0—17

कि उसको उचित रीति से प्रस्तुत किया जाये। इससे वाणी में वैशिष्ट्य का समावेश होता है। उन्होंने गद्य तथा पद्य की शैली के पृथक् पृथक् स्पष्ट भेद किये हैं। अरस्तु ने शैली के दो गुणों स्पष्टता एवं औचित्य की चर्चा की है। शैली में स्पष्टता का समावेश सामान्य प्रयोग में आने वाली संज्ञाओं तथा क्रियाओं पर निर्भर है। अन्यत्र उन्होंने शैली की स्पष्टता के पढ़ने तथा समझने में सौकर्य ; यति विराम आदि की असंदिग्ध स्थिति तथा अनावश्यक पर्यायोक्तियों के अभाव ; मिश्र तथा द्विअर्थक अभिव्यंजना के अभाव तथा अवान्तर वाक्य खण्डों के अनधिक प्रयोग ये चार आधार माने हैं। शैली का द्वितीय गुण औचित्य का समावेश उस स्थिति में होता है जब वह भाव तथा व्यक्तित्व को अभिव्यक्त करें तथा विषय वस्तु के अनुकूल हो।¹

रीति शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग वामन ने किया है। वामन के अनुसार रीति ही काव्य की आत्मा है।² विशेष प्रकार की पद रचना को रीति कहते हैं।³ रीति शब्द रीङ् धातु से निष्पन्न होता है जिसका अर्थ गति, मार्ग अथवा प्रस्थान तथा रुढ़ अर्थ पद्धति, विधि आदि हैं।⁴ वामन से पूर्व भरत, भामह तथा दण्डी में रीति को पृथक्-पृथक् नामों से अभिहित किया है। भरत के शब्दों में—जो पृथ्वी के नाना देशों के वेश, भाषा तथा आचार की वार्ता को व्यक्त करे वह प्रवृत्ति है।⁵ भरत ने आवन्ती, दाक्षिणात्य, उड्डमागधी तथा पांचाली प्रवृत्तियों का उल्लेख किया है।⁶ दण्डी के

1 अरस्तु का काव्यशास्त्र, पृ० 147-149

2 रीतिरात्मा काव्यस्य —काव्यालंकारसूत्रवृत्ति, 1/2/6

3 विशिष्टपदरचना रीति: —काव्यालंकारसूत्रवृत्ति, 1/2/7

4 सरस्वतीकरणभाषण, 2/27

5 पृथिव्यां नानादेशवेशभाषाचारवार्ता: ख्यापयतीति प्रवृत्ति: —नाट्यशास्त्र, पृ०-187

6 चतुर्विधा प्रवृत्तिश्च प्रोक्ता नाट्यप्रयोगतः।

आवन्ती दाक्षिणात्या च पांचाली चोड्डमागधी।।

—नाट्यशास्त्र, 14/36

विचारानुसार काव्य के परस्पर सूक्ष्म अन्तर वाले अनेक मार्ग हैं। जिनमें से वैदर्भी तथा गौड़ी मार्ग का वर्णन दण्डी ने किया है—

अस्त्यनेको गिरां मार्गः सूक्ष्मभेदः परस्परम् ।

तत्र वैदर्भगौडीयौ वर्ण्यते प्रस्फुटान्तरो ॥¹

वामन ने तीन रीतियों का वर्णन किया है—

सा त्रेधा वैदर्भी गौडीया पांचाली चेति ।²

वामन के पश्चात् जहाँ रुद्रट ने चार रीतियों वैदर्भी, गौड़ी, पांचाली तथा लाटी³ का उल्लेख किया है वहीं भोज ने प्रस्तुत चार रीतियों के साथ ही आवन्तिका तथा मागधी रीतियों⁴ की भी चर्चा की है।

आनन्दवर्धन ने रीति का संघटना नाम से वर्णन किया है। उनके अनुसार रीति के तीन भेद हैं—असमासा, मध्यमसमासा और दीर्घसमासा।⁵ आनन्दवर्धन का मानना है कि रीति अथवा संघटना का स्वरूप निर्धारण समास की स्थिति अथवा आकार द्वारा होता है। उन्होंने रीति को गुणाश्रयी एवं रसाभिव्यक्ति का माध्यम कहा है।

कुन्तक ने पुनः रीति को दण्डी के समान 'मार्ग' के नाम से अभिहित किया है। शिंग भूपाल ने कोमला, कठिना तथा मिश्रा तीन रीतियों का उल्लेख किया है।⁶ मम्मट ने रीति को वृत्ति नाम दिया है। उनकी दृष्टि में वर्णों का रसानुकूल व्यापार

1 काव्यादर्श, 1/40

2 काव्यालंकारसूत्रवृत्ति, 1/2/9

3 काव्यालंकार,, 2/3-6

4 सरस्वतीकण्ठाभरण, 2/32,33

5 असमासा, समासेन मध्यमेन च भूषिता।

तथा दीर्घसमासेति त्रिधा संघटनोदिता ॥ —ध्वन्यालोक, 3/5

6 रीतिः स्यात् पदविन्यासभंगी सा तु त्रिधा मता।

कोमला कठिना मिश्रा चेति स्यात् तत्र कोमला। —रसार्णव सुधाकर, 1/226, 227

वृत्ति कहलाता है।¹ उन्होंने तीन वृत्तियों—उपनागरिका, परुषा तथा कोमला का निरूपण किया है।²

विश्वनाथ के विचारानुसार पदों के मेल अथवा संगठन को रीति कहते हैं। वह अंगसंस्थान की तरह मानी जाती है। जिस प्रकार पुरुषों की देह का संगठन होता है उसी प्रकार काव्यों के देहरूप शब्दों और अर्थों का भी संगठन होता है। इसी संगठन को रीति कहते हैं।³ साहित्यदर्पणकार विश्वनाथ ने रीति के चार भेदों—वैदर्भी, गौड़ी, पांचाली तथा लाटी की चर्चा की है।⁴

ओज को प्रकाशित करने वाले कठिन कार्यों से बनाये हुए अधिक समासों से युक्त उद्भट बन्ध को गौड़ी रीति कहते हैं।⁵ वामन के मतानुसार ओज तथा कान्ति से युक्त गौड़ी रीति कहलाती है।⁶ कविवर सुबन्धु ने मुख्य रूप से गौड़ी रीति का आश्रय लेकर कथा की रचना की है। गौड़ी रीति के उदाहरण के रूप में चिन्तामणि वर्णन⁷, श्मशान वर्णन,⁸ वासवदत्ता वर्णन⁹, समुद्र वर्णन¹⁰ तथा विन्ध्याचल वर्णन¹¹ विशेष उल्लेखनीय हैं। एक अन्य उदाहरण इस प्रकार है—

1 वृत्तिर्नियतवर्णगतो रसविषयो व्यापार, —काव्यप्रकाश, 9/105, वृत्ति पृ०-306.

2 काव्यप्रकाश, 9/79, 80.

3 पदसंघटना रीतिरंगसंस्थाविशेषवत्।

उपकर्त्री रसादीनां सा पुनः स्याच्चतुर्विधा।। —साहित्यदर्पण, 9/1

4 वैदर्भी चाथ गौड़ी च पांचाली लाटिका तथा। —साहित्यदर्पण, 9/2

5 ओजः प्रकाशकैर्वर्णैर्बन्ध आडम्बर. पुनः। समासबहुला गौड़ी।। —साहित्यदर्पण, 9/3,4

6 ओजः कान्तिमती गौड़ीयो —काव्यालंकारसूत्रवृत्ति, 1/2/12

7 पं० शंकरदेव शास्त्री द्वारा संपादित वासवदत्ता, पृ०-8-24

8 पं० शंकरदेव शास्त्री द्वारा संपादित वासवदत्ता, पृ०-259-262

9 पं० शंकरदेव शास्त्री द्वारा संपादित वासवदत्ता, पृ०-47-60

10 आर० वी० कृष्णमाचारियर द्वारा संपादित वासवदत्ता, पृ०-327-336

11 आर० वी० कृष्णमाचारियर द्वारा संपादित वासवदत्ता, पृ०-96-106

कन्दर्पकेलिसम्पल्लम्पटलाटीललाटतटलुलितालकधम्मिल्लभारबकुलकुसुमपरिमलमे
 लनसमृद्धमधुरिमगुणः, कामकलाकलापकुशलचारुकर्णाटसुन्दरीस्तनकलशघुसृणधूलि—
 पटलपरिमलामोदवाही, रणरणकरसितापरान्तकान्तकुन्तलोल्ललन संक्रान्तपरिमलमिलि—
 तालिमालामधुरतरङ्गकाररवमुखरितनभःस्थलः, नवयौवनरागतरलकेरलीकपोलपालि—
 पद्मावलीपरिचयचतुरः, चतुःषष्टिकलापविदग्धमुग्धमालवनितम्बिनीनितम्बबिम्बसंवाहन—
 कुशलः, सुरतश्रमपरवशान्धपुरन्धीनीरन्ध्रपीनपयोधरभारनिदाघजलकणनिकरशिशिरतो
 मलयमारुतौ ववौ ।¹

वामन ने पांचाली रीति का लक्षण इस प्रकार दिया है—

माधुर्यसौकुमार्योपपन्ना पांचाली ।²

विश्वनाथ के मतानुसार वैदर्भी तथा गौड़ी रीतियों के शेष वर्णों से युक्त तथा जिसमें पाँच, छः पदों तक का समास हो वह पांचाली रीति कहलाती है³—

दूरप्रसारितकोकप्रियतमारुते मारुते वहति जघनमदननगरतारणस्रजा,
 मन्मथमहानिधिजघनकोशमन्दिरकनकप्राकारेण, रोमाराजिलतालवालवलयेन, जघनचन्द्र—
 मण्डलपरिवेषेण, मदनत्रिभुवन विजयप्रशस्तिवर्णावलोकनकपत्रेण, सकलहृदय—
 बन्दीजननिवासगृहपरिखावलयेन, सकलजगल्लोचनलासकविहङ्गमावासक—
 नकशलाकागुणेन, मेखलादाम्या परिकलितजघनस्थलाम्, उन्नतपयोधरभारान्तरित—
 मुखचन्द्रदर्शनाप्राप्तिखेदेनेव⁴

1 पं० शंकरदेव शास्त्री द्वारा संपादित वासवदत्ता, पृ०—146—148.

2 काव्यालंकारसूत्रवृत्ति, 1/2/13

3 वर्णः शेषैः पुनर्द्वयोः । समस्तपंचषपदो बन्धः पांचालिका मता ।। —साहित्यदर्पण, 9/3,4

4 पं० शंकरदेव शास्त्री द्वारा संपादित वासवदत्ता, पृ०—47—49

इसके अतिरिक्त राजा शृंगारशेखर के वर्णन में पांचाली रीति का उदाहरण प्राप्त होता है।

वामन ने दस शब्द गुणों तथा दस अर्थगुणों से युक्त रीति को वैदर्भी रीति स्वीकार किया है।¹ माधुर्यव्यंजक वर्णों के द्वारा कही हुई समासरहित अथवा छोटे-छोटे समासों से युक्त मनोहर रचना को वैदर्भी रीति कहते हैं।² वैदर्भी रीति का उदाहरण काम पीड़ा से व्यथित नायिका वासवदत्ता के वर्णन में मिलता है—

हा प्रिये सख्यनंगलेखे! वितर हृदये मे पाणिपद्मम् दुःसहो विरहसन्तापः। मुग्धे मदनमंजरि! सिंचांगानि चन्दनवारिणा। सरले वसन्तसेने! संवृणु केशपाशम्। तरले तरंगवति! विकिरांगेषु कैतकधूलिम्। वामे मदनमालिनी! कलय वलये शैवालकलापेन। चपले चित्रलेखे! चित्रपटे विलिख चितचोरं जनम्।³

इसके अतिरिक्त वासवदत्ता के भवन में हुए रमणियों के परस्पर वार्तालाप में भी रीति का उदाहरण उपलब्ध होता है।

वैदर्भी तथा पांचाली इन दोनों रीतियों के अल्प लक्षणों से युक्त लाटी रीति कहलाती है⁴—

तस्य च पारिजात इवाश्रितनन्दनः, हिमालय इव जनितशिवः, मन्दर इव भोगिभोगाकिंतः, कैलास इव महेश्वरोपभुक्तकोटिः, मधुरिव नानारामानन्दकरः,

1 समग्रगुणा वैदर्भी, —काव्यालंकारसूत्रवृत्ति, 1/2/11

2 माधुर्यव्यंजकवर्ण रचना ललितात्मिका।।

अवृत्तिरल्पवृत्तिर्वा वैदर्भी रीतिरिष्यते। —साहित्यदर्पण, 9/2, 3

3 पं० शंकरदेव शास्त्री द्वारा संपादित वासवदत्ता, पृ०—172—173.

4 लाटी तु रीतिवैदर्भीपांचाल्योरन्तरे स्थिता। —साहित्यदर्पण, 9/5

क्षीरोदमथनोद्यतमन्दर इव मुखरितभुवनः रागरज्जुरिवोल्लासितरतिः, ईशानभूतिसंचयः
इव सन्ध्योच्छलितः¹

एक अन्य स्थल पर लाटी रीति का प्रयोग इस प्रकार है—

अनन्तरमखंजखंजरीटे, अकृचिंतक्रौंचसंचारे, निर्भरभरद्वाजद्विजवाचाट—
विटपिविटपे, पटुतरप्रभप्रभाते, उद्भ्रान्तशुककुलकलकलसंकुलकलमकेदारे,
प्रवेशितवेशराजहंसे, कंसारातिदेहद्युतितले, हंसतूलतुलितजरज्जलमुचि, सान्द्रीकृतेन्दु—
महसि, गामुकजनमृदितमधुतृणवीरुधि, सरससारसरसितसारकासरे, कशेरुकन्दलुब्ध—
पोत्रिपोत्रोत्खातसरसस्तटभागे, चकितचातके, संचरन्मत्स्यपुत्रिकापत्रिपटल—
मधुरध्वनिविहितमुदि, कदर्थितकदम्बे, कम्बुद्विषि, प्रसृतबिसप्रसूते, विरलवारिदे,
तारतरतारके, वारुणीतिलकचन्द्रमसि, स्वादुतरसलिले, स्फुरितशफरचक्र—
कवलननिभृतबकानीके, मूकमण्डूकमण्डले, संकोचितकंचुकिनि, कांचनच्छेदगौरगोधूम—
शालिशालिनि, उत्क्रोशदुत्क्रोशे, सुरभिसौगन्धिकगन्धहारिहरिणाश्वे.²

कथाकार ने यत्र तत्र कथोपकथन शैली को भी प्रस्तुत किया है। ऐसे स्थलों पर कवि द्वारा प्रयुक्त वाक्य संक्षिप्त तथा समास रहित हैं। प्रथमतः नायक कन्दर्पकेतु तथा उसके मित्र का परस्पर वार्तालाप, शुक तथा सारिका का वार्तालाप, कलावती द्वारा नायिका की दशा के विषय में बतलाने तथा वासवदत्ता के भवन में रमणियों के वार्तालाप स्पष्ट रूप से उपलब्ध होते हैं।

सुबन्धु ने अपनी गद्यकथा को ओज, माधुर्य तथा प्रसाद गुणों से भली भाँति

1 पं० शंकरदेव शास्त्री द्वारा संपादित वासवदत्ता, पृ०-25, 26

2 पं० शंकरदेव शास्त्री द्वारा संपादित वासवदत्ता, पृ०-303-305

विभूषित किया है। मम्मट ने काव्यलक्षण में 'सगुणौ' पद का प्रयोग किया है। जिससे गुण की महत्ता स्वतः स्पष्ट हो जाती है। मम्मट के शब्दों में जिस प्रकार शूरता आदि आत्मा के धर्म हैं उसी प्रकार जो काव्य में प्रधानतया स्थित रस के धर्म हैं तथा रस के साथ नियत स्थिति वाले रसोत्कर्ष के हेतु जो धर्म हैं वे गुण कहलाते हैं।¹ भरत ने गुणों को दोषों का विपर्यस्त अर्थात् विलोम स्वीकार किया है—

एते दोषास्तु विज्ञेयाः सूरिभिः नाटकाश्रयाः ।

एत एव विपर्यस्ताः गुणाः काव्येषु कीर्तिताः ॥²

दण्डी को भी यही मत अभिप्रेत है।³ वामन ने गुण का स्पष्ट लक्षण किया है। उनके मतानुसार काव्य की शोभा को उत्पन्न करने वाले धर्म गुण होते हैं।⁴ विश्वनाथ के विचारानुसार देह में आत्मा के समान काव्य में प्रधानता को प्राप्त रूप के धर्म उसी प्रकार गुण हैं जैसे आत्मा के शौर्यादी को गुण कहा जाता है।⁵

प्रसाद गुण को परिभाषित करते हुए भरत मुनि का कथन इस प्रकार है—

अप्यनुक्तो बुधैर्यत्र शब्दोऽर्थो वा प्रतीयते ।

सुखशब्दार्थसंबोधात् प्रसादः परिकीर्त्यते ॥⁶

दण्डी ने प्रसाद से तात्पर्य उस अर्थ से माना है जो प्रसिद्ध तथा स्पष्ट हो।⁷

मम्मट के अनुसार प्रसाद गुण चित्त के विकास का जनक है। इस गुण के होने से रस

1 ये रसस्यागिनो धर्माः शौर्यादय इवात्मनः ।

उत्कर्षहेतवस्ते स्युरचलस्थितयो गुणाः ॥ —काव्यप्रकाश, 8/1

2 नाट्यशास्त्र, 17/95

3 दोषाः विपत्तये यत्र गुणाः सम्पत्तये यथा —काव्यादर्श, 3/124.

4 काव्यशोभायाः कर्तारो धर्मा गुणाः । —काव्यालंकारसूत्रवृत्ति

5 रसस्याङ्गित्वमाप्तस्य धर्माः शौर्यादयो यथा । गुणाः —साहित्यदर्पण, 8/1

6 नाट्यशास्त्र, 17/99

7 प्रसादवत् प्रसिद्धार्थमिन्दोरिन्दीवरद्युति ।

लक्ष्म लक्ष्मी तनोतीति प्रतीतिसुभगं वचः ॥ —काव्यादर्श, 1/45

तुरन्त ही इस प्रकार हृदय में व्याप्त हो जाता है जिस प्रकार शुष्क इन्धन में अग्नि तथा स्वच्छ वस्त्र में जल।¹ विश्वनाथ ने भी मम्मट के सदृश ही प्रसाद गुण का लक्षण किया है।² प्रसाद गुण व्यंजक शब्द आदि के श्रवण मात्र से ही अर्थ की प्रतीति हो जाती है। यह प्रसाद गुण समस्त रसों का धर्म है तथा सभी रस इसके आधार हैं।³

प्रसाद गुण का उदाहरण प्रस्तुत करते हुए कवि कहता है—जिस प्रकार उलूकों की दृष्टि अन्धकार में भी रूप देखती है उसी प्रकार दुर्जनों की बुद्धि निन्दित कार्य में अत्यन्त निपुण होती है।⁴ इसी प्रकार दूसरों के गुणों पर पर्दा डालने वाले दुर्जनों की नीचता और भी अधिक बढ़ जाती है। क्योंकि चन्द्रमा की किरणों को छिपाने वाले मेघों की कालिमा में वृद्धि हो जाती है।⁵ इसके अतिरिक्त कवि द्वारा वर्णित आकाशवाणी प्रसंग में प्रसाद गुण का उल्लेख मिलता है।⁶

भरत के अनुसार माधुर्य गुण वहाँ होता है जहाँ वाक्य को बहुत बार सुना अथवा पुनः पुनः कहा जाय फिर भी वह श्रोता को उत्तेजित नहीं करता।⁷ दण्डी के मतानुसार रसयुक्त वर्ण्य विषयों को ही मधुर कहा गया है।⁸ चित्त की द्रुति का कारण जो आह्लादकता अर्थात् आनन्दरूपता है वही माधुर्य है और वह शृंगार रस में होता

- 1 शुष्केन्धनाग्निवत् स्वच्छजलवत्सहसैव यः।
व्याप्नोत्यन्यत् प्रसादोऽसौ सर्वत्रविहितस्थितिः॥ —काव्यप्रकाश, 8/71, 72.
- 2 चित्तं व्याप्नोति यः क्षिप्रं शुष्केन्धनमिवानलः।
स प्रसादः समस्तेषु रसेषु रचनासु च॥ —साहित्यदर्पण, 8/8
- 3 श्रुतिमात्रेण शब्दात्तु येनार्थप्रत्ययो भवेत्।
साधारणः समग्राणां स प्रसादो गुणो मतः॥ —काव्यप्रकाश, 8/76
- 4 आर० वी० कृष्णमाचारियर द्वारा संपादित वासवदत्ता, प्रस्तावना श्लोक—7
- 5 आर० वी० कृष्णमाचारियर द्वारा संपादित वासवदत्ता, प्रस्तावना श्लोक—8
- 6 पं० शंकरदेव शास्त्री द्वारा संपादित वासवदत्ता, पृ०—315, 316
- 7 बहुशोयच्छ्रुतं वाक्यं उक्तं वापि पुनः पुनः।
नोद्वेजयति यस्माद्धि तन्माधुर्यमिति स्मृतम्। —नाट्यशास्त्र, 17/102
- 8 मधुरं रसवद् वाचि वस्तुन्यपि रसः स्थितः। —काव्यादर्श, 1/51

है। माधुर्य गुण संभोग शृंगार, करुण रस, विप्रलम्भ शृंगार तथा शान्त रस में क्रमशः उत्कृष्टतर होता जाता है।¹ टवर्ग से भिन्न स्पर्श वर्ण, जो अग्रभाग में अपने-अपने वर्ग के अन्तिम वर्ण से युक्त हों तथा लघु स्वर जिनके मध्य हों ऐसे 'र' तथा 'ण' एवं अल्प समास वाली अथवा मध्य समास वाली रचना माधुर्य गुण की व्यंजक है।² कन्दर्पकेतु जब वासवदत्ता के भवन में प्रविष्ट होकर रमणियों के परस्पर वार्तालाप को सुनता है तब माधुर्य गुण की प्रतीति होती है—

किशोरिके! कारय किशोरप्रत्यवेक्षाम्। तरलिके! तरलय कृष्णागुरुधूपपटलम्।
कर्पूरिके! पाण्डुरय कर्पूरधूलिभिः पयोधरभारम्। मातंगिके मानय मातंगशिशुयाचनाम्।
शशिलेखे! विलिख ललाटपट्टे शशिलेखाम्। केतकिके! संकेतय केतकीमण्डपदोहदम्।
शकुनिके! देहि क्रीडाशकुनिभ्य आहाराम्।³

विविध एवं विचित्र, समास बद्ध पदों से युक्त उदार स्वरों से सम्पन्न रचना ओज गुण युक्त मानी जाती है।⁴ दण्डी की दृष्टि में समास की अधिकता ओज कहलाती है।⁵ मम्मट के शब्दों में दीप्ति रूप चित्त के विस्तार का हेतु ही ओज गुण है। उसकी स्थिति वीर रस में होती है।⁶ ओज गुण वीर रस की अपेक्षा वीभत्स रस में, वीभत्स रस की अपेक्षा रौद्र रस में वृद्धि को प्राप्ति होता है।⁷ वर्गों के प्रथम तथा तृतीय वर्ण के साथ द्वितीय तथा चतुर्थ वर्ण का योग, रेफ से किसी वर्ण का सम्बन्ध,

1 करुणे विप्रलम्भे तच्छान्ते चातिशयान्वितम्। —काव्यप्रकाश, 8/69

2 मूर्ध्नि वर्गान्त्यगाः स्पर्शा अटवर्गा रणौ लघू।
अवृत्तिर्मध्यवृत्तिर्वा माधुर्ये घटना तथा।। —काव्यप्रकाश, 8/74

3 पं० शंकरदेव शास्त्री द्वारा संपादित वासवदत्ता पृ०—249, 250

4 समासवदभिर्विविधेर्विचित्रैश्च पदैर्युतम्।
सा तु स्वरैरुदारैश्च तदोजः परिकीर्त्यये।। —नाट्यशास्त्र, 16/104

5 ओजस्समासभूयस्त्वम्। —काव्यादर्श, 1/80

6 दीप्यात्मविस्तृतेर्हेतुरोजो वीररसस्थिति, —काव्यप्रकाश, 8/69

7 वीभत्सरौद्ररसयोस्तस्याधिक्यं क्रमेण च। —काव्यप्रकाश, 8/70

तुल्यवर्णों का योग, ट आदि, श, ष वर्ण दीर्घ समास तथा विकट रचना ओज गुण के व्यंजक हैं।¹ चिन्तामणि वर्णन, कन्दर्पकेतु वर्णन, सिंह वर्णन, समुद्र वर्णन, तथा श्मशान वर्णन आदि में ओज गुण की प्रतीति होती है। ओज गुण का उदाहरण इस प्रकार है—

यस्य च निशितानाराचजर्जरितमत्तमातंगकुम्भस्थलविगलितनिस्तलमुक्ता—
—फलदन्तुरितपरिसरे, पतत्पत्ररथे, रक्तवारिसमुड्डयमानद्विरदपदकच्छपेपिल्संतुत्पल—
पुण्डरीके वाहिनीशतसमाकुले, नृत्यत्कबन्धबन्धुरे, सुरसुन्दरी समागमोत्सुकभटाहङ्कार—
भाषणरवभीषणे, सागर इव समरशिरसि, भिन्नपदातिकरितुरगरुधिरार्द्रोजयलक्ष्मी—
पादालक्तकरागरंजित इव खंगो रराज।²

इतिवृत्त और चित्रणों में तालमेल—

एक कृति को दूसरी कृति से भिन्न करने वाले तीन तत्त्व हैं—कथावस्तु, पात्र एवं रस। किन्तु इन भेदक तत्त्वों में भी परस्पर तालमेल अवश्य होना चाहिये। अव्यवस्थित कथानक, निरुद्देश्य पात्र एवं नीरस रचना सहृदयों को आकर्षित करने में सफल नहीं हो सकती। यदि पात्र कथानक को अग्रसर नहीं कर रहे हैं कथानक की दृष्टि से उनका चित्रण सफल नहीं सकता। वस्तुतः ये सभी भेदक तत्त्व परस्पर अन्योन्याश्रित हैं। व्यवस्थित कथानक में उत्कृष्ट ढंग से पात्रों का चित्रण करने पर ही उसके पठन तथा श्रवण से सहृदय व्यक्ति पात्रों के साथ तादात्म्य स्थापित करके रस का अनुभव करता है।

1 योग आद्यतृतीयाभ्यामन्त्ययो रेण तुल्ययोः।

टादि शषौ वृत्तिदैर्घ्यं गुम्फ उद्धत ओजसि॥ —काव्यप्रकाश, 8/75

2 आर० वी० कृष्णमाचारियर द्वारा संपादित वासवदत्ता, पृ०—55, 56.

प्र० मानसिंह ने दो प्रकार की चरित्र-चित्रण विधियों का उल्लेख किया हैं—प्रथम प्रत्यक्ष अथवा विश्लेषण सम्बन्धी, द्वितीय अप्रत्यक्ष अथवा नाटकीय। प्रथम प्रकार के चित्रण में कवि अपने चरित्रों का बाहरी चित्रण करता है, उनकी लालसा, उद्देश्यों, विचारों तथा भावनाओं की समालोचना करता है, व्याख्या करता है, टिप्पणी करता है तथा प्रायः आधिकारिक निर्णय को उन पर लागू कर देता है। नाटकीय चित्रण में कवि स्वयं रचना का एक भाग होता है। उसके पात्र अपने संवादों तथा कार्यों के द्वारा स्वयं को प्रकट करते हैं। वे अपने चित्रण को कथा के दूसरे पात्रों की टिप्पणियों तथा उनके निर्णयों के द्वारा पुष्ट करते हैं। सुबन्धु ने मुख्य रूप से विश्लेषणात्मक पद्धति को अंगीकार किया है। सुबन्धु स्वयं अपने पात्रों की विशेषताओं का वर्णन करते हैं, उनके कार्यों की व्याख्या करते हैं, पात्रों पर टिप्पणी करते हैं। जिसके परिणामस्वरूप पात्रों को स्वयं ही स्वयं को प्रकट करने की थोड़ी स्वतन्त्रता ही रहती है। इस दृष्टि से कन्दर्पकेतु का वासवदत्ता को खोजते समय किया गया विलाप महत्त्वपूर्ण है; जहाँ वह अपने चरित्र को उद्घाटित करता है। मकरन्द द्वारा कन्दर्पकेतु को दिया गया उपदेश उसकी निष्ठा, समर्पण, विवेकशीलता तथा बुद्धिमत्ता का परिचायक है। वासवदत्ता स्वयं कन्दर्पकेतु को मुनि के शाप दिये जाने पर पाषाण प्रतिमा बन जाने के विषय में बताती है। दूसरे पात्रों के द्वारा चरित्रों को पुष्ट किये जाने का उदाहरण वासवदत्ता के स्वप्न तथा उसकी सखी कलावती द्वारा नायक के समक्ष वासवदत्ता की दशा के वर्णन में मिलता है। इसके अतिरिक्त कवि ने स्वयं ही पात्रों का विश्लेषण किया है।¹

¹ Subandhu And Dandin : Their Works, Chapter-4, page-182

गद्यकार सुबन्धु अपनी कथा को सुखान्त बनाना चाहते थे। अतः उन्होंने परिस्थितियों तथा पात्रों को अपने निर्देशानुसार ही प्रवृत्त किया है। कवि ने कथा के आरम्भ में ही नायक के पिता राजा चिन्तामणि तथा नायक की विविध उपमानों द्वारा प्रशंसा की है। जिससे उनके पराक्रम, त्याग तथा दानशीलता इत्यादि गुणों का ज्ञान होता है। यदि कवि ने इन वर्णनों को कथा में प्रस्तुत न किया होता तो नायक के विषय में अल्प सामग्री ही प्राप्त होती तथा वह केवल कामपीड़ित युवक के रूप में ही प्रस्तुत होता। किन्तु कथाकार द्वारा किया गया नायक का वर्णन उसके चरित्र को स्पष्ट करने के लिये आवश्यक है। राजा चिन्तामणि का वर्णन भी इस दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। व्यावहारिक रूप से यह देखा जाता है कि माता पिता के व्यक्तित्व का प्रभाव किसी न किसी रूप में सन्तान पर भी पड़ता है। अतः कवि द्वारा किया गया चिन्तामणि का विवरण नायक के चित्रण को सहयोग प्रदान करता है। यद्यपि कवि ने अन्यत्र कहीं भी यह उल्लेख नहीं किया कि पुत्र के गृहत्याग के पश्चात् चिन्तामणि की क्या दशा हुई अथवा उसे खोजने हेतु उसने क्या प्रयास किये तथापि कवि द्वारा किया गया चिन्तामणि का विवरण निरर्थक नहीं कहा जा सकता।

नायक कन्दर्पकेतु स्वप्न में नायिका वासवदत्ता को देखकर उस पर मोहित हो जाता है। यह पूर्वानुराग दशा है। कथाकार की यह योजना इस दृष्टि से सार्थक है कि उन्होंने अपनी कथा में विप्रलम्भ शृंगार के द्वारा ही संयोग शृंगार को पुष्ट किया स्वप्न दर्शन के पश्चात् ही नायक नायिका के प्रेमवश गृहत्याग कर उसे खोजने के लिये निकलता है। इससे नायक का नायिका के प्रति प्रगाढ़ प्रेम प्रकट होता है। यदि कवि नायिका का प्रत्यक्ष दर्शन करा देता तो स्थिति भिन्न होती। इस स्वप्न योजना

के द्वारा ही आगे के घटनाचक्र को सहयोग प्राप्त होता है।

कन्दर्पकेतु के स्वप्न में वासवदत्ता के दर्शनों के पश्चात् उसके एकान्त निवास के समय मित्र मकरन्द द्वारा दिया गया उपदेश मकरन्द की नायक के प्रति सच्ची मित्रता तथा निष्ठा का द्योतक है। यद्यपि कन्दर्पकेतु यह कहकर उसके उपदेश को स्वीकार नहीं करता कि यह उपदेश देने का अवसर नहीं है। मेरी इन्द्रियों मेरे वश में नहीं हैं।¹ किन्तु कवि द्वारा वर्णित यह प्रसंग जहाँ मकरन्द के चरित्र को प्रकट करता है वहीं कन्दर्पकेतु के वासवदत्ता के प्रति उत्कट अनुराग का भी परिचायक है।

कथाकार द्वारा वर्णित शुक, सारिका तथा तमालिका नामक पात्रों की योजना भी महत्त्वपूर्ण है। इन पात्रों के द्वारा ही नायक को नायिका के विषय में समाचार ज्ञात होता है। तमालिका नामक सारिका से वासवदत्ता के स्वयं के प्रति अनुराग को जानकर कन्दर्पकेतु का प्रेम भी पुष्ट हो जाता है। इन पात्रों की सहायता के बिना नायक तथा उसका मित्र निरुद्देश्य ही भटकते रहते। यदि शुक-सारिका का वृत्तान्त कवि ने कथा में प्रस्तुत न किया होता तो सम्भवतः नायिका को खोजने में नायक को अधिक समय लग जाता तथा वासवदत्ता का विवाह अन्यत्र हो जाता। इस प्रकार कवि की यह योजना सार्थक ही है।

राजा शृंगारशेखर, रानी अनंगवती तथा कुसुमपुर नगर का विवरण इनके चरित्रों को प्रकाशित करता है। कुसुमपुर नगर का वर्णन राजा-शृंगारशेखर को उत्तम शासक के रूप में चित्रित करता है।

1 पं० शंकरदेव शास्त्री द्वारा संपादित वासवदत्ता पृ० - 75

कवि कृत शाप-योजना भी प्रासंगिक है। सामान्यतः यह देखा जाता है कि कवि अपनी कृतियों में नायक तथा नायिका के अतिरिक्त प्रतिनायक को भी सशक्त पात्र के रूप में प्रस्तुत करता है। किन्तु कथाकार ने किसी प्रतिनायक को उपस्थित न करके परिस्थितियों को ही प्रतिनायक की भाँति प्रस्तुत कर दिया है। नायक तथा नायिका के गृहत्याग के पश्चात् ऐसा लगता है कि कथा समाप्ति की ओर ही है किन्तु पुनः नायक तथा नायिका के पृथक् हो जाने से कथा में उत्सुकता उत्पन्न हो जाती है। कथा के अन्त में इस शाप के विषय में स्वयं वासवदत्ता कन्दर्पकेतु को बताती है कि किस प्रकार उसे देखकर प्राप्त करने की इच्छा से परस्पर दो किरात सेनाओं में युद्ध हुआ जिससे परिणामस्वरूप समीप स्थित मुनि का आश्रम नष्ट-भ्रष्ट हो गया और मुनि ने उसे पाषाण प्रतिमा बन जाने का शाप दे दिया। किन्तु जब उन्होंने उसे दुःखी देखा तो उन्होंने शाप का परिहार कर दिया कि प्रियतम का स्पर्श होने पर पुनः शरीर धारण कर लेगी। इस स्थिति के स्पष्ट होने तक नायक के विलाप तथा इधर-उधर भटकने का वर्णन किया गया है। इस सम्पूर्ण वर्णन के समय यह उत्सुकता बनी रहती है कि नायिका कहाँ गयी? इसके अतिरिक्त इस प्रसंग से नायक के चरित्र पर तो प्रकाश पड़ता ही है, साथ ही उसके नायिका के प्रति अगाध प्रेम का भी परिचय प्राप्त होता है। इस प्रेम के कारण ही वह वासवदत्ता के विरह में आत्मत्याग करने को उद्यत हो जाता है।

आकाशवाणी प्रसंग कवि की एक अन्य सार्थक योजना है। वासवदत्ता के विरह में व्याकुल हुए तथा आत्मोत्सर्ग के लिये उद्यत नायक को रोकना आवश्यक था। अतः कवि ने आकाशवाणी के द्वारा नायक के हृदय में पुनर्मिलन की आशा को जाग्रत

किया है। इस स्थिति में यदि कवि नायिका को ही उपस्थित करा देता तो शाप-योजना में अधिक रोचकता नहीं होती। किन्तु आकाशवाणी के द्वारा कवि ने नायक को सान्त्वना दी है। जिससे शाप प्रसंग भी पुष्ट हो जाता है।

प्रस्तुत विवरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि सुबन्धु ने सप्रयास इतिवृत्त तथा चित्रणों में सामंजस्य उपस्थित किया है।

भाषा मीमांसा—

सुबन्धु के पास शब्दों का अगाध भण्डार है। शब्दों के चुनाव में कवि ने अपने कौशल को प्रदर्शित किया है। उनकी कथा भाषा शिल्प की दृष्टि से अत्यन्त सुदृढ़ है। कवि ने वर्णन प्रसंगों के अनुकूल भाषा का प्रयोग किया है। जहाँ गद्यकार ने रुक्ष विषयों का वर्णन किया है वहाँ क्लिष्ट पदावली के दर्शन होते हैं तथा सौन्दर्यपरक वर्णनों में कवि ने मधुर शब्दावली का प्रयोग किया है। इसी प्रकार पात्रों के परस्पर संवाद करते समय सरल तथा समासरहित भाषा प्रयुक्त हुई है। कवि की भाषा प्रवाहपूर्ण है—

.....कतिपयदिवसप्रसूतकुक्कुटीकुटीकृतकुटजकोटरेण, चटकसंचार्यमाण—
चटुलवाचाटचाटकैरक्रियमाणचाटुना, सहचरीसहचरणचंचुरचकोरचंचुना, शैलेयसुगन्धित—
शिलातसुखशयितशशशिशुराशिना, शेफालिकाशिफाविवरविस्रब्धविवर्तमानगौधेरराशिना.....¹

त्रिविध गद्य का प्रयोग कथाकार की भाषा का एक अन्य वैशिष्ट्य है। मुक्तक गद्य समास रहित होता है। मुक्तक गद्य का उदाहरण कवि द्वारा प्रयुक्त कथोपकथनों में प्राप्त होता है—

1 पं० शंकरदेव शास्त्री द्वारा संपादित वासवदत्ता, पृ०-282, 283

हा प्रिये! वासवदत्ते देहि में दर्शनम्। कृतं परिहासेन। अन्तर्हिताऽसि। त्वत्कृते यानि दुखान्यनुभूतानि तेषां त्वमेव प्रमाणम्। हा प्रियसखे मकरन्द! पश्य मे दैवदुर्विलसितम्। किं पूर्वं मया कृतमवदातं कर्म। अहो दुर्विपाका निर्यातः।¹

दीर्घसमास युक्त उत्कलिकाप्राया गद्य के प्रयोग में सुबन्धु दक्ष हैं—

यत्र च सुरासुरमौलिमालालाक्षितचरणारविन्दा, शुम्भनिशुम्भ
महासुरबलमहावनदावज्वाला, महिषासुरगिरिवरवज्रधारा, प्रणयकलहप्रणतगंगाधर
जटाजूटकोटिस्थलितजाह्नवीजलधाराधौतपादपद्मा भगवती कात्यायनी चण्डाभिधाना
स्वयं निवसति। यस्य च परिसरे सुरासुरमज्जनगविनिर्गतघर्मद्रवधारा, धरातल—
सगरसुतशतसुरनगरसमारोहणपुण्यरज्जुनिश्रेणिका ऐरावतकपोलकषणकम्पिततटगत—
हरिचन्दनस्यन्दमानरससुरभितसलिला, सलीलसुरसुन्दरी नितम्बबिम्बादृतितरलिततरंगा,
स्नानावतीर्णसप्तर्षिमण्डलविमलजटाटवीपरिमलपुण्यवेणिः, एणतिलकमुकुटविकटजटाजूट
कुहरभ्रान्तिजनितसंस्कारेवाद्यापि कुटिलावर्ता, धरणीव सार्वभौमकरस्पर्शोप भोगक्षमा,
जलदकालसरसीवग्न्धपरिभ्रमद्भ्रमरमालानुमीयमान— जलमूलमग्नकुमुदपुण्डरीका,²

उत्कलिकाप्राय गद्य से युक्त एक अन्य उदाहरण इस प्रकार है—

ततोऽनेकनल्वशतमध्वानं गत्वा तेनागस्त्यवचनसंहतब्रह्माण्ड खण्डगतशिखरसहस्रः,
कन्दरान्तराललतागृहसुप्तप्रबुद्धविद्याधरमिथुनगीताकर्णनसुखितवमरीगणमारणोत्सुकशबर
कुलसम्बाधकच्छतटः, कटकतटगतकरिकराकृष्टभग्नहरिचन्दनस्यन्दमानरसामोदहरगन्ध—
वाहशिशिरितशिलातलः, सुदूरपतनभग्नतालफलरसार्द्रकरतलास्वादनोत्सुकशाखामृगकदम्बकः,

1 पं० शंकरदेव शास्त्री द्वारा संपादित वासवदत्ता, पृ०—277

2 पं० शंकरदेव शास्त्री द्वारा संपादित वासवदत्ता, पृ०—112—115

प्रलम्बमाननिर्झरोपान्तोपविष्टजीवजीवकमिथुनलेलिह्यमानविविधफलरसामोदसुरभितपरिसरः
सरभसकेसरिसहस्रखरनखरधाराविदारितमत्तमातंगकुम्भस्थलविगलितस्थूलमुक्ताफलशबल
शिखरतया शिखरावलग्नं तारागणमिवोद्वहन, सुग्रीव इव ऋक्षगवयशरभकेसरि—
कुमुदपनससेव्यमानपादच्छायः,¹

समुद्र वर्णन में भी उत्कलिकाप्राय गद्य का प्रयोग किया गया है—

पुचरविरचितविविधोटजकुटजरुद्धोपकण्ठेन, सोत्कण्ठभृंगराजरसितसुन्दरसुन्दरी—
वनेन, विततवेत्रव्रततिव्रातावरणतरुणवरुणस्कन्धसन्नद्धभृंगरोलेन, गोलाङ्गूलभग्न—
मधुपटलरसासारशीकरसिक्ततरुतलेन, प्रवृद्धनारिकेलकंकेलिराजतालीतालतमालहिन्ताल,
पूगपुन्नागकेसरनागकेसरवनेन घनसारमल्लिका केतकीकोविदारमन्दार जम्बूबीजपूर—
जम्बीरगुल्मगहनेन, पवनसंवाहितानेकपनसविटपिविटपेन, अप्रत्यूहदात्यूह कुहरितभरित—
नदीतटनिकुजपुजेन, पुंजिताकुण्ठकण्ठकूलकण्ठाध्यासितसहकारपल्लेवन, चपलकुलाय—
कुक्कुटकुटुम्बाध्युषितोत्कटानेकविटपेन कोरिनिकुरम्बरोमाञ्चितकुरबकराजिना,
रक्ताशोकपल्लवलावण्यविलिप्यमानादशादिशा, प्रविकसितकेसरकुसुमकेसररजोविसरधूसरि
—तपरिसरेण, परागपुञ्जपिञ्जरसिन्दुवारमञ्जरीरज्यमानमधुकरमञ्जुशिञ्जितजनित—
जनमुदा,.....²

इसके अतिरिक्त चिन्तामणि तथा रेवा नदी आदि के वर्णन में इस गद्यविशेष
का प्रयोग दृष्टिगोचर होता है।

1 पं० शंकरदेव शास्त्री द्वारा संपादित वासवदत्ता, पृ०-76-78

2 पं० शंकरदेव शास्त्री द्वारा संपादित, वासवदत्ता, पृ०-279-281

छोटे-छोटे समासों से युक्त तथा मनोहर पदबन्ध युक्त चूर्णक गद्य का प्रयोग कवि ने वासवदत्ता के वर्णन में किया है।

व्याकरणेनेव सरक्तपादेन महाभारतेनेव सुपर्वणा रामायणेनेव सुन्दरकाण्डचारुणा जंघायुगलेन विराजमानाम्, छन्दोविचितिमिव भ्राजमानतनुमध्याम्, नक्षत्रविद्यामिव गणनीयहस्तश्रवणाम्, न्यायस्थितिमिवोद्योतकरस्वरूपाम्, बौद्धसंगितिरिवालंकारभूषिताम्, उपनिषदमिवानन्दमेकमुद्द्योतयन्तीम् द्विजकुलस्थितिमिव चारुचरणाम्, विन्ध्यगिरि-श्रियमिवसुनितम्बाम्, तारामिव गुरुकलत्रतयोपशोभिताम्, शतकोटियष्टि-मिवमुष्टिग्राह्यमध्याम्, प्रियंगुश्यामासखीमिव प्रियदर्शनाम्, ब्रह्मदत्तमहिषीमिव सोमप्रभाम्, दिग्गजकरेणुकामिवानुपमानम्, रेवामिव नर्मदाम्। वेलामिव तमालपत्रप्रसाधिताम्, अश्वतरकन्यामिव मदालसां वासवदत्तां ददर्श।¹

चरित्र-चित्रण विधि-

कथानक अपने फल की ओर पात्रों अथवा चरित्रों की सहायता से अग्रसर होता है। अतः दृश्य तथा श्रव्य दोनों प्रकार के काव्य में पात्रों का महत्वपूर्ण स्थान माना गया है। धनंजय के अनुसार रूपकों को एक दूसरे से पृथक् करने वाले तीन तत्त्व हैं- वस्तु, नेता तथा रस।² यहाँ धनंजय का 'रूपक' से तात्पर्य नाट्य भेदों से है। किन्तु प्रायः काव्य की प्रत्येक विधा में रची गयी कृतियों को इन तीन तत्त्वों के आधार पर पृथक् किया जा सकता है। दूसरे भेदक तत्त्व 'नेता' के अन्तर्गत नायक, नायिका, प्रतिनायक तथा अन्य सभी पात्रों का समावेश होता है। इन पात्रों के

1 पं० शंकरदेव शास्त्री द्वारा संपादित, वासवदत्ता, पृ०-252-255

2 वस्तु नेता रसस्तेषां भेदकः-दशरूपक, 1/11

क्रिया-कलापों से ही कथानक आगे बढ़ता है तथा इन के सुख-दुःख का अनुभव करके ही सहृदय रस की अनुभूति करता है।

अरस्तु ने चरित्र संबंधी चार महत्त्वपूर्ण तथ्यों का उल्लेख किया है। प्रथम तथा सबसे महत्त्वपूर्ण तथ्य यह है कि चरित्र भद्र होना चाहिये। नैतिक उद्देश्य का द्योतन करने वाला कोई भी वक्तव्य अथवा कार्य व्यापार चरित्र का व्यंजक होगा। यदि उद्देश्य भद्र है तो चरित्र भी भद्र होगा। अरस्तु के विचारानुसार यह गुण प्रत्येक वर्ग के चरित्र में सम्भव है चाहे वह स्त्री हो अथवा दास। द्वितीय तथ्य है-चरित्र में औचित्य का समावेश। पुरुषों में एक विशेष प्रकार का शौर्य होता है परन्तु नारी चरित्र में शौर्य अथवा नैतिक विवेक शून्य चातुर्य का समावेश अनुचित होता है। तृतीय बात यह है कि चरित्र जीवन के अनुकूल होना चाहिये। चतुर्थ तथ्य यह है कि चरित्र में एकरूपता होनी चाहिये। यह सम्भव है कि मूल अनुकार्य के चरित्र में अनेकरूपता हो, किन्तु यह अनेकरूपता ही एकरूप होनी चाहिये।¹

नायक—

नायक शब्द की निष्पत्ति 'नी' धातु से होती है जिसका अर्थ है ले जाने वाला। कथावस्तु को फलागम तक ले जाने के कारण इसे नायक कहा जाता है। नायक का अर्थ मार्गदर्शक, अग्रणी, संवाहक, मुख्य स्वामी, प्रभु, गणमान्य व्यक्ति, सेनानायक आदि है।² नायक कथा का केन्द्रबिन्दु तथा महत्त्वपूर्ण कार्यों का करने वाला होता है।

1 अरस्तु का काव्यशास्त्र, अनुवाद, पृ० 40

2 क. वामन शिवराम आपटे कृत संस्कृत हिन्दी कोश, पृ०-519

ख शब्दकल्पद्रुम, द्वितीय काण्ड, पृ०-863

ग. A Sanskrit English Dictionary by Sir M. Monier Williams, page- 536

नायक को सर्वगुण सम्पन्न होना चाहिये।¹ धनंजय के अनुसार नायक विनम्र, मधुर, त्यागी, चतुर, प्रिय बोलने वाला, लोगों को प्रसन्न करने वाला, पवित्र मन वाला, वार्तालाप में कुशल, कुलीनवंशोत्पन्न, मन आदि से स्थिर, युवा, बुद्धि, उत्साह, स्मृति, प्रज्ञा, कला तथा मान से युक्त, शूर, दृढ़, तेजस्वी शास्त्रज्ञाता एवं धार्मिक होता है।² शिंगभूपाल³ तथा विश्वनाथ⁴ आदि ने भी नायक के विभिन्न आवश्यक गुणों की चर्चा की है।

भरत ने पुरुषों तथा स्त्रियों की प्रकृति को उत्तम, मध्यम तथा अधम—इन तीन श्रेणियों में विभाजित किया है। यह विभाजन गुणों की कमी अथवा अधिकता पर आधारित न होकर गुणों की विशेषता पर आधारित है।

नायक के चार भेद माने गये हैं—धीरललित, धीरप्रशान्त, धीरोदात्त एवं धीरोद्धत। प्रायः सभी नाट्यशास्त्रीय आचार्यों ने भरत का अनुकरण करते हुए नायक के चार भेद स्वीकार किये हैं।⁵ अपनी प्रशंसा न करने वाला, क्षमायुक्त, अति गम्भीर स्वभाव वाला, महासत्त्व, स्थिर प्रकृति, विनय से प्रच्छन्न गर्व रखने वाला तथा दृढ़व्रत

1 क. तेषु सर्वगुणोपेतः कथाव्यापी च नायकः। —सरस्वती कण्ठाभरण, 5/103

ख. समग्रगुणः कथाव्यापी नायकः।। —काव्यानुशासन, 7, सूत्र-1

2 नेता विनीतो मधुरस्त्यागी दक्षः प्रियंवदः।

रक्तलोक शुचिर्वाग्मी रूढवश स्थिरो युवा।।

बुद्धयुत्साहस्मृतिप्रज्ञाकलामानसमन्वितः।

शूरो दृढश्च तेजस्वी शास्त्रचक्षुश्च धार्मिकः।। —दशरूपक, 2/1, 2

3 आलम्बनं मतं तत्र नायको गुणवान् पुमान्।

तद्गुणास्तु महाभाग्यमौदार्यं स्थैर्यदक्षते।।

औज्ज्वल्य धार्मिकत्वं च कुलीनत्वं च वाग्मिता।

कृतज्ञत्वं नयज्ञतवं शुचिता मानशीलता।।

तेजस्विता कलावत्त्वं प्रजारंजकतादयः।

एते साधारणाः प्रोक्ता नायकस्य गुणबैधैः।। —रसार्णव सुधाकर, 1/61-63

4 त्यागी कृती कुलीनः सुश्रीको रूपयौवनोत्साही।

दक्षोऽनुरक्तलोकस्तेजोवैदग्ध्यशीलवान्नेता।। —साहित्यदर्पण, 3/30

5 क. भदैश्चतुर्धा ललितशान्तोदात्तोद्धतैरयम्। —दशरूपक, 2/3

ख. धीरोदात्तो धीरोद्धतस्तथा धीरललितश्च।

धीरप्रशान्त इत्ययमुक्तः प्रथमश्चतुर्भेदः।। —साहित्यदर्पण, 3/31.

पुरुष धीरोदात्त कहलाता है।¹ धीरोद्धत नायक मायावी, प्रचण्ड, चपल, घमण्डी, शूर अपनी प्रशंसा स्वयं करने वाला होता है।² निश्चित, कोमल स्वभाव वाला तथा सदा नृत्यगीतादि कलाओं में रत नायक धीरललित कहलाता है।³ नायक के सामान्य गुणों से युक्त धीरशान्त नायक होता है।⁴

इन चार भेदों में से प्रत्येक को पुनः चार भेदों में विभक्त किया गया है—दक्षिण, धृष्ट, अनुकूल तथा शठ। इनमें से अनेक पत्नियों के प्रति समान अनुराग रखने वाले को दक्षिण नायक कहते हैं।⁵ जो अपराध करके भी निशंक रहे, जो लज्जित न हो तथा दोष ज्ञात हो जाने पर भी मिथ्याभाषण करता रहे वह धृष्ट नायक है।⁶ एक ही नायिका पर अनुरक्त नायक अनुकूल नायक की श्रेणी में आता है।⁷ जो अनुरक्त किसी अन्य नायिका पर हो किन्तु प्रकृत नायिका में भी बाहरी अनुराग प्रदर्शित करे तथा प्रच्छन्न रूप से उसका अप्रिय करे वह शठ नायक कहलाता है।⁸

1 क. दशरूपक, 2/4, 5
ख. साहित्यदर्पण, 3/32

2 क. दशरूपक, 2/5,6
ख. साहित्यदर्पण, 3/33

3 क. दशरूपक, 2/3
ख. साहित्यदर्पण, 3/34

4 क. दशरूपक, 2/4
ख. साहित्यदर्पण, 3/34

5 क. दशरूपक, 2/7
ख. साहित्यदर्पण, 3/35

6 क. दशरूपक, 2/7
ख. साहित्यदर्पण, 3/36

7 क. दशरूपक, 2/7
ख. साहित्यदर्पण, 3/37

8 क. दशरूपक, 2/7
ख. साहित्यदर्पण, 3/37

‘वासवदत्ता’ कथा का नायक कन्दर्पकेतु है। कथा के अध्ययन से यह स्पष्ट हो जाता है कि वह ‘धीरोदात्त’ कोटि का नायक है। कथा में कहीं भी ऐसा कोई वर्णन उपलब्ध नहीं है जहाँ कन्दर्पकेतु ने अपनी प्रशंसा स्वयं कही हो। उसका गर्व शत्रुओं का मर्दन करने वाला है। उसके विनयी होने का प्रमाण इस बात से मिलता है कि वासवदत्ता को लतागृह में न पाकर वह स्वयं को दोषी मानते हुए कहता है क्या मैंने गुरुओं तथा ब्राह्मणों का अनादर किया था।¹ कवि ने कन्दर्पकेतु को समदृष्टि कहा है।² अतः स्पष्ट है कि वह स्थिरप्रकृति का तथा महासत्त्व है। नायक के अन्य आवश्यक गुण भी उसके चरित्र में प्राप्त होते हैं। वह राजा चिन्तामणि का पुत्र है। जिससे उसके कुलीन वंशी होने की पुष्टि होती है। वह मधुरभाषी, युवा, चौंसठ कलाओं से युक्त³ है। उसके द्वारा समस्त शत्रुओं का वध कर देने से उसका पराक्रम तथा उत्साह द्योतित होता है। कवि ने कन्दर्पकेतु को शुभ मध्यभाग वाले शरत्कालीन मेघ के समान निर्मल अन्तःकरण सम्पन्न कहा है—

शरन्मेघ इव अवदातहृदयः।⁴

एक अन्य स्थल पर कवि ने उसे स्वाश्रित जनों को आनन्दित करने वाले के रूप में वर्णित किया है।⁵ वह धार्मिक है। वह ब्राह्मण, गुरु तथा गौ की सेवा करने वाला तथा यज्ञ करने वाला है।⁶ इसके अतिरिक्त वह अनुकूल नायक की श्रेणी में भी आता है क्योंकि वह प्रारम्भ से लेकर अन्त तक वासवदत्ता के प्रति ही अनुरक्त रहता है।

1 पं० शंकरदेव शास्त्री द्वारा संपादित वासवदत्ता, पृ०-28

2 पं० शंकरदेव शास्त्री द्वारा संपादित वासवदत्ता, पृ०-278

3 पं० शंकरदेव शास्त्री द्वारा संपादित वासवदत्ता, पृ०-32, 33

4 आर० वी० कृष्णमाचारियर द्वारा संपादित वासवदत्ता, पृ०-45

5 आर० वी० कृष्णमाचारियर द्वारा संपादित वासवदत्ता, पृ०-43

6 आर० वी० कृष्णमाचारियर द्वारा संपादित वासवदत्ता, पृ०-326

नायिका—

नायिका नायक की पत्नी अथवा प्रिया होती है। नाट्यदर्पणकार के अनुसार—

नायिका, कुलजा, दिव्या, क्षत्रियाँ पण्यकानिनी।

अन्तिमा ललितोदात्ता, पूर्वोदात्ता, त्रिधा परे।।¹

धनंजय के शब्दों में नायिका नायक के सामान्य गुणों से युक्त होती है। यह तीन प्रकार की होती है—स्वकीया, अन्या अथवा परकीया तथा साधारण स्त्री।²

स्वकीया नायिका लज्जा, शील, विनय, सरलता आदि गुणों से युक्त गृहकार्यों में दक्ष होती है।³ वह सुख—दुःख में पति का साथ नहीं छोड़ती।⁴ उसके मुग्धा, मध्या तथा प्रगल्भा ये तीन भेद होते हैं। मुग्धा नायिका में अवस्था तथा काम दोनों का प्रथम आविर्भाव होता है। वह रति से वाम रहती है तथा नायक से मानादि में भी कोमल रहती है।⁵ मुग्धा नायिका के लक्षणों का वर्णन इस प्रकार है—

मुग्धा नववयः कामा रतौ वामा मृदुः क्रुधि।।

यतते रतचेष्टायां गूढं लज्जामनोहरम्।

कृतापराधे दयिते वीक्षते रुदती सती।।

अप्रियं वा प्रियं वापि न किंचदपि भाषते।⁶

1 नाट्यदर्पण, चतुर्थ विचार, पृ०—159

2 क. स्वान्या साधारणस्त्रीति तद्गुणा नायिका त्रिधा। —दशरूपक, 2/15

ख. साहित्यदर्पण, 3/56

ग. रसार्णवसुधाकर, 1/94

3 क. दशरूपक, 2/15

ख. साहित्यदर्पण, 3/57

4 रसार्णव सुधाकर, 1/95

5 मुग्धा नववयः कामा रतौ वामा मृदुः क्रुधि। —दशरूपक, 2/16

6 रसार्णव सुधाकर, 1/96—98.

मध्या नायिका यौवन, काम से पूर्ण तथा सुरत क्रीड़ा को मोह के अन्त तक सहन कर सकती है।¹ नाट्यदर्पण में मुग्धा नायिका से अधिक मानवती तथा मूर्च्छान्त सुख वाली स्त्री को मध्या कहा गया है। विश्वनाथ ने मध्या नायिका के पांच भेदों—विचित्रसुरता, प्ररुढस्मरा, प्ररुढयौवना, ईषत्प्रगल्भवचना तथा मध्यमव्रीडिता का वर्णन किया है।²

प्रगल्भा नायिका तथा विकसित हाव, भाव वाली होती है।³ मध्या तथा प्रगल्भा नायिका के नायक से मानादि करने के आधार पर धीरा, धीराधीरा तथा अधीरा ये भेद तथा पुनः ज्येष्ठा व कनिष्ठा ये दो भेद होते हैं।

नायिका का दूसरा भेद अन्य स्त्री अर्थात् परकीया है। यह दो प्रकार की होती है—कन्या अर्थात् किसी की अविवाहिता पुत्री तथा अन्य परिणीता।⁴

सामान्य स्त्री गणिका होती है। वह कलाचतुर, प्रगल्भा तथा धूर्त होती है।⁵ धनंजय के शब्दों में जो लोग छिपकर कामतृप्ति करना चाहते हैं, जिनसे सरलतापूर्वक धन प्राप्त किया जा सकता है, जो मूर्ख हैं, स्वतन्त्र हैं, घमण्डी हैं, अथवा नपुसंक हैं, ऐसे व्यक्तियों से गणिका इस तरह व्यवहार करती है जैसे वह उनसे वास्तविक प्रेम करती हो। किन्तु धन के समाप्त होते ही वह उन्हें अपनी माँ के द्वारा घर से निकलवा देती है।⁶ यह रक्ता तथा विरक्ता दो प्रकार की होती है।⁷

1 मध्योद्ययौवनानंगा मोहान्तसुरतक्षमा ॥ —दशरूपक, 2/16

2 मध्या विचित्रसुरता प्ररुढस्मरयौवना।

ईषत्प्रगल्भवचना मध्यमव्रीडिता मता ॥ —साहित्यदर्पण, 3/59

3 दशरूपक, 2/18

4 अन्यस्त्री कन्यकोढा च नान्योढाऽङ्गिरसे क्वचित् ॥ —दशरूपक, 2/20

5 साधारणस्त्री गणिका कलाप्रागल्भधौत्ययुक् ॥ —दशरूपक, 2/21

6 दशरूपक, 2/22

7 एषा स्याद् द्विविधा रक्ता विरक्ता चेदि भेदतः ॥ —रसार्णवसुधाकर, 1/110

ये सभी नायिकायें अवस्था भेद से पुनः आठ प्रकार की होती हैं— स्वाधीन पतिका, वासकसज्जा, विरहोत्कण्ठिता, खण्डिता, कलहान्तरिता, विप्रलब्धा, प्रोषितप्रिया, अभिसारिका।¹

सुबन्धु की गद्यकथा की नायिका 'वासवदत्ता' है जिसके नाम पर कवि ने कथा का नामकरण किया है। सुबन्धु विरचित वासवदत्ता कथा की नायिका वासवदत्ता सर्वथा भिन्न चरित्र है। मात्र नायिका का अभिधान प्राचीन है। सुबन्धु की नायिका वासवदत्ता कुसुमपुर के राजा शृंगारशेखर तथा रानी अनंगवती की पुत्री है। वह अप्रतिम सौन्दर्य युक्त है।

प्रथमतः वह परकीया नायिका के रूप में उपस्थित होती है। पिता के आधीन होने के कारण वह परकीया कन्या के अन्तर्गत आती है क्योंकि वह अविवाहित है। पिता से छिपकर वह कन्दर्पकेतु से प्रेम करती है। इस दृष्टि से भी वह परकीया के अन्तर्गत आती है। किन्तु जब वह नायक के साथ अपने पिता की अनुमति के बिना चली जाती है तब वह नायक के प्रति एकनिष्ठ अनुराग होने से स्वकीया नायिका बन जाती है। वह स्वकीया नायिका के भेद मध्या नायिका की कोटि की नायिका है। नायक को स्वप्न में देखने के पश्चात् उसकी काम पीड़ा अत्यन्त बढ़ जाती है तथा वह मूर्च्छित हो जाती है। यद्यपि कवि ने नायक तथा नायिका के काम-प्रसंग को प्रस्तुत तो नहीं किया है किन्तु पृथक्-पृथक् उनकी काम-दशाओं का वर्णन अवश्य किया है।

1 दशरूपक, 2/23

जिस प्रकार संसार में एक ही नाम के बहुत से व्यक्ति होते हैं, उसी प्रकार साहित्यिक जगत् में एक ही नाम के कई पात्रों का उल्लेख मिलता है। संस्कृत साहित्य में विभिन्न कवियों ने वासवदत्ता नामक स्त्री पात्र की योजना अपनी रचनाओं में की है। पृथक्-पृथक् कवियों के विचारों की भिन्नता के कारण, रचनाओं के उद्देश्य की भिन्नता के कारण जहाँ वासवदत्ता नामक स्त्री-पात्र की चारित्रिक विशेषताएँ एक-दूसरे से भिन्न हैं, वही उनमें समानताएँ हैं।

क्षेमेन्द्र तथा सोमदेव भट्ट की कृतियों में उदयन तथा वासवदत्ता के आख्यान समान रूप से वर्णित है। कथासरित्सागर के अनुसार वासवदत्ता उज्जयिनी के राजा चण्डमहासेन की पुत्री थी। राजा चण्डमहासेन कौशाम्बी के राजा उदयन को अपना जमाता बनाना चाहता था। किन्तु दोनों राज्यों की शत्रुता के कारण यह सम्भव नहीं था, अतः राजा चण्डमहासेन यन्त्र गज के द्वारा उदयन का अपहरण कर लेता है। तथा वत्सराज से अपनी पुत्री वासवदत्ता को गान्धर्व शिक्षा देने के लिये कहता है। धीरे-धीरे वासवदत्ता तथा उदयन परस्पर अनुरक्त हो जाते हैं। वासवदत्ता उदयन के साथ भाग जाती है तथा कौशाम्बी पहुँचकर दोनों का विधि-विधान से विवाह हो जाता है। राजा उदयन अपने चंचल स्वभाव के कारण अन्य स्त्रियों पर भी अनुरक्त हो जाता है। ऐसे अवसरों पर जब राजा उदयन का परस्त्री प्रेम वासवदत्ता के सामने प्रकट होता है। तब वह कुपित हो जाती है। किन्तु राजा के अनुनय-विनय करने पर प्रसन्न हो जाती है। कवि ने वासवदत्ता के चरित्र के रूप में स्त्री के स्वाभिमान किन्तु कोमल दोनों पक्षों का अत्यन्त स्वाभाविक चित्रण किया है। जो अपने पति की अन्य

स्त्री पर आसक्ति देखकर क्रोधित हो जाती है किन्तु पति से अत्यधिक आसक्ति के कारण वह अनुनय-विनय करने पर मान जाती है।

भास ने भी अपने नाटक 'स्वप्नवासवदत्तम्' में वासवदत्ता को उज्जयिनी के राजा महासेन प्रद्योत की पुत्री बताया है। वह राजा उदयन की शिष्या तथा प्रिया के रूप में वर्णित है—

महासेनस्य दुहिता शिष्या देवी चमे प्रिया।¹

वासवदत्ता को कवि ने आदर्श प्रेमिका के रूप में प्रस्तुत किया है। वह उदयन के स्वराज्य प्राप्ति के लिये प्रसन्नतापूर्वक यौगन्धरायण के षड्यन्त्र में भाग लेती है। वासवदत्ता के चरित्र की एक अन्य विशेषता उसका पतिव्रता होना है—

स्वप्नस्यान्ते विबुद्धेन नेत्रविप्रोषिताञ्जनम्।

चरित्रमपि रक्षन्तया दृष्टं दीर्घालकं सुखम्॥²

वासवदत्ता का स्वभाव कोमल है। इस बात की पुष्टि राजा उदयन के इन शब्दों से हो जाती है—

स्मराम्यवन्त्याधिपतेः सुतायाः प्रस्थानकाले स्वजनं स्मरन्त्याः।

वाष्पं प्रवृत्तं नयनान्तलग्नं स्नेहान्ममैवोरसि पातयन्त्याः॥³

किन्तु साथ ही वासवदत्ता वह सहिष्णु भी है। जब जान जाती है कि राजा उदयन, पद्मावती से विवाह कर लेगा तब वह एकान्त में ही अपने भाग्य को उलाहना देती है।

1 स्वप्नवासवदत्तम्, 6/11

2 स्वप्नवासवदत्तम्, 5/10

3 स्वप्नवासवदत्तम्, 5/5

सम्राट् हर्षवर्धन द्वारा रचित नाटिका रत्नावली तथा प्रियदर्शिका दोनों ही कृतियों में वासवदत्ता का उल्लेख प्राप्त होता है, क्योंकि कवि की दोनों रचनाओं का आधार गुणाढ्य कृत बृहत्कथा है। दोनों कृतियों में वासवदत्ता ज्येष्ठा नायिका के रूप में वर्णित है तथा दोनों नाटिकाओं में उसे राजा प्रद्योत की पुत्री बताया गया है। प्रियदर्शिका तथा रत्नावली दोनों में कनिष्ठा नायिका का नायक से समागम वासवदत्ता के माध्यम से ही होता है कवि ने वासवदत्ता को मानिनी स्त्री के रूप में चित्रित किया है। वह राजा का सागरिका के प्रति प्रेम, अभिसरण इत्यादि सहन नहीं कर पाती तथा स्वाभाविक प्रतिक्रिया के वशीभूत वह उससे क्रोधित हो जाती है। राजा के अनुनय करने पर भी उसे क्षमा नहीं करती—

आर्यपुत्र, मम पुनरिदं चित्रफलकं प्रेक्ष्य शीर्षवेदना समुत्पन्ना। तद् गमिष्याम्यहम्।¹

वह सागरिका को बन्दी बनाकर अन्तःपुर के कारागार में डाल देती है। जब अन्तःपुर के दाह का समाचार सुनती है। तो वह राजा से सागरिका को बचाने के लिये कहती है।

आर्यपुत्र, मयात्मनः कृते न भणितम्। एषा खलु मया निर्घृणयेह निगडेन संयमिता सागरिका विपद्यते। तत्तां परित्रायतामार्यपुत्रः।²

रत्नावली तथा प्रियदर्शिका दोनों नाटिकाओं में वासवदत्ता का चरित्र लगभग समान ही है। वस्तुतः जिस प्रकार कई चित्रकारों को किसी एक ही विषय पर चित्र बनाने के लिये दिया जाये तो उनकी प्रस्तुति समान होते हुए भी विविधता से युक्त होगी।

1 रत्नावली, अंक-2, पृ0-86

2 रत्नावली, अंक 4, पृ0 158

इसी प्रकार पृथक्-पृथक् कवियों ने वासवदत्ता के रूप में ऐसे चरित्र की परिकल्पना की है जो अप्रतिम सौन्दर्य की स्वामिनी है। वह राजवंशजा होते हुए भी अन्य स्त्री के प्रति अपने पति की आसक्ति को देखकर सामान्य स्त्री की भाँति क्रोध प्रदर्शित करती है। किन्तु सपत्नी को स्वीकार करना उसके चरित्र की उदात्तता का परिचायक है।¹

अन्य पात्र—

अन्य पात्रों के अन्तर्गत नायक सहायक पात्रों का समावेश होता है। इन्हें गौण पात्र भी कहा जाता है। इन पात्रों के अन्तर्गत पीठमर्द, विट, चेटक तथा विदूषक आते हैं। रस कौस्तुभ में इन पात्रों को नर्मसचिव कहा गया है।² इन पात्रों का कार्य मुख्य पात्रों को भिन्न भिन्न रूप में सहयोग प्रदान करना एवं उनके आदेशों तथा इच्छाओं का पालन करना ही रहता है।

इनमें से 'पीठमर्द' को अनुनायक अथवा उपनायक कहा जाता है।³ क्योंकि यह चतुर, बुद्धिमान, प्रधान नायक की अपेक्षा कुछ कम गुण वाला तथा प्रधान नायक का अनुचर एवं भक्त होता है।⁴ यह प्रासंगिक कथावस्तु का नायक होता है। वह नायक के लिये कुपित स्त्री को प्रसन्न करता है।⁵ भोज के अनुसार अनुनायक का अपना कोई उद्देश्य नहीं होता। यह नायक की सहायता करता है।⁶

1 संस्कृत साहित्य में वासवदत्ता, शोध पत्र-शिल्पी, प्राच्य-प्रज्ञा, शोध-पत्रिका, संस्कृत विभाग, अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय, अलीगढ़, 2002

2 एतेषां नर्म सचिवः कीर्तितश्च चतुर्विधः।

पीठमर्दो विटश्चैव चेटकश्च विदूषकः॥ -वेणीदत्त कृत रसकौस्तुभ, कारिका-62

3 पताकानायकस्तेषामुपनायक उच्यते॥ -भावप्रकाशन, पृ०-93

4 पताकानायकस्त्वन्यः पीठमर्दो विचक्षणः।

तस्यैवानुचरो भक्तः किञ्चिदूनश्च तद्गुणैः॥ -दशरूपक, 2/8

5 क. पीठमर्दस्यास्य पुरतः प्रयोक्ता नायकादिषु

ख. स पीठमर्दो विश्वस्य कुपितस्त्री प्रसादकः॥ -रसार्णवसुधाकर, 1/90

ग. पीठमर्दस्तु विज्ञेयः कुपितस्त्रीप्रसादकः॥ -रसकौस्तुभ, कारिका-63

6 सरस्वतीकण्ठाभरण, 5/11

‘वासवदत्ता’ में नायक कन्दर्पकेतु का मित्र मकरन्द ‘पीठमर्द’ की श्रेणी में आता है। सुबन्धु ने यह उल्लेख नहीं किया है कि वह कन्दर्पकेतु के समान राजपुत्र है अथवा मन्त्री अथवा अन्य कोई। किन्तु वह कन्दर्पकेतु का प्रियमित्र तथा शुभचिन्तक अवश्य है। वह कन्दर्पकेतु के प्रत्येक कार्य में उसका सहयोग देता है। चाहे वह वासवदत्ता को खोजने का अभियान हो अथवा वासवदत्ता के साथ कन्दर्पकेतु के पलायन के पश्चात् कुसुमपुर नगर की सूचना नायक तक पहुँचाने की योजना, मकरन्द प्रत्येक कार्य में, दशा में नायक के आदेशों का पालन करता है तथा सहयोग देता है। वह बुद्धिमान है। अपने मित्र की कामपीड़ित दशा को देखकर वह उसे हितकारक उपदेश देता है एवं विवेकयुक्त आचरण करने को कहता है।

राजा चिन्तामणि नायक कन्दर्पकेतु का पिता है। वह किस नगर अथवा देश का राजा है इसका कवि ने उल्लेख नहीं किया है। किन्तु वह एक पराक्रमी तथा श्रेष्ठ राजा के रूप में वर्णित है। उसके चरणों में समस्त राजा प्रणाम करते हैं। कवि ने उसे नृसिंह, वराह तथा कृष्ण के सदृश बताया है तथा एक स्थल पर उसे विष्णु के समान कहा है—

सागरशायीवानन्तभोगिचूडामणिमरीचिरंजितपादपदमो।¹

राजचिन्तामणि को अनेक सेनाओं का अधिपति, विद्वानों तथा संसार की रक्षा करने वाला, दानी, क्षमाशील, धार्मिक, गम्भीर, पवित्रों में श्रेष्ठ, विषयों में अनासक्त, कर्तव्यपालन करने वाला, उचित मार्ग का अनुगामी, समस्त शिल्पविद्याओं का ज्ञाता,

1 पं० शंकरदेव शास्त्री द्वारा संपादित वासवदत्ता, पृ०-10

ऐश्वर्ययुक्त चित्रित किया गया है। वह राज्य का सुप्रबन्ध करने वाला है। उसने अपने राज्य में एक समान कर व्यवस्था लागू की।

किन्तु कवि ने स्वयं ही चिन्तामणि का वर्णन कर दिया है। वह अन्य पात्रों की भाँति कथा में उपस्थित होकर उसे आगे नहीं बढ़ाता है। नायक के गृह त्याग के पश्चात् चिन्तामणि की क्या दशा होती है अथवा उसे खोजने के लिये वह क्या उपाय करता है इसका कोई संकेत कथा में उपलब्ध नहीं होता। वस्तुतः कवि ने चिन्तामणि का वर्णन नायक का परिचय देने के लिये ही किया है जिसे उसकी कुलीनता आदि गुण प्रकट हो सकें।

नायक के अतिरिक्त नायिका वासवदत्ता के पिता शृंगारशेखर का वर्णन प्राप्त होता है।

वह कुसुमपुर नगर का राजा है। कवि के अनुसार वह प्रजाजनों के कार्यसम्पादन में व्यस्त, भयंकर सेना युक्त, सत्य, तेज तथा ऐश्वर्य से विभूषित, शत्रु बल का नाशक, धर्मात्मा, पवित्र कर्मों वाला तथा कल्याणकारी है। वह अत्यन्त पराक्रमी, राजनीतिज्ञ, दानी एवं इन्द्र से भी श्रेष्ठ है। अन्य लौकिक प्राणियों की भाँति उसे अपनी पुत्री से स्नेह है तथा उसके विवाह की चिन्ता है। वह स्वयंवर में वासवदत्ता द्वारा किसी को वरण न किये जाने पर स्वयं ही उसका विवाह विद्याधर राजपुत्र पुष्पकेतु के साथ निश्चित कर देता है क्योंकि उसे लोकनिन्दा का भय रहता है।

यद्यपि चिन्तामणि की भाँति ही राजा शृंगारशेखर का भी कवि कृत वर्णन ही उपलब्ध होता है तथापि पुत्री के प्रति प्रेम तथा चिन्ता के कारण चिन्तामणि की अपेक्षा शृंगारशेखर का चरित्र सजीवता के समीप है।

एक अन्य स्त्री पात्र वासवदत्ता की माता तथा कुसुमपुर की राजमहिषी अनंगवती की भी चर्चा मिलती है। कवि ने उसे पार्वती के समान बताया है। एक स्थल के अतिरिक्त अन्य किसी स्थल पर अनंगवती का उल्लेख नहीं किया गया है।

मानव पात्रों के अतिरिक्त शुक तथा सारिका के चरित्र 'कथा' में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान रखते हैं। यदि ये चरित्र कथा में न होते तो नायक को नायिका की प्राप्ति नहीं हो सकती। शुक द्वारा वासवदत्ता की कथा को सुनकर ही नायक को उसके प्राप्त होने की सम्भावना प्रबल हो जाती है। इसी प्रकार नायिका द्वारा भेजी गयी तमालिका नामक सारिका से वासवदत्ता के विषय में जानकर उसे हर्ष होता है। इन मानवेतर पात्रों के द्वारा यह जानकर कि वासवदत्ता उससे प्रेम करती है उसकी उत्कण्ठा और बढ़ जाती है। इन पात्रों के मानव के समान बोलने पर आश्चर्य की अनुभूति होती है।

मानवेतर पात्रों में मनोजव नामक अश्व का भी उल्लेख मिलता है किन्तु कवि ने इसे नायक तथा नायिका के पलायन के उपकरण रूप में प्रस्तुत किया है। इससे अधिक इस का कोई वर्णन नहीं है।

इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि सुबन्धु द्वारा किया गया पात्रों का चरित्र चित्रण कथा को आगे बढ़ाने में सहायक है।

पंचम अध्याय

वासवदत्ता का भावपक्ष-कथानक का

मौलिक अभिधेय ; अभिधेय में

भावानुप्रवेश योजना ; रससिद्धि

पंचम अध्याय

वासवदत्ता का भाव पक्ष—कथानक का मौलिक अभिधेय ; अभिधेय में

भावानुप्रवेश योजना ; रससिद्धि

कथानक का मौलिक अभिधेय; अभिधेय में भावानुप्रवेश योजना—

मौलिक अभिधेय से तात्पर्य है कि कवि अपनी कृति के माध्यम से क्या कहना चाहता है। कवि की प्रत्येक रचना सारगर्भित होती है। उसमें कोई न कोई उद्देश्य, सन्देश, उपदेश अवश्य होता है जिसके द्वारा वह समाज को शिक्षा देना चाहता है। वह स्वयं भी समाज का अंग होने के कारण उसका ऋणी होता है। उसके द्वारा उत्तम प्रकृति के पात्र समाज के सज्जन व्यक्तियों का प्रतिनिधित्व करते हैं तथा दुष्ट प्रकृति के पात्र दुर्जन व्यक्तियों का प्रतिनिधित्व करते हैं। कवि अधर्म पर धर्म की, असत्य पर सत्य की विजय दिखाकर यह उपदेश देता है कि मनुष्य को सदैव धर्म का ही आचरण करना चाहिए न कि अधर्म का।

‘वासवदत्ता’ सुबन्धु की मौलिक एवं सारगर्भित रचना है। इस सन्दर्भ में सर्वप्रथम यह विचारणीय है कि क्या सुबन्धु ने मात्र पाण्डित्य प्रदर्शन हेतु वासवदत्ता कथा का प्रणयन किया है अथवा इसमें अन्य कोई प्रयोजन भी निहित है। कथाकार ने स्वयं प्रत्यक्षर श्लेषमय रचना करने के तथ्य को स्वीकार किया है। जिसके फलस्वरूप प्रत्येक शब्द द्वयर्थक हो गया है। साथ ही स्थल-स्थल पर कवि द्वारा प्रयुक्त दीर्घ समासों एवं ओज युक्त भाषा के कारण यह कहा जा सकता है कि कवि ने अपनी विद्वत्ता को प्रकट करने के लिए ही इस कथा का सृजन किया है। किन्तु ऐसा नहीं है। कवि द्वारा पाण्डित्य का प्रदर्शन कथा की एक विशेषता अवश्य है,

किन्तु सम्पूर्ण उद्देश्य नहीं। शृंगारपरक रचना का प्रणयन भी कवि का एक अन्य उद्देश्य है। इसी कारण उन्होंने शृंगार रस के दोनों पक्षों—सम्भोग तथा विप्रलम्भ के पर्याप्त उदाहरण कथा में प्रस्तुत किये हैं। उनका सम्भोग शृंगार विप्रलम्भ शृंगार के द्वारा पुष्ट होता है।

यह तो पहले ही स्पष्ट किया जा चुका है कि वासवदत्ता कथा का संस्कृत साहित्य की अन्य कृतियों से कोई साम्य नहीं है। इसका कथानक कवि की मौलिकता का परिचय देता है। कवि द्वारा प्रयुक्त प्रत्येक घटना सारगर्भित है। कवि ने अपनी कृति में तत्कालीन स्पष्ट प्रस्तुतीकरण किया है। अतः स्पष्ट है कि सुबन्धु का एक उद्देश्य ऐसी कृति की रचना करना रहा है जिससे भविष्यकाल के लोग इस कथा के अनुशीलन से तत्कालीन सामाजिक एवं सांस्कृतिक व्यवस्था का ज्ञान प्राप्त कर सकें। यही नहीं उन्होंने तत्कालीन बुराईयों की ओर भी संकेत कर दिया है। जिससे उस समय में प्रचलित अव्यवस्था तथा कुरीतियों का ज्ञान हो जाता है। इन संकेतों द्वारा कवि इन कुरीतियों से दूर रहने का ही उपदेश देता हुआ प्रतीत होता है।

वासवदत्ता कथा का अध्ययन करने से यह तथ्य स्पष्ट होता है कि कवि पूर्णरूपेण अपनी कथा को प्रणय—कथा ही बनाना चाहता है। उन्होंने सभी परिस्थितियों को इस प्रकार प्रस्तुत किया है कि नायक तथा नायिका का परस्पर प्रगाढ़ प्रेम प्रकट हो जाता है। नायक तथा नायिका स्वप्न में एक दूसरे के दर्शन के पश्चात् एक दूसरे की खोज में रत दिखाई देते हैं। नायक अपने मित्र के साथ नायिका की खोज करता है तो नायिका तमालिका नामक सारिका को नायक की खोज में भेज देती है। इसी प्रकार शाप वर्णन का प्रसंग भी उनके परस्पर प्रेम को

ही प्रकट करता है। एक ओर नायक कन्दर्पकेतु नायिका को लतागृह न देखकर दुःखी होकर आत्मोत्सर्ग के लिये उद्यत हो जाता है, दूसरी ओर नायिका के शाप का परिहार भी उसके उत्कट प्रेम का परिचय देता है। क्योंकि कवि ने यह वर्णन किया है कि मुनि ने उसे दुःखी देखकर ही शाप का परिहार कर दिया। वासवदत्ता का यह दुःख मुनि के शाप से उत्पन्न नायक के वियोग के कारण ही है। साथ ही मुनि द्वारा प्रियतम के करस्पर्श द्वारा पुनः जीवन धारण करने का शाप का परिहार करना भी उनके अटूट प्रेम को ही द्योतित करता है।

सुबन्धु अपनी कथा को सुखान्त बनाना चाहते हैं। इसके लिये वे प्रारम्भ से लेकर अन्त तक प्रयत्नशील रहे हैं। उन्होंने सम्पूर्ण घटनाचक्र का संयोजन इस प्रकार किया है। जिससे नायक तथा नायिका का अन्त में समागम हो सके।

रससिद्धि—

रस काव्य का प्राणतत्त्व माना गया है। सामाजिकों को रस की अनुभूति कराना ही काव्य का प्रयोजन है। चाहे वह दृश्य काव्य हो अथवा श्रव्य काव्य, दोनों में ही रस का महत्त्वपूर्ण स्थान है। यही कारण है कि आदिकवि वाल्मीकि ने अपने ग्रन्थ में शृंगार आदि रसों का समावेश किया है।¹ भरत मुनि के विचारानुसार रसादि योजना के बिना काव्य और नाट्य आदि कोई भी रचना हो ही नहीं सकती।² महिमभट्ट³ विश्वनाथ⁴ आदि का भी यही मत है।

1 रसैः शृंगारकरुणहास्य रौद्रभयानकैः।

वीरादिभी रसैर्युक्त काव्यमेतदगायताम्॥ —वाल्मीकि कृत रामायण, 1/4/9

2 नहि रसादृते कश्चिदर्थः प्रवर्तते। —नाट्यशास्त्र, 6/32

3 कवि व्यापारो हि विभावादिसंयोजनात्मा रसाभिव्यक्तित्वव्यभिचारी काव्यमुच्यते

—व्यक्तिविवेक, पृ०-101

4 साहित्यदर्पण, पृ०-18

व्यावहारिक रूप से रस शब्द का प्रयोग चार अर्थों में किया जाता है—प्रथम पदार्थों का रस यथा अम्ल, तिक्त, कषाय आदि, द्वितीय आयुर्वेद का रस, तृतीय साहित्य का रस तथा चतुर्थ मोक्ष अथवा भक्ति का रस।¹ रस शब्द साधारण भी है और भ्रामक भी। साधारण इस दृष्टि से कि एक अशिक्षित तथा अनुभवहीन व्यक्ति भी इसके अर्थ को समझ सकता है और भ्रामक इस दृष्टि से कि वह इसे उत्कृष्ट रूप से व्यक्त नहीं कर सकता है। चाहे वह आर्यों का सोमरस का पान करने से उत्पन्न उत्साह हो, योगी का परब्रह्म परमात्मा से मिलन हो अथवा सहृदय द्वारा साहित्यिक कृति का आनन्दयुक्त अनुभव हो यह सब रस ही है।² कोई भी शब्द अथवा शब्द समुदाय रस के अर्थ को व्यक्त करने के लिये पर्याप्त नहीं है। वस्तुतः यह एक मानसिक प्रभाव है जो भावों की अभिव्यक्ति से उत्पन्न होता है। जब कोई रस शब्द की व्याख्या करने का प्रयास करता है तब भी उसकी और अधिक व्याख्या की अपेक्षा सदा बनी रहती है—

It has been found that no comprehensive word or phrase is adequate to convey the full import of rasa. Rasa is actually the impression created on the mind of the sympathetic audience by the expression of bhavas and is an experience the individual is subject to, on account of this expression. The idea of rasa is unique to Indian poetics and dramatics and is essentially a creation of the Indian genius. So, however much one may try to translate the word rasa, such a translation has always been found to be yet wanting.³

1 डॉ० नगेन्द्र कृत रस सिद्धान्त, पृ०-3

2 Aristotle And Bharata by R.L.Singhal, Chapter-2, page 28

3 Cited by R.L.Singhal in Aristotle and Bharata, Chapter-2, page- 28-29

ऋग्वेद में 'रस' शब्द का प्रयोग तरल पदार्थ के अर्थ में किया गया है। क्योंकि ऋग्वेद में रस शब्द का प्रयोग मधु¹ दुग्ध तथा जल², आदि अर्थों में किया गया है। ऋग्वेद में जल देवता को स्नेही माता मानकर उनकी स्तुति की गयी है जो रस रूप सुख प्रदान करने वाली है।³ हव्य रूप रस का भी उल्लेख मिलता है।⁴

सोमरस के अर्थ में रस शब्द का वर्णन उल्लेखनीय है। यह देवताओं के प्रिय पेय पदार्थ के रूप में प्रचलित है। इसके आस्वादन से उन्हें आनन्द तथा स्फूर्ति की प्राप्ति होती है और मद का संचार होता है। सोम हिमालय पर्वत पर उत्पन्न एक लता का नाम है जिसे निचोड़कर रस निकालकर उसका पान किया जाता है। ऋग्वेद में अनेक स्थलों पर सोम की स्तुति की गयी है। इसे विश्व का सृजन करने वाला, रक्षक तथा आनन्ददायक पेय कहा गया है। एक स्थल पर कहा गया है— संसार को धारण करने वाले सोम इन्द्रिय पोषक रस को धारण करते हुए उत्तम वीर और हिंसा से रक्षा करने वाले हैं—

सोमो अर्वति धर्णसिर्दधान इन्द्रियं रसम्। सुवीरो अभिशस्तिपाः।⁵

ऋग्वेद में प्रत्येक जीव को सोम के तेज से उत्पन्न तथा जगत् को सोम पर आश्रित माना गया है।⁶ देवगण सोम प्राप्ति के लिये इसकी स्तुति करते थे।⁷ देवों को मत्त करने वाले अभीष्टवर्षक सोम रस में गव्य मिलाने का उल्लेख भी मिलता है।⁸

1 स्वादु रसो मधुपेयो वराय —ऋग्वेद, 6/44/21.

2 यो नो रसं दिप्सति पित्वो अग्ने यो अश्वानां यो गवां यस्तनूनाम्। —ऋग्वेद, 7/104/10.

3 ऋग्वेद, 10/9/2

4 महे यत्पित्र ई रसं दिवे करवत्सरत्.....। —ऋग्वेद, 1/71/5

5 ऋग्वेद, 9/23/5

6 अथेदं विश्वं पवमान ते वशे त्वमिन्द्रो प्रथमो धामधा असि। —ऋग्वेद, 9/86/28

7 ऋग्वेद, 9/86/29, 30.

8 तं गोभिर्वृषणं रसं मदाय देववीतये। सुतं भराय सं सृज।

—ऋग्वेद, 9/6/6

आनन्द के रूप में रस का प्रयोग किया गया है। ऋत्विज जन को सोम की स्तुति में मंत्रोच्चारण करने तथा सोम लता को पत्थर पर पीसने से उत्पन्न ध्वनि के द्वारा आनन्द की प्राप्ति होती थी।¹ अन्यत्र भी कहा गया है—

यत्रानन्दाश्च मोदाश्च मुदः प्रमुदः आसते। कामस्य यत्राप्ताः कामास्तत्र माममृतं कृधीन्द्रायेन्दो परिसव।²

रस के लिये वाक् शब्द के प्रयोग का भी वैदिक साहित्य में विवरण उपलब्ध होता है—

वचः स्वादो स्वादीयो रुद्राय वर्धनम्।।³

अर्थात् रुद्र को प्रसन्न करने के लिये स्वादु से भी स्वादु वचन। इसके अतिरिक्त 'पिबत्वस्य गिर्वणः',⁴ 'मध्व ऊषु मधुयुवा रुद्रा सिषक्तिं पिप्युषी',⁵ वाचा वदामि 'मधुमद् भूयासं मधुसन्दृशः',⁶ तथा 'वाचों मधु पृथिवि! छेहि मह्यम्'⁷ आदि से यह स्पष्ट हो जाता है कि रस के अर्थ में 'वाक्' का प्रयोग किया जाता है डॉ० नगेन्द्र के मतानुसार ऋषि वाणी का पान करते थे और वे वाणी की मधुर एवं स्वादु रूप में कल्पना करते थे अर्थात् वाणी उन्हें मधुर पेय अथवा रस रूप में काम्य थी।⁸

अथर्ववेद में रस का उल्लेख वनस्पतियों के रस के रूप में किया गया है।⁹

1 यत्र ब्रह्मा परमान छंदस्या वाचं वदन्। ग्राव्णा सोमे महीयते सोमेनानन्दं जनयन्निन्द्रायेन्दो परिसव।।

— ऋग्वेद, 9/113/6

2 ऋग्वेद, 9/113/11

3 ऋग्वेद, 1/114/6

4 ऋग्वेद, 8/1/26

5 ऋग्वेद, 5/73/8

6 ऋग्वेद, 10/24/6

7 ऋग्वेद, 12/1/16

8 रस सिद्धान्त, पृ०-7

9 उदायुषां समायुषोदोषधीनां रसेन। व्यक्षं सर्वेण पाप्मना वि यक्ष्मेण समायुषा—अथर्ववेद, 3/31/10

अथर्ववेद के अनुसार वनस्पतियों के रस से पूर्व जलों का रस उत्पन्न हुआ था।¹

उपनिषदों में रस का प्रयोग द्रव्य के अर्थ में नहीं अपितु द्रव्य से प्राप्त ऊर्जा और आह्लाद के अर्थ में मिलता है।² छान्दोग्य उपनिषद् में आठ प्रकार के रस का उल्लेख किया गया है—

एषां भूतानां पृथिवी रसः। पृथिव्या आपो रसः। अपामोषधयो रसः। औषधीनां पुरुषो रसः। पुरुषस्य वाग् रसः। वाच ऋग् रसः। ऋचः साम रसः। साम उद्गीथो रसः।³

अर्थात् इन भूतों का रस पृथिवी है। पृथिवी का रस जल है। जल का रस उस पर निर्भर रहने वाली औषधियाँ हैं। औषधियों का रस पुरुष है। पुरुष का रस वाणी है। वाणी का रस ऋचा है। ऋचा का रस साम है। साम का रस उद्गीथ है।

कठोपनिषद् में रस तन्मात्राओं के रूप में प्रयुक्त हुआ है।⁴ तैत्तिरीय उपनिषद् में स्वयं ब्रह्म को ही रस स्वरूप कहा गया है। वह ब्रह्म रस स्वरूप है वही आनन्द है। अनादि काल से जन्म-मृत्यु रूप घोर दुःख का अनुभव करने वाला यह जीवात्मा रसमय ब्रह्म को प्राप्त कर ही आनन्द का अनुभव करता है।⁵ बृहदारण्यकोपनिषद् में रस को सारभूत तत्त्व माना गया है।⁶

रस के विषय में अग्नि पुराण में कहा गया है कि वह परब्रह्म परमेश्वर अक्षय

1 अपां रसः प्रथमजोऽथो वनस्पतीनाम्।

उत सोमस्य भ्रातास्युतार्शमसि वृष्णम्॥ —अथर्ववेद, 3/31/10

2 औषधीभ्योऽन्नम्। अन्नात्पुरुषः। स वा एष पुरुषोऽन्नरसमयः —तैत्तिरीय उपनिषद्, 2/1

3 छान्दोग्य उपनिषद्, 11/1/2,3

4 येन रूपं रसं गन्धं शब्दान्स्पर्शाश्च मैथुनान्।

एतेनैव विजानाति किमत्र परिशिष्यते, एतद्वैतत्॥ —कठोपनिषद्, 2/1/3

5 रसो वै सः! रसः ह्येवायं लब्ध्वाऽऽनन्दी भवति। —तैत्तिरीय उपनिषद्, 2/7

6 प्राणो वा अंगानां रसः। —बृहदारण्यकोपनिषद्, 3/19

है। वह शाश्वत अजन्मा तथा समस्त सृष्टि में व्याप्त है। वेदान्त ग्रन्थों में उसे अद्वितीय ज्योतिमान और सामर्थ्यवान कहा गया है। उसका आनन्द स्वाभाविक है परन्तु उसकी अभिव्यक्ति कभी-कभी होती है।¹

डॉ० नगेन्द्र का मत है यहाँ रस के भौतिक तथा आध्यात्मिक अर्थों की सीमायें परस्पर मिल जाती हैं। अथवा यह कहा जा सकता है कि रस भौतिक अर्थ की सीमा पार कर आध्यात्मिक अर्थ की सीमा में प्रवेश करता है। वह परमतत्त्व अरस भी है और सर्वरस भी। 'अरस' में रस का भौतिक अर्थ अभीष्ट है तथा 'सर्वरस' में आध्यात्मिक, क्योंकि भौतिक अर्थ में ही वह रस से विहीन और आध्यात्मिक अर्थ में ही रसमय हो सकता है।²

अतः यह स्पष्ट हो जाता है कि भौतिक रूप में इन्द्रिय विशेष जन्य आस्वाद का बोधक रस क्रमशः परमब्रह्म के समीप होते हुए अलौकिक आनन्द का बोध कराने में सक्षम हुआ।

डॉ० नगेन्द्र ने रस शब्द के शास्त्रीय अर्थ का आविर्भाव कामसूत्र की रचना के आसपास माना है।³ इस सन्दर्भ में उन्होंने विभिन्न तर्कों को भी प्रस्तुत किया है। वात्स्यायन विरचित कामसूत्र में रस शब्द रति⁴, काम शक्ति⁵ आदि अर्थों में तो प्रयुक्त हुआ ही है साथ ही शास्त्रीय अर्थ में भी प्रयुक्त हुआ है—

तदिष्टीभावलीलानुवर्तनम्।⁶

1 अग्नि पुराण, 339/1.2

2 रस सिद्धान्त, पृ०-5

3 रस सिद्धान्त, पृ०-8

4 रसो रतिः प्रीतिर्भावो रागो वेगः समाप्तिरिति रतिपर्यायः।—रस सिद्धान्त, पृ०-8

5 शास्त्राणां विषयस्तावद्यावन्मन्दरसा नराः—रस सिद्धान्त, पृ०-8

6 रस सिद्धान्त, पृ०-8

अरस्तु ने अनुकरण रूप काव्य के दो प्रयोजनों ज्ञानार्जन अर्थात् शिक्षा तथा आनन्द का स्पष्ट रूप से उल्लेख किया है, जो अन्त में आनन्द में ही समाहित हो जाते हैं। किन्तु सभी प्रकार का काव्यानन्द रस नहीं माना जा सकता है। इसका कारण यह है कि अलंकार, चित्रकाव्य आदि के चमत्कार से प्राप्त आनन्द भी काव्यानन्द के अन्तर्गत तो आता है किन्तु वह रस नहीं है। भारतीय काव्यशास्त्र के अनुसार नाटक में प्रदर्शित रागात्मक काव्य-वस्तु का प्रेक्षण कर अथवा श्रव्य में वर्णित काव्य वस्तु का मनसा साक्षात्कार कर सहृदय का उस प्रसंग से सम्बद्ध स्थायी भाव उद्बुद्ध होकर अत्यन्त उत्कट अवस्था को प्राप्त कर लेता है। इस स्थिति में सहृदय का चित्त काव्य-वस्तु तथा वैयक्तिक जीवन के अनुभवों को भूल कर एक अखंड आनन्दमयी चेतना में लीन हो जाता है—जिसका नाम रस है। अतः रस एक आनन्दमयी चेतना है।

अतः स्पष्ट है कि अरस्तु के मतानुसार काव्यानन्द न तो आध्यात्मिक है न ही बौद्धिक ; अपितु वह प्रकृत आनन्द से भिन्न आनन्द है। जिसमें कल्पना तथा ज्ञान तत्त्व की प्रधानता है। प्रमाता अनुकृत वस्तु को पहचानकर ही आनन्द का अनुभव करता है।¹

वस्तुतः काव्य के पठन, श्रवण तथा दर्शन से जिस आनन्द की अनुभूति होती है वही रस है। ऐसा कोई भी अर्थ जो हृदय का स्पर्श करने में समर्थ है और हमारी चेतना को व्याप्त करने में सक्षम है वह रस की उत्पत्ति कर सकता है।² भरत मुनि के

1 डॉ० नगेन्द्र द्वारा अनुवादित अरस्तु का काव्यशास्त्र, पृ०-37-39

2 योऽर्थो हृदयसंवादी तस्य भावोरसोद्भावः।

शरीरं व्याप्यते तेन शुष्कं काष्ठमिवाग्निना।। —नाट्यशास्त्र 7/7

अनुसार—

विभावानुभावव्यभिचारिसंयोगाद् रसनिष्पत्तिः।¹

अर्थात् विभाव, अनुभाव तथा व्यभिचारी भावों के संयोग से रस निष्पत्ति होती है। उन्होंने रस को आस्वाद्य तत्त्व स्वीकार करते हुए कहा है कि जिस प्रकार नाना प्रकार के व्यंजनों, औषधियों तथा द्रव्यों के संयोग से षाडवादि रस बनते हैं, उसी प्रकार विविध भावों से संयुक्त होकर स्थायी भाव भी रस रूप को प्राप्त होते हैं।²

भरत के रस सूत्र की भट्टलोल्लट, शंकुक, भट्टनायक तथा अभिनव गुप्त ने पृथक्-पृथक् रूप से व्याख्या की तथा क्रमशः उत्पत्तिवाद, अनुमितिवाद, भुक्तिवाद तथा अभिव्यक्तिवाद की स्थापना की। अभिनवगुप्त के अभिव्यक्तिवाद को सर्वाधिक प्रसिद्धि मिली। भरत ने रसों की संख्या आठ मानी हैं।³ जिन्हें द्रुहिण ने कहा था।⁴

भामह ने रस को उतना महत्त्व नहीं दिया जितना अलंकार को। उन्होंने अलंकार के अन्तर्गत ही रस का अन्तर्भाव किया है।⁵ दण्डी ने भी भामह की ही भाँति अलंकार को ही काव्यसौन्दर्य का पर्याय माना है तथा रसवद् अलंकार के अन्तर्गत ही रस का वर्णन किया है। किन्तु उन्होंने भरत के समान आठ रसों को मान्यता प्रदान

1 नाट्यशास्त्र, अध्याय-6, पृ०-228

2 यथा हि नानाव्यंजनौषधिद्रव्यसंयोगाद्रसनिष्पत्तिर्भवति, यथा हि गुडादिभिर्द्रव्यैर्व्यंजनैरोषधिभिश्च षाडवादयो रसा निवर्तन्ते, तथा नानाभावोपगता अपि स्थायिनो भावो रसत्वमाप्नुवन्तीति।

—नाट्यशास्त्र, अध्याय-6, पृ०-281

3 शृंगारहास्यकरुणा रौद्रवीरभयानकाः।

वीभत्साद्भुतसंज्ञौ चेत्यष्टौ नाट्ये रसाः स्मृताः॥ —नाट्यशास्त्र, 6/16

4 एते ह्यष्टौ रसाः प्रोक्ता द्रुहिणेन महात्मना। —नाट्यशास्त्र, 6/17

5 रसवददर्शितस्पष्टशृंगारादिरसं यथा।

देवी समागमद्वर्ममस्करिण्यतिरोहिता॥ —भामह कृत काव्यालंकार, 3/6

की है।¹ उद्भट ने भामह का ही अनुकरण किया है। उनकी दृष्टि में चतुर्वर्ग की प्राप्ति तथा चतुर्वर्ग विरोधी फल का परिहार करने वाला तथा चैतन्य भेद से आस्वाद्य रस कहलाता है—

चतुर्वर्गतरौ प्राप्य परिहार्यौ क्रमाद्यतः।

चैतन्यभेदादास्वाद्यात्स रसस्तादृशो मतः॥

उद्भट ने भरतोक्त आठ रसों में शान्त रस का समावेश कर नौ रसों को स्वीकार किया—

शृंगारहास्यकरुणारौ द्रवीरभयानकाः।

वीभत्साद्भुतशान्ताश्च नव नाट्ये रसाः स्मृताः॥²

वामन ने अर्थगुणों में अन्तिम 'कान्ति' का निरूपण करते हुए रस की चर्चा की है।³ उन्होंने रस संख्या के विषय में कोई उल्लेख नहीं किया है। रुद्रट ने रस के महत्त्व को स्वीकार किया है। उनके अनुसार काव्य को यत्नपूर्वक रसों से समृद्ध बनाना चाहिये,⁴ क्योंकि यह यश का विस्तार करता है।⁵ रुद्रट ने एक अन्य 'प्रेयान्' नामक रस को स्वीकार किया जिससे रसों की संख्या दस हो गयी।⁶

ध्वनिवादी आचार्य आनन्दवर्धन ने नौ रसों का स्पष्टतः कहीं भी उल्लेख नहीं

1 वाक्यस्याग्राम्यतायोनिर्माधुर्ये दर्शितो रसः।

इह त्वष्टरसायत्ता रसवत्ता स्मृता गिराम्॥ —दण्डी कृत काव्यादर्श, 2/292

2 डॉ० नगेन्द्र द्वारा उद्धृत, रस सिद्धान्त, पृ०-26

3 दीप्तरसत्वं कान्तिः —वामन कृत काव्यालंकारसूत्रवृत्ति, 3/12/15

4 ननु काव्येन क्रियते सरसानामवगमश्चतुर्वर्गे।

लघु मृदु च नीरसेभ्यस्ते हि त्रस्यन्ति शास्त्रेभ्यः॥

तस्मात्तत्कर्तव्यं यत्नेन महीयसा रसैर्युक्तम्। —काव्यालंकार, 12/1,2

5 ज्वलदुज्जलवाक्प्रसरः सरसं कुर्वन्महाकविः काव्यम्।

स्फुटमाकल्पनमनल्पं प्रतनोति यशः परस्यापि॥ —काव्यालंकार, 1/4

6 शृंगारवीरकरुणा वीभत्सभयानकाद्भुता हास्यः।

रौद्रः शान्तः प्रेयानिति मन्त्र्या रसाः सर्वे॥ —काव्यालंकार, 12/3

किया। किन्तु जिन रसों का नामोल्लेख किया है उनसे ज्ञात होता है कि उन्होंने नौ रसों को ही स्वीकार किया है। वस्तुतः आनन्दवर्धन का मत है कि किसी भी रस के अनन्त प्रभेद हो सकते हैं—

तस्यांगानां प्रभेदा ये प्रभेदा स्वगताश्च ये।

तेषामानन्त्यमन्योन्यसम्बन्धपरिकल्पने॥¹

अभिनवगुप्त के अनुसार रस ही काव्य की आत्मा है। वस्तु तथा अलंकार ध्वनियाँ रसपर्यवसायी होने पर ही काव्य संज्ञा को प्राप्त होती है। अभिनवगुप्त ने नौ रसों को ही माना है।²

राजशेखर ने रस को काव्य की आत्मा स्वीकार किया है—रस आत्मा.....।³

धनंजय के अनुसार विभाव, अनुभाव, सात्त्विक भाव एवं व्यभिचारी के द्वारा जब रत्यादि स्थायी भाव आस्वाद्य बना दिया जाता है, तो वही रस कहलाता है—

विभावैरनुभावैश्च सात्त्विकैर्व्यभिचारिभिः।

आनीयमानः स्वाद्यत्वं स्थायी भावो रसः स्मृतः॥⁴

भरत के समान धनंजय ने आठ रसों को ही माना है। धनंजय के शब्दों में काव्यार्थ के ज्ञान के द्वारा आत्मा में विशेष प्रकार के आनन्द का उत्पन्न होना स्वाद कहलाता है। यह स्वाद चार प्रकार का माना जाता है— चित्त का विकास, चित्त का विस्तर, चित्त का क्षोभ तथा चित्त का विक्षेप। ये चारों प्रकार के मनोविकार क्रमशः, वीर, वीभत्स तथा रौद्र रसों में पाये जाते हैं। ये चारों मनः प्रकार ही क्रमशः हास्य,

1 ध्वन्यालोक, 2/12

2 एवं ते नवैव रसाः। —अभिनवभारती, पृ०-640

3 राजशेखर कृत काव्यमीमांसा, अध्याय-3, पृ०-13

4 धनंजय कृत दशरूपक, 4/1

अद्भुत, भय तथा करुण मे पाये जाते है। इस प्रकार शृंगार तथा हास्य में विकास, वीर तथा अद्भुत मे विस्तर, वीभत्स तथा भय में क्षोभ एव रौद्र तथा करुण मे विक्षेप की स्थिति होती है। इसीलिये हास्यादि चार रसो को शृंगारादि चार रसों से उत्पन्न माना जाता है तथा 'आठ ही रस है' इस प्रकार की अवधारणोक्ति भी इसीलिये कही गयी है, क्योंकि मन की चार स्थितियों से चार शृंगारादि तथा चार तज्जन्य हास्यादि का ही सम्बन्ध घटित होता है।¹ धनंजय ने शान्त,² प्रीति, भक्ति मृगया तथा घृत³ आदि रसो का खण्डन किया है।

भोज ने वाङ्मय के तीन भेदो-वक्रोक्ति, रसोक्ति तथा स्वाभावोक्ति मे से रसोक्ति को ही अधिक मनोग्राही माना है-

वक्रोक्तिश्च रसोक्तिश्च स्वभावोक्तिश्च वाङ्मयम्।

सर्वासु ग्राहिणीं तासु रसोक्तिं प्रतिजानते।।⁴

उन्होने आठ रसो का उल्लेख तो किया ही है साथ ही प्रेयान्, शान्त उदात्त एव उद्धत रसों का भी उल्लेख किया है।

कुन्तक ने यद्यपि वक्रोक्ति को ही काव्य की आत्मा कहा है तथापि रस को भी उन्होने कम महत्त्व नहीं दिया है। इनके मतानुसार काव्यामृत का रस, उसको समझने वाले सहृदयो के अन्त करण मे चतुर्वर्गरूप फल के आस्वाद से भी बढ़कर चमत्कार

1 स्वाद काव्यार्थसम्भेदादात्मानन्दसमुद्भव ।

विकासविस्तरक्षोभविक्षेपै स चतुर्विधः ।।

शृंगारवीरवीभत्सरौद्रेषु मनस क्रमात् ।

हास्याद्भुतभयोत्कर्षकरुणाना त एव हि ।।

अतस्तज्जन्यता तेषामत एवावधारणाम् । -दशरूपक, 4/43-45

2 शमप्रकर्षोऽनिर्वाच्या मुदितोदेस्तदात्मता ।। -दशरूपक 4/45

3 प्रीतिभक्त्यादयो भावा मृगयाक्षादयो रसा ।

हर्षोत्साहादिषु स्पष्टमन्तर्भावान्न कीर्तिता ।। -दशरूपक 4/83

4 सरस्वतीकण्ठाभरण, 5/8

उत्पन्न करता है।¹ कुन्तक द्वारा प्रयुक्त 'सहृदय' रसादि के परम तत्त्व को जानने वाला है।² वक्रोक्तिकार ने नवरसवाद को ही माना है। कुन्तक के समान क्षेमेन्द्र भी काव्य में प्रयुक्त होने वाले नौ रसों का ही समर्थन करते हैं।³

मम्मट ने भरतमुनि द्वारा मान्य आठ रसों⁴ का उल्लेख तो किया ही है साथ ही नवें रस के रूप में शान्त रस⁵ का भी वर्णन किया है। यहीं नहीं ग्रन्थ के प्रारम्भ में किये गये मंगलाचरण में ही उन्होंने नवरसों की चर्चा की है—

नियतिकृतनियमरहितां ह्लादैकमयीमनन्यपरतन्त्राम् ।

नवरसरुचिरां निर्मितिमाबधती भारती कवेर्जयति ॥⁶

मम्मट ने काव्य से प्राप्त आनन्द को प्रयोजन का भी प्रयोजन कहा है। यह आनन्द रसास्वादन से निष्पन्न होता है तथा रसास्वादन रूप ही है। इस अलौकिक आनन्दानुभूति के समय रस का अनुभव करने वाले सहृदय को अन्य ज्ञेय वस्तुओं का ज्ञान नहीं रहता। इसीलिये इस आनन्द को ब्रह्मानन्द सहोदर कहा गया है। समाधिस्थ योगी को जैसा आनन्द प्राप्त होता है वैसा ही काव्य रसास्वादन से प्राप्त है।⁷ मम्मट ने रस को परिभाषित करते हुए कहा है—

कारणान्यथ कार्याणि सहकारीणि यानि च ।

रत्यादेः स्थायिनो लोके तानि चेन्नाद्यकाव्ययोः ।

1 चतुर्वर्गफलास्वादमप्यतिक्रम्य तद्विदाम् ।

काव्यामृतरसेनान्तश्चमत्कारो वितन्यते ॥ —कुन्तक कृत वक्रोक्तिजीवितम्, 1/5

2 रसादिपरमार्थज्ञानः संवादसुन्दरः । —वक्रोक्तिजीवित, 1/26

3 औचित्यविचारचचार्य, 17-40

4 शृंगारहास्यकरुणारौद्रवीरभयानकाः ।

वीभत्सादभुतसंज्ञौ चेत्यष्टौ नाट्ये रसाः स्मृताः ॥ —काव्यप्रकाश, 4/29

5 निर्वेदस्थायिभावोऽस्ति शान्तोऽपि नवमो रसः । —काव्यप्रकाश, 4/35

6 काव्यप्रकाश, 1/1

7 काव्यप्रकाश, पृ०-9

विभावा अनुभावास्तत् कथ्यन्ते व्यभिचारिणः ।

व्यक्तः स तैर्विभावाद्यैः स्थायी भावो रसः स्मृतः ॥¹

अर्थात् लोक में स्थायी रति आदि चित्तवृत्ति विशेष के जो कारण तथा कार्य रत्यादिजन्य कायिक, वाचिक तथा मानसिक भेद से अनेक प्रकार के कटाक्ष, भुजोत्क्षेप आदि तथा उनके सहकारी भाव हैं, उनका यदि नाट्य तथा काव्य में वर्णन किया जाता है तो वे क्रमशः विभाव, अनुभाव तथा व्यभिचारी भाव कहे जाते हैं। उन विभावादि के द्वारा अथवा उनके सहित सहृदयों के हृदय में व्यंजना द्वारा व्यक्त किया हुआ वह स्थायी भाव रस कहा गया है।

हेमचन्द्र ने रसास्वाद को ब्रह्मास्वाद के समान बताया है।² उन्होंने गुण तथा दोष को रस के उत्कर्ष एवं अपकर्ष का हेतु³ तथा अलंकार को रसोपकारी⁴ कहा है। हेमचन्द्र ने भी नौ रसों की ही चर्चा की है।

नाट्यदर्पणकार रामचन्द्र-गुणचन्द्र ने रस से पराङ्मुख कवि को उत्तम कवि नहीं माना है।⁵ इन्होंने भी नौ रसों को ही मान्यता प्रदान की है।⁶ नाट्यदर्पणकार के अनुसार सुखात्मक एवं दुःखात्मक दो प्रकार के होते हैं। उनमें से शृंगार, हास्य, वीर, अद्भुत तथा शान्त सुखात्मक तथा करुण, रौद्र, वीभत्स और भयानक दुःखात्मक रस हैं।⁷

1 काव्यप्रकाश, 4/27, 28

2 सद्योरसास्वादजन्या निरस्तवेद्यान्तरा ब्रह्मा स्वादसदृशी प्रीतिरानन्दः ।

—काव्यानुशासन, अध्याय-1, सूत्र 3.

3 काव्यानुशासन, अध्याय-1, सूत्र 12

4 काव्यानुशासन, अध्याय-1, सूत्र-13

5 नानार्थशब्दलौल्येन पराङ्मो ये रसामृतात् ।

विद्वांसस्ते कवीन्द्राणामर्हन्ति न पुनः कथाम् ॥

नाट्यदर्पण, 1/6

6 नाट्यदर्पण, 3/165

7 नाट्यदर्पण, 3/163

भावप्रकाशकार शारदातनय रस के प्रबल समर्थक हैं। उन्होंने आठ रस मानने वाले शिव, नन्दिन, वैवस्वत और पद्मभुव का तथा नौ रसों को मानने वाले नारद, वासुकि, व्यास, वाल्मीकि का उल्लेख किया है।¹

विश्वनाथ के अनुसार—वाक्यं रसात्मकं काव्यम्² अर्थात् सबसे प्रधान होने के कारण रस रूप आत्मा वाला वाक्य काव्य कहलाता है। उनके शब्दों में सहृदय पुरुषों के हृदय में स्थित वासनारूप रति इत्यादि स्थायी भाव ही विभाव, अनुभाव तथा संचारीभावों के द्वारा अभिव्यक्त होकर रस के स्वरूप को प्राप्त होते हैं।³ रस के स्वरूप का निरूपण तथा उसके आस्वादन प्रकार के सन्दर्भ में विश्वनाथ का कथन है कि अन्तःकरण में रजोगुण तथा तमोगुण को दबाकर सत्त्वगुण के सुन्दर स्वच्छ प्रकाश होने से रस का साक्षात्कार होता है। रस अखण्ड, अद्वितीय स्वयं प्रकाशस्वरूप आनन्दमय और चिन्मय है। रसास्वाद के समय विषयान्तर का ज्ञान नहीं होता अतः यह ब्रह्मास्वाद के समान होता है।⁴ साहित्यदर्पणकार ने नौ रसों का उल्लेख किया है—

शृंगारहास्यकरुणारौ द्रवीरभयानकाः ।

वीभत्सोऽद्भुत इत्यष्टौ रसाः शान्तस्तथाः मतः ॥⁵

पण्डितराज जगन्नाथ ने ध्वनि के पांच भेदों में रस ध्वनि को सबसे श्रेष्ठ माना

1 भावप्रकाश, द्वितीय अधिकार, पृ०-47,

2 साहित्यदर्पण, 1/3.

3 विभावेनानुभावेन व्यक्तः संचारिणा तथा ।

रसतामेति रत्यादिः स्थायिभावः सचेतस्याम् ॥

—साहित्यदर्पण, 3/1

4 सच्चोद्रेकाखण्डस्वप्रकाशान्दचिन्मयः ।

वेद्यान्तरस्पर्शशून्यो ब्रह्मास्वादसहोदरः ॥

—साहित्यदर्पण, 3/2

5 साहित्यदर्पण, 3/182.

है।¹ जगन्नाथ भी नवरसवाद के ही समर्थक हैं।² सुबन्धु द्वारा वासवदत्ता कथा में प्रयुक्त रसों का विवरण इस प्रकार है—

शृंगार रस—

भरत मुनि ने शृंगार रस की विस्तृत चर्चा करते हुए कहा है कि यह रस उत्तम प्रकृति के नायक तथा नायिका को लेकर पारस्परिक अनुराग द्वारा अपने स्वरूप को प्रकट करता है।³

रुद्रट के अनुसार दो परस्पर अनुरक्त, स्त्री, पुरुषों का रतिपरक व्यवहार शृंगार कहलाता है। यह दो प्रकार का है— सम्भोग और विप्रलम्भ। स्त्री, पुरुष दोनों के एक साथ रहने को सम्भोग तथा वियुक्त रहने को विप्रलम्भ कहा जाता है। रुद्रट ने शृंगार रस के दो अन्य भेदों का भी उल्लेख किया है—प्रच्छन्न और प्रकाश।⁴

धनंजय के अनुसार परस्पर अनुरक्त नायक नायिका के हृदय में, रम्य, देश, काल, कला, वेष, भोग आदि के सेवन के द्वारा आत्मा का प्रसन्न होना रति स्थायी भाव है। यही रति स्थायी भाव नायक या नायिका की मधुर चेष्टाओं के द्वारा एक दूसरे के हृदय में परिपुष्ट होकर शृंगार रस होता है—

रम्यदेशकलाकालवेषभोगादिसेवनैः ।।

1 एवं पचात्मके ध्वनौ परमरमणीयतया रसध्वनेस्तदात्मा रसस्तावदभिधीयते ।

—रसगंगाधर, प्रथम आनन, पृ०-79

2 रसाना नवत्वगणना च मुनिवचननियन्त्रिता भज्येत्, इति यथाशास्त्र, मेव ज्यायः ।

—रसगंगाधर, प्रथम आनन, पृ०-176

3 नाट्यशास्त्र, अध्याय-6, पृ०-301

4 व्यवहारः पुनार्योरन्योन्यं रक्तयो रतिप्रकृतिः ।

शृंगार स द्वेधा संभोगो विप्रलम्भश्च ।।

संभोग संगतयोर्वियुक्तश्च विप्रलम्भोऽसौ ।

पुनरप्येष द्वेधा प्रच्छन्नश्च प्रकाशश्च ।। —काव्यालंकार, 12/5,6

प्रमोदात्मा रतिः सैव यूनोरन्योन्यरक्तयोः ।

प्रहृष्यमाणा शृंगारो मधुरांगविचेष्टितैः ।।¹

धनंजय ने शृंगार रस के तीन भेद माने हैं— अयोग, विप्रयोग, तथा संयोग—

अयोगो विप्रयोगश्च सम्भोगश्चेति स त्रिधा ।।²

संस्कृत साहित्य में शृंगार रस को प्रधान रस के रूप में वर्णित किया गया है । भरत मुनि के अनुसार संसार में जो कुछ भी पवित्र, विशुद्ध, उज्ज्वल एवं दर्शनीय हैं । उसकी तुलना शृंगार रस से की जा सकती है—

यत्किंचिल्लोके शुचि मेध्यमुज्ज्वलं दर्शनीयं वा तच्छृंगारेणानुमीयते ।³

रुद्रट ने शृंगार रस की महत्ता को प्रतिपादित करते हुए कहा है—शृंगार जैसी रम्यता अन्य किसी रस में नहीं है । इस रस से सभी मानव ओत प्रोत हैं । इस रस के समावेश के बिना काव्य को उच्च कोटि का नहीं कहा जा सकता । अतः कवि को इस रस के निरूपण में विशेष प्रयत्न करना चाहिये—

अनुसरति रसानां रस्यतामस्य नान्यः

सकलमिदमनेन व्याप्तमाबालवृद्धम् ।

तदिति विरचनीयः सम्यगेष प्रयत्नाद्

भवति विरसमेवानेन हीनं हि काव्यम् ।।⁴

आनन्दवर्धन ने भी ऋग्वेद , को सर्वाधिक मधुर तथा आह्लादक कहा है ।⁵

1 दशरूपक, 4/47, 48

2 दशरूपक, 1/50.

3 नाट्यशास्त्र, 6/45, वृत्ति, पृ०-298

4 काव्यालंकार, 14/38.

5 शृंगार एव मधुरः परः प्रह्लादनो रसः । —ध्वन्यालोक, 2/7

भोज ने दस रसों के स्थान पर मात्र शृंगार रस को ही रस की संज्ञा दी है—

शृंगारवीरकरुणाद्भुतरौद्रहास्य—

वीभत्सवत्सलभयानकशान्तनाम्नः ।

आम्नासिषुर्दश रसान्सुधियो, वयं तु

शृंगारमेव रसनाद्रसमामनामः ॥¹

विश्वनाथ की दृष्टि में भी शृंगार रस ही सर्वाधिक व्यापक है। इसका कारण यह है कि इस रस में उग्रता मरण, और आलस्य को छोड़कर शेष सभी संचारी भावों तथा जुगुप्सा को छोड़कर सभी संचारीभावों से उत्पन्न स्थायी भावों का समय अथवा परिस्थिति के अनुसार सम्बन्ध रहता है।²

सम्भोग शृंगार—

भरत मुनि के शब्दों में संयोग शृंगार ऋतु पुष्पमालाओं तथा अलंकारों के धारण, इष्टजन का साहचर्य, विषय अथवा अर्थ सुन्दर भवन का उपभोग, उद्यानागमन, विहरण तथा अनुभव करने, प्रिय जन के दर्शन, श्रवण तथा क्रीड़ा, लीला आदि विभावों के संयोग से उद्भूत होता है। इसका अभिनय नयन—चातुर्य भ्रूविक्षेप, कटाक्ष संचार, मधुर तथा ललित अंगों के परिचालन, मधुर शब्दों तथा ऐसी ही अन्य वस्तु के द्वारा किया जाता है। इसमें त्रास, आलस्य, उग्रता तथा जुगुप्सा नामक संचारी भावों को छोड़कर शेष सभी प्रयुक्त किये जाते हैं।³

1 शृंगारप्रकाश, 1/6

2 साहित्यदर्पण, 3/186

3 ऋतुमाल्यालंकारैः प्रियजनगान्धर्वकाव्यसेवाभिः ।

उपवनगमनविहारैः शृंगाररसः समुद्भवति ॥

नयनवदनप्रसादैः स्मितमधुरवचोद्धृतिप्रमोदैश्च ।

मधुरैश्चांगविहारैस्तस्याभिनयः प्रयोक्तव्यः ॥ —नाट्यशास्त्र 6/48, 49

रुद्रट के शब्दों में—

अन्योन्यस्य सचित्तावनुभवतो नायकौ यदिद्विमुदौ ।

आलोकनवचनादि स सर्वः संभोगशृंगारः ।।¹

अर्थात् तुल्य मन वाले, प्रमुदित नायक तथा नायिका जिस पारस्परिक अवलोकन, सम्भाषण आदि का अनुभव करते हैं वह संभोग शृंगार कहलाता है ।

धनंजय ने सम्भोग शृंगार का निरूपण इस प्रकार किया है— जहाँ नायक और नायिका एक दूसरे के अनुकूल होकर, विलासपूर्ण होकर, दर्शन, स्पर्शन आदि का परस्पर उपभोग करते हैं, वहाँ प्रसन्नता तथा उल्लास से युक्त सम्भोग शृंगार कहलाता है—

अनुकूलौ निषेवेते यत्रान्योन्यं विलासिनौ ।

दर्शनस्पर्शनादीनि स संभोगो मुदान्वितं ।।²

विश्वनाथ की दृष्टि में कामदेव के उद्भेद को शृंग कहते हैं, उसकी उत्पत्ति का कारण अधिकांश उत्तम प्रकृति से युक्त शृंगार रस कहलाता है । परस्त्री तथा अनुरागशून्य वेश्या को छोड़कर अन्य नायिकायें तथा दक्षिण आदि नायक इस रस के आलम्बन विभाव माने जाते हैं । चन्द्रमा, चन्दन, भ्रमर आदि उद्दीपन विभाव होते हैं । उग्रता, मरण, आलस्य और जुगुप्सा को छोड़कर अन्य निर्वेदादि इसके संचारीभाव होते हैं । इसका स्थायी भाव 'रति' है और वर्ण श्याम है एवं देवता इसके विष्णु

1 काव्यालंकार, 13/1

2 दशरूपक, 4/69

भगवान् हैं।¹

कथा के अन्त में नायक तथा नायिका का मिलन हो जाना तथा सुखपूर्वक नगर में समय व्यतीत करना जहाँ कथा को सुखान्त बनाता है, वहीं शृंगार रस को भी चरमोत्कर्ष पर पहुँचाता है। इसके अतिरिक्त नायक तथा नायिका का वर्णन कवि की शृंगारप्रियता को स्पष्ट करते हैं।

म्लानिमानमुपगच्छत्सु वासागारकुसुमोपहारेषु, विगलत्कुन्दैरलकैः प्रियविरह—
शोकाद्वाष्पबिन्दूनिवोत्सृजतीषु, प्रियतमगमननिषेधमिव कुर्वतीषु वाचालतुलाकोटि—
भिश्चरणपल्लवैः, रजनिशेषसुरतभरपरिश्रमविगलितकेशपाशदरदलितमाधवीमालापरिमल
लुब्धमधुकरनिकुरम्बपक्षानिलनिपीतनिदाघजलकणिकासु, उद्वेल्लद्भुजवल्लिकंकणझणत्कार—
सुभगासु, नखपदसंसक्तकेशपाशविनिर्मोकवेदनाकृतसीत्कारविनिर्गतदुग्धमुग्धदशन—
किरणच्छटाधवलितभोगावासासु, पुनर्दर्शनप्रश्नविधुरसखीजनानुक्षणवीक्ष्यमाणप्रियतमासु,
क्षणदागतसुरतवैयात्यवचन संस्मारकगृहशुकचाटुव्याहृतिक्षणजनितमन्दाक्षासु, शारद्वासर—
लक्ष्मीष्विव नखालङ्कृतपयोधरासु, आसन्नमरणास्विव जीवितेशपुराभिमुखीषु
वसन्तराजिष्विव उत्कलिकाबहुलासु, प्रियैरालिङ्गयमानासु कामिनीषु, आन्दोलितकुसुमकेसरे
केसरेणुमुषिरणितनूपुरमणीनां रमणीनाम्, विकचकुमुदाकरे मुदाकरे सङ्भाजि.....²

1 शृंगं हि मन्मथोद्भेदस्तदागमनहेतुकः।
उत्तमप्रकृतिप्रायो रसः शृंगार इष्यते।।
परोढा वर्जयित्वा तु वेश्यां चाननुरागिणीम्।
आलम्बनं नायिकाः स्युर्दक्षिणाद्याश्च नायकाः।।
चन्द्रचन्दनरालम्बरुताद्युद्दीपनं मतम्।
भ्रूविक्षेपकटाक्षादिरनुभावः प्रकीर्तितः।।
त्यक्तवौग्रयमरणालस्यजुगुप्सा व्यभिचारिणः।
स्थायिभावो रतिः श्यामवर्णोऽयं विष्णुदैवतः।। —साहित्यदर्पण, 3/183-185
2 पं० शंकरदेव शास्त्री द्वारा संपादित वासवदत्ता, पृ०-42-46

प्रस्तुत उदाहरण में स्थायी भाव रति है। प्रियजन तथा रमणियाँ आलम्बन विभाव हैं। रात्रि, वायु आदि उद्दीपन विभाव हैं। नखक्षत, स्वेद अश्रु, बिन्दु, आदि अनुभाव हैं। विषाद, चिन्ता, उत्कण्ठा, लज्जा आदि संचारी भावों से शृंगार रस पुष्ट होता है।

यहीं नहीं गद्यकार द्वारा रेवा नदी का मानवीकरण करके उसे प्रियतमा के रूप में प्रस्तुत किया गया है जो अपनी तरंग रूपी भुजाओं से पर्वत रूपी प्रियतम का आलिंगन करती है।¹ दक्षिण वायु के प्रसंग में शृंगार रस की प्रतीति होती है। कवि के अनुसार दक्षिण पवन सुरत क्रीड़ा में आसक्त लाट देशीय स्त्रियों के मस्तक पर पड़े हुए केशों तथा उनके केशों में लगे हुए मौलसिरी के पुष्पों की गन्ध से मुग्ध करने वाला है। कर्णाटदेशीय स्त्रियों के कलश तुल्य स्तनों पर लगे हुए कुङ्कुम के सम्पर्क से मनोहर गन्ध वाला, उत्कण्ठा से युक्त अपरान्तदेशीय ललनाओं के केशों के संसर्ग से उत्पन्न गंध के कारण एकत्र हुई भ्रमरपंक्ति से मनोरम झंकार से आकाश को शब्दायमान करने वाला, नवयौवन के कारण चंचल हृदय केरलदेशीय युवतियों के कपोलों पर पत्रावली बनाने में निपुण, मालवदेशीय स्त्रियों के नितम्ब मण्डल को दबाने में कुशल तथा तैलंगदेशीय कामिनियों के स्वेद बूंदों के संपर्क से शीलत है।² यह वर्णन शृंगार रस को उद्दीप्त करता है।

विप्रलम्भ शृंगार—

भरत मुनि के अनुसार शृंगार के विप्रलम्भ का अभिनय निर्वेद, ग्लानि, शंका,

1 आर० वी० कृष्णमाचारियर द्वारा संपादित वासवदत्ता, पृ०-114

2 प० शंकरदेव शास्त्री द्वारा संपादित वासवदत्ता, पृ०-146-148

असूया, श्रम, चिन्ता, औतसुक्य, निद्रा, स्वप्न, विबोक्क, व्याधि उन्माद, अपस्मार, जाड्य तथा मरण आदि संचारी भावों द्वारा किया जाता है।¹

धनंजय के शब्दों में वियोग शृंगार में नायक तथा नायिका का समागम नहीं होता। यह समागमाभाव एक बार समागम हो जाने के पश्चात् की दशा का है। यह वियोग बहुत अधिक भी हो सकता है अथवा प्रेम का ही एक बहाना हो सकता है। इस प्रकार यह दो प्रकार का है। प्रथम प्रवास रूप वियोग जो रूढ़ होता है। दूसरा मानरूप वियोग। मानपरक वियोग प्रेम अथवा ईर्ष्या के कारण होता है—

विप्रयोगस्तु विश्लेषो रूढविसम्भयोर्द्विधा।।

मानप्रवासभेदेन, मानोऽपि प्रणयेर्ष्ययोः।

तत्र प्रणयमानः स्यात्कोपावसितयोर्द्वयोः।।²

सुबन्धु ने संयोग शृंगार की अपेक्षा विप्रलम्भ शृंगार का वर्णन अत्यन्त सजीवता से किया है। वस्तुतः यह कथा विप्रलम्भ शृंगार से प्रारम्भ होकर संयोग शृंगार पर समाप्त होती है। विप्रलम्भ शृंगार के पूर्वरग, मान, प्रवास तथा करुण चार भेद होते हैं।³ एक दूसरे के गुणों के श्रवण अथवा दर्शन से परस्पर अनुरक्त नायक व नायिका की समागम से पूर्व की दशा पूर्वरग है।⁴ कवि ने नायक तथा नायिका के समागम का हेतु स्वप्न दर्शन को बनाया है। नायक कन्दर्पकेतु व नायिका वासवदत्ता स्वप्न में ही एक दूसरे को देखकर परस्पर अनुरक्त हो जाते हैं। यह स्थिति पूर्वरग की है—

1 नाट्यशास्त्र, अध्याय—6, पृ०—305

2 दशरूपक, 4/57—58.

3 साहित्यदर्पण, 3/187.

4 श्रवणाद्दर्शनाद्वापि मिथः संरूढरागयोः।

दशाविशेषो योऽप्राप्तो पूर्वरगः स उच्यते।। —साहित्यदर्पण, 3/188

अथ तस्यामेव रात्रौ सा स्वप्ने, बालिनमिवांगदोपशोभितम्, कुहुमुखमिव हारिकण्ठम्, कनकमृगमिव रामाकर्षणनिपुणम्, जयन्तमिव वचनामृतानन्दितवृद्धश्रवसम्, कृष्णमिव कंसहर्षं न कुर्वन्तम्, महामेघमिव विलसत्करम् समुद्रमिव महासत्त्वम्, मालिन्या कवरिकया, तुंगभद्रया नासिकया शोणेनाधरेण, नर्मदया वाचा, गोदया भुजया स्वर्वाहिन्या कीर्त्या च पुण्यसरिन्मयमिव, आदिकन्दं शृंगारपादपस्य, रोहणगिरिं सकुलगुणरत्नसमूहस्य, प्रभवशैलं सुन्दरकन्दर्पकथानदीनाम्, सुरभिमासं वैदग्ध्यसहकारस्य, आदर्शतलं सौजन्यमुखस्य, आदिबीजं विद्यालतानां, कोशगृहं महासौन्दर्यधनस्य, मूलगृहं शीलसम्पदः, स्वयं वृतपतिं कीर्त्तः, स्पर्धागृहम् लक्ष्मीसरस्वत्योः त्रिभुवनविलोभनीयाकृतिं कंचिद्युवानं ददर्श।¹

कोप का नाम मान हैं। वह दो प्रकार का होता है प्रथम प्रणय से उत्पन्न दूसरा ईर्ष्या से उत्पन्न।² पूर्वराग के पश्चात् मान विप्रलम्भ का उदाहरण शुक तथा सारिका के वृत्तान्त में प्राप्त होता है—

ततो जम्बूनिकुंजस्थिता शारिका काचिच्चिरादागतं शुकं प्रकोपतरलाक्षरमुवाच कितव! शारिकान्तरमन्विष्य समागतोऽसि। कथमन्यथा रात्रिरिष्यती तव इति।³

विप्रलम्भ शृंगार के तीसरे भेद प्रवास की दशा का स्पष्ट विवरण कवि ने नहीं किया है। स्वप्न दर्शन के पश्चात् जब नायक कन्दर्पकेतु अपने मित्र मकरन्द को साथ लेकर नगर से चुपचाप निकल कर विन्ध्यपर्वत पर भ्रमण करता है तब प्रवास की

1 पं० शंकरदेव शास्त्री द्वारा संपादित वासवदत्ता, पृ०—162—166.

2 मानः कोपः रा तु द्वेधा प्रणयेर्ष्यासमुद्भवः।

द्वयोः प्रणयमानः स्यात्प्रमोदे सुमहत्यपि।। —साहित्यदर्पण, 3/198.

3 पं० शंकरदेव शास्त्री द्वारा संपादित वासवदत्ता, पृ०—102

स्थिति मानी जा सकती है। विद्वानों ने प्रवास की स्थिति को परिभाषित करते हुए कहा है कि शापवश, कार्यवश अथवा भयवश नायक अथवा नायिका के अन्य देश में चले जाने को प्रवास कहते हैं।¹ किन्तु स्वप्न दर्शन के पश्चात् ऐसा कोई वर्णन नहीं है जिससे यह ज्ञात हो सके कि नायक कन्दर्पकेतु नायिका के शापवश, कार्यवश या भयवश अन्य देश चले जाने के कारण उसे इधर उधर ढूँढ़ रहा हो, वरन् वह तो अपनी कामपीड़ा को शान्त करने के लिये मित्र मकरन्द को साथ लेकर नगर से निकल जाता है।

प्रवास विप्रलम्भ का उदाहरण ऋषि द्वारा वासवदत्ता को शाप दिये जाने के पश्चात् कन्दर्पकेतु की दशा में प्राप्त होता है जब वह नायिका को इधर-उधर खोजता है। किन्तु यहाँ विप्रलम्भ शृंगार का चतुर्थ भेद करुण विप्रलम्भ भी है। क्योंकि नायिका के शापवश प्रस्तर प्रतिमा बन जाने के कारण नायक अत्यधिक दुःखी होकर प्राणोत्सर्ग के लिये उद्यत हो जाता है। किन्तु आकाशवाणी सुनकर उसे सान्त्वना मिलती है।

वीर रस—

नाट्यशास्त्र मे वीर रस का लक्षण इस प्रकार है—

उत्साहाव्यवसायादविषादित्वादविस्मयान्मोहात् ।

विविधादर्थविशेषाद्वीररसो नाम सम्भवति ।।

स्थितिधैर्यवीर्यगर्वैरुत्साहपराक्रमप्रभावैश्च ।

वाक्यैश्चाक्षेपकृतैर्वीररसः सम्यगभिनेयः ।।²

1 साहित्यदर्पण, 3/204

2 नाट्यशास्त्र, 6/68, 69

अर्थात् वीर रस उत्तम प्रकृति के पुरुषों में अवस्थित तथा उत्साह तथा नामक स्थायी भाव वाला होता है। यह प्रत्युत्पन्न मत्तित्व, असम्मोह, अध्यवसाय, नीति, बल, पराक्रम, शक्ति, प्रताप, प्रभाव आदि विभावों द्वारा उत्पन्न होता है। इसका अभिनय स्थिरता, धैर्य, शौर्य, त्याग, चातुर्य आदि अनुभावों के द्वारा करना चाहिये, इसमें धृति, मति, गर्व, आवेग, औग्रय, अमर्ष, स्मृति रोमांच आदि संचारी तथा सात्त्विक भाव होते हैं।

रुद्रट ने काव्यालंकार के पंद्रहवें अध्याय में वीररस को पारिभाषित करते हुए कहा है— वीर रस उत्साह युक्त होता है। युद्ध, धर्म और दान विषयों में इसका प्रयोग होने के कारण यह तीन प्रकार का होता है। शीघ्र दुःखी न होने वाला धीर तथा प्रसिद्ध व्यक्ति उसका नायक होता है। वह नीति, विनय, तेज, पराक्रम, गम्भीरता, उदारता, वीरता और धैर्य आदि गुणों से युक्त, लोकप्रिय कार्यभार का सम्यक् निर्वाह करने वाला तथा बड़े कार्य का सम्पादन करने वाला होता है—

उत्साहात्मा वीरः स त्रेधा युद्धधर्मदानेषु।

विषयुषु भवति तस्मिन्नक्षोभो नायकः ख्यातः॥

नयविनयबनपराक्रमगाम्भीर्यो दार्यशौर्यशौटीयैः।

युक्तोऽनुरक्तलोको निर्व्यूढभरा महारम्भः॥¹

धनंजय ने वीर रस की परिभाषा इस प्रकार दी है—

प्रताप, विनय, कार्यकुशलता, बल, मोह, अविषाद, नय, विस्मय तथा शौर्य आदि विभावों से वीर रस की पुष्टि होती है। यह वीर रस उत्साह नामक स्थायी भाव से

¹ काव्यालंकार, 15/1, 2

भावित होता है तथा दयावीर, रणवीर एवं दानवीर इस प्रकार तीन प्रकार का होता है। इसमें मति, गर्व, धृति तथा प्रहर्ष आदि संचारी भाव विशेष रूप से पाये जाते हैं।¹

शिङ्गभूपाल ने वीररस का लक्षण इस प्रकार दिया है—

विभावैरनुभावैश्च स्वोचितैर्व्यभिचारिभिः ।

नीतः सदस्यरस्यत्वमुत्साहो वीर उच्यते ॥

एष त्रिधा समासेन दानयुद्धदयोद्भवाः ।

दानवीरे धृतिर्हर्षो मत्याद्या व्यभिचारिणः ॥

स्मितपूर्वाभिलाषित्वं स्मितपूर्वं च वीक्षितम् ।

प्रसादे बहुदातृत्वं तद्वद्वाचानुमोदितम् ॥

गुणागुणविचाराद्यस्त्वनुभावाः समीरिताः।²

साहित्यदर्पणकार ने वीर रस को उत्तम पात्र में आश्रित माना है। इसका स्थायी भाव उत्साह, देवता महेन्द्र और रंग सुवर्ण के सदृश होता है। इसमें जीतने योग्य रावणादि आलम्बन होते हैं और उनकी चेष्टायें आदि उद्दीपन विभाव होते हैं। युद्ध के सहायक धनुष आदि तथा सैन्य आदि का अन्वेषणादि इसका अनुभाव है। धैर्य, मति, गर्व, स्मृति, तर्क, रोमांचादि इसके संचारी भाव हैं। दान, धर्म, दया, युद्ध आदि के कारण यह चार प्रकार का होता है—दानवीर, धर्मवीर, दयावीर, युद्धवीर—

1 वीरः प्रतापविनयाध्यवसायसत्त्व
मोहाविषादनयविस्मयविक्रमाद्यैः ।
उत्साहभूः स च दयारणदानयोगात्
त्रेधा किलात्र मतिगर्वधृतिप्रहर्षाः ॥

—दशरूपक, 4 / 72

2 रसार्णवसुधाकर, 2 / 235—238

उत्तमप्रकृतिर्वीर उत्साहस्थायिभावकः ।

महेन्द्रदैवतो हेमवर्णोऽयं समुदाहृतः ॥

आलम्बनविभावास्तु विजेतव्यादयो मताः ।

विजेतव्यादिचेष्टाद्यास्तस्योद्दीपनरूपिणः ॥

अनुभावास्तु तत्र स्युः सहायान्वेषणादयः ।

संचारिणस्तु धृतिमतिगर्वस्मृतितर्करोमांशाः ॥

स च दानधर्मयुद्धैर्दयया च समन्वितश्चतुर्धा स्यात् ।¹

नायक कन्दर्पकेतु के पराक्रम वर्णन में वीर रस का उदाहरण प्राप्त होता है—

यस्य च समरभुवि भुजदण्डेन कोदण्डं, कोदण्डेन शराः, शरैररिशिरः, अरिशिरसा भूमण्डलं, भूमण्डलेनानुभूतपूर्वो नायकः, नायकेन कीर्तिः, कीर्त्या सप्त सागराः, सागरैः, कृत युगादिराजचरितस्मरणम् स्मरणेन स्थैर्यम्, स्थैर्येण प्रतिक्षणमाश्चर्यमासादितम् ।²

अर्थात् युद्धभूमि में, जिसके भुजदण्ड ने प्रतिक्षण धनुष, धनुष ने बाण, बाणों ने शत्रुमस्तक, शत्रुमस्तक ने भूमण्डल, भूमण्डल ने अननुभूतपूर्व नायक, नायक ने कीर्ति, कीर्ति ने सप्त सागर, सागरों ने कृतयुगादिराजाओं के चरितों का स्मरण, स्मरण ने स्थिरता और स्थिरता ने आश्चर्य प्राप्त किया ।

प्रस्तुत उदाहरण में नायक कन्दर्पकेतु का उत्साह स्थायी भाव है । शत्रु आदि आलम्बन , उनके कार्य उद्दीपन विभाव, धनुष, शत्रु, मस्तक का कटकर पृथ्वी पर गिरना अनुभाव, उग्रता आदि व्यभिचारी भाव हैं । अतः यहाँ वीर रस है ।

1 साहित्यदर्पण, 3/232-234.

2 आर० वी० कृष्णमाचारियर द्वारा संपादित वासवदत्ता, पृ०-53

वासवदत्ता के लिये दो किरात सेनाओं में हुए परस्पर युद्ध में भी वीर रस प्राप्त होता है—

अनन्तरं चिन्तितं मया यद्यहमार्यपुत्राय कथयामि तदा स एकवाक्येभिरेव हन्तव्योऽथ न कथयामि तदेभिरहं घातनीयेति चिन्ताक्षण एव एकामिषलुब्धयोरिव गृध्रयोः तयोर्युद्धमासीत् । ततः प्रवृत्तशरासारदुर्दिनस्थगितदिनकरकिरणे, रणकर्मविशारद—द्विरदकरदूरोत्क्षिप्तखड्गधरसुभदाश्लिष्यमाणविद्याधरविभ्रमे, समरदर्शनसंचरदनेकनभश्चर—चारणरचितचक्रवाले, चरच्चारुभटखड्गखण्डितद्विपदसमाप्तिपिशाचिकाकर्णोलूखलाभरणे, कौतुकाकृष्टजनकृतवदननान्दीके, कान्दिशीकभीरुणि, प्रस्कन्नक्लीबजने, रणोद्यतजित काशिनि रणखले, शृगालिकाशृगालप्रार्थनीयेष्वाभिषपिण्डेष्विव, जिह्मगदष्टेष्विव, शिवत्रदुर्भगेष्विव, शरीरेष्वनास्थां कलयन्तः, समं द्विषतां धनुषांच जीवाकर्षण योधाश्चक्रुः ।.....¹

प्रस्तुत उदाहरण में दोनों किरात सेनाओं का उत्साह स्थायी भाव है। दोनों किरात सेनायें परस्पर आलम्बन विभाव हैं। उनकी परस्पर चेष्टाएँ उद्दीपन विभाव हैं। सेनाओं द्वारा बाण, खड्ग, धनुष आदि का संचालन, हाथियों के कटे हुए पैर तथा योद्धाओं का मांसपिण्ड की तरह भूमि पर पड़ा होना आदि अनुभाव हैं। आवेग, उग्रता आदि व्यभिचारी भाव हैं। अतः यहाँ वीर रस है।

इसके अतिरिक्त राजा शृंगारशेखर के वर्णन में वीर रस का उदाहरण उपलब्ध होता है—

युद्धभूमि में इधर शृंगारशेखर ने धनुष की प्रत्यंचा का आकर्षण किया उधर

1 पं० शंकरदेव शास्त्री द्वारा संपादित वासवदत्ता, पृ०—308—310.

शत्रु निष्प्राण हो गये। एक ओर उसके बाणों ने शत्रुसेना में लक्ष्य भेदन किया दूसरी ओर शत्रुओं का यश उसने प्राप्त कर लिया। जैसे ही उसने क्षमा का परित्याग किया वैसे ही शत्रु सेना के मस्तकों ने अपनी स्थिति छोड़ दी अर्थात् वे काटकर पृथ्वी पर गिर पड़े। शत्रुसेना ने पंचत्व अर्थात् मृत्यु को प्राप्त किया किन्तु शृंगारशेखर को अन्य युद्ध प्राप्त नहीं हुआ क्योंकि एक ही युद्ध में समस्त शत्रुओं के नष्ट हो जाने से कोई युद्ध करने वाला न रहा।¹

इस उदाहरण में राजा शृंगारशेखर का उत्साह स्थायी भाव है। शत्रुजन आलम्बन विभाव, उनकी चेष्टायें उद्दीपन विभाव, शत्रुओं के मस्तक का पृथ्वी पर गिरना तथा मृत्यु को प्राप्त होना आदि अनुभाव है। उग्रता, गर्व, आवेग, रोमांच आदि व्यभिचारी भावों के द्वारा वीर रस पुष्ट होता है।

अद्भुत रस—

भरतमुनि के मतानुसार अद्भुत रस का स्थायी भाव विस्मय है यह दिव्य जन के दर्शन, इष्ट मनोरथों की प्राप्ति, उद्यान तथा सभा भवन, सतमंजिले भवन, माया, इन्द्रजाल के दर्शन आदि विभावों के द्वारा उत्पन्न होता है। इसका नेत्रों के विस्तार एकटक देखना, रोमांच, अश्रु, स्वेद, हर्ष, साधुवाद, दान, प्रबन्ध, हाहाकार, बाहु, मुख, अंगुलि या वस्त्र के एक कोने को घुमाने आदि अनुभावों के द्वारा अभिनय करना चाहिये। इसमें अश्रु, स्तम्भ, स्वेद, गद्गद, रोमांच, आवेग, सम्भ्रम, प्रहर्ष, चपलता,

1 जीवाकृष्टिं स चक्रे मृधभुवि धनुषः शत्रुरासीद्गतासु
लक्ष्मिर्मागणानामभवदरिबले सद्यशस्तेनलब्धम् ।
मुक्ता तेन क्षमेति त्वरितमरिबलैरुत्तमांगैः प्रविष्टा
पंचत्वं द्वेषिसैन्यैर्गतमवनिपतिर्नाप संख्यानतरं सः ।।

—आर० वी० कृष्णमाचारियर द्वारा संपादित वासवदत्ता, पृ०-143.

उन्माद, धृति, जडता प्रलय आदि संचारी भाव होते हैं।¹ भरत मुनि ने अद्भुत रस के दो भेद माने हैं—प्रथम दिव्य अर्थात् दैवीय चमत्कार से उत्पन्न, द्वितीय आनन्दज अर्थात् मनोरथ की सिद्धि करने वाली अप्रत्याशित घटनाओं से उत्पन्न।

रुद्रट के शब्दों में—

स्यादेशः विस्मयात्मा रसोऽद्भुतो विस्मयोऽप्यसंभाव्यात् ।

स्वयमनुभूतादर्थादनुभूयान्येन वा कथितात् ।।

नयनविकासो वाष्पः पुलकः स्वेदोऽनिमेषनयनत्वम् ।

संभ्रमगद्गदवाणीसाधुवचांस्युत्तमे सन्ति ।।²

धनंजय ने अद्भुत रस का निरूपण इस प्रकार किया है—अलौकिक पदार्थों के दर्शन श्रवण आदि से अद्भुत रस उत्पन्न होता है। जो विस्मय नामक स्थायी भाव का परिपोष है। साधुवाद अर्थात् पदार्थ की प्रशंसा करना, आँसू निकलना, काँपना, गद्गद होना, आदि इसके अनुभाव हैं। अद्भुत रस में हर्ष, आवेग, धृति, आदि व्यभिचारी भाव प्राप्त होते हैं।³

शिङ्गभूपाल ने अद्भुत रस की परिभाषा इस प्रकार दी है—

विभावैरनुभावैश्च स्वोचितैर्व्यभिचारिभिः ।।

नीतः सदस्यरस्यत्वं विस्मयोऽद्भुततां व्रजेत् ।

1 यत्त्वतिशयार्थयुक्तं वाक्यं शिल्पं च कर्म रूपं वा ।
तत्सर्वमद्भुतरसे विभावरूपं हि विज्ञेयम् ।।

स्पर्शग्रहोल्लुक्सनैर्हाहाकारैश्च साधुवादैश्च ।

वेपथुगद्गदवचनैः स्वेदाद्यैरभिनयस्तस्य ।। —नाट्यशास्त्र, 6/76, 77

2 काव्यालंकार, 15/9,10

3 दशरूपक, 4/78, 79

अत्र धृत्यावेगजाड्यहर्षाद्या व्याभिचारिणः ।।

चेष्टास्तु नेत्रविस्तारस्वेदाश्रुपुलकादयः ।¹

साहित्यदर्पणकार ने अद्भुत रस का स्थायीभाव विस्मय, देवता गन्धर्व तथा वर्ण पीत कहा है। अलौकिक वस्तु इसका आलम्बन तथा उसके गुणों का वर्णन उद्दीपन होता है। स्तम्भ, स्वेद, रोमांच, गद्गद स्वर सम्भ्रम और नेत्रविकास आदि इसके अनुभाव होते हैं। वितर्क, आवेग, भ्रान्ति, हर्ष आदि व्यभिचारी भाव होते हैं—

अद्भुतो विस्मयस्थायिभावो गन्धर्वदैवतः ।।

पीतवर्णो वस्तु लोकातिगमालम्बनं मतम् ।

गुणानां तस्य महिमा भवेदुद्दीपनं पुनः ।।

स्तम्भः स्वेदोऽथ रोमांचगद्गदस्वरसंभ्रमाः ।

तथा नेत्रविकासाद्या अनुभावाः प्रकीर्तिताः ।।

वितर्कावेगसंभ्रान्तिहर्षाद्या व्यभिचारिणः ।²

अद्भुत रस का उदाहरण वासवदत्ता के स्वप्न प्रसंग में उपलब्ध होता है। कन्दर्पकेतु के सौन्दर्य का स्वप्न में दर्शन कर वह अनायास ही कहती है—

अहो प्रजापते रूपनिर्माणकौशलम् । मन्ये, स्वस्यैव नैपुण्यस्यैकत्र दर्शनोत्सुक—
मनसा बेधसा जगत्त्रयसमवायिरूपपरमाणूनादाय विरचितोऽयमिति ; अन्यथा कथमिवास्य
कान्तिविशेष ईदृशो भवति ।³

अर्थात् ब्रह्मा का रूप निर्माण कौशल धन्य है। अपने हस्तकौशल को एक ही

1 रसार्णवसुधाकर, 2/241-243.

2 साहित्यदर्पण, 3/242-245.

3 पं० शंकरदेव शास्त्री द्वारा संपादित वासवदत्ता, पृ०-167

जगह देखने की इच्छा से प्रेरित होकर ब्रह्मा ने समस्त संसार के सौन्दर्य परमाणुओं को एकत्रित कर इस युवक का निर्माण किया है अन्यथा इसकी ऐसी कान्ति किस प्रकार होती?

प्रस्तुत गद्यांश में वासवदत्ता का नायक के सौन्दर्य-दर्शन से उत्पन्न विस्मय ही स्थायी भाव है। कन्दर्पकेतु आलम्बन विभाव, उसके गुणों तथा रूप का अतिशय वर्णन उद्दीपन विभाव, रोमांच, हर्ष तथा वितर्क आदि व्यभिचारी भाव हैं।

वासवदत्ता के शापवश पाषाण प्रतिमा बनने के पश्चात् पुनः वास्तविक रूप को प्राप्त करने में अद्भुत रस है। शरत्काल के समय में कन्दर्पकेतु ने इधर-उधर भ्रमण करते हुए किसी प्रस्तर प्रतिमा का अपनी प्रिया के सदृश समझ कर स्पर्श किया। स्पर्श के साथ ही वह पाषाण रूप को छोड़ कर वासवदत्ता के रूप में परिवर्तित हो गयी। उसे देखकर अमृत सागर में डूबते हुए कन्दर्पकेतु ने अच्छी तरह आलिंगन करके पूछा—वासवदत्ता यह क्या बात है?¹

यहाँ नायक कन्दर्पकेतु का वास्तविक रूप को प्राप्त करने पर उत्पन्न विस्मय स्थायी भाव है। नायिका वासवदत्ता आलम्बन है। वासवदत्ता के मिलन रूपी इष्ट मनोरथ की प्राप्ति उद्दीपन विभाव है। उससे उत्पन्न हर्ष अनुभाव तथा रोमांच, सम्भ्रम आदि व्यभिचारी भाव हैं।

एक अन्य स्थल पर भी अद्भुत रस की प्राप्ति होती है। कन्दर्पकेतु ने राजधानी के एक भाग में निर्मित आकाश को छूने वाले शिखरों से युक्त, सुधा

1 पं० शंकरदेव शास्त्री द्वारा संपादित वासवदत्ता, पृ०-306

अर्थात् कलई से श्वेत, विभिन्न प्रकार की मणियों से जटित परकोटे वाले वासवदत्ता के भवन को देखा। उसका पार्श्ववर्ती भाग स्वर्णमय शिलाओं से युक्त था। वह विभिन्न प्रकार के पक्षियों एवं वृक्षों से युक्त था। उस भवन में बहुत सी रमणियाँ मधुरा वह राजमहल सब प्रकार प्रकार के विलासों का परम्परागत गृह एवं सौन्दर्य का संकेत स्थान था। उस भवन को देखकर नायक के मन में विचार उत्पन्न हुआ—यहाँ कैसा अलौकिक सौन्दर्य है। यहाँ के निवासियों की शृंगार-क्रीड़ा में कैसी चातुरी है?¹

प्रस्तुत उदाहरण में नायक द्वारा भवन को देखने पर उत्पन्न जो विस्मय है वह स्थायी भाव है। नायिका आलम्बन विभाव है। भवन का वैशिष्ट्य उद्दीपन विभाव है। भवन के दर्शन से उत्पन्न हर्ष तथा रोमांच आदि व्यभिचारी भाव हैं। अतः यहाँ अद्भुत रस है।

वीभत्स रस—

वीभत्स रस का 'जुगुप्सा' स्थायी भाव होता है। यह असुन्दर एवं अप्रिय पदार्थों के अवलोकन, अनिष्ट वस्तु के दर्शन तथा कथन आदि विभावों के द्वारा उत्पन्न होता है। इसका अभिनय सभी अंगों के संकोच, मुख को सिकोड़ने, घुमाने, ऊपर की ओर ले जाने और थूकने तथा अंगों के घुमाने आदि अनुभावों के द्वारा प्रदर्शित करना चाहिये। इसमें अपस्मार, उद्वेग, आवेग, मोह, व्याधि तथा मरण आदि संचारी भाव होते हैं।² 'काव्यालंकार' में वीभत्स रस की परिभाषा इस प्रकार है—

1 अकरोच्च मनसि—अहो भुवनातिशायि सौन्दर्यम्। अहो शृंगार कलाकौशलम्।

—पं० शंकरदेव शास्त्री द्वारा संपादित वासवदत्ता, पृ०-251.

2 अनभिमतादर्शनेन च गन्धरसस्पर्शशब्दोषैश्च।

उद्वेजनैश्च बहुभिर्बीभत्सरसः समुद्भवति।।

मुखनेत्रविधूर्णननयननासाप्रच्छादनावनमितास्थैः।

अव्यक्तपादपतनैर् बीभत्सः सम्यग्भिनेयः।। —नाट्यशास्त्र, 6/74, 75.

भवति जुगुप्साप्रकृतिर्वीभत्सः सा तु दर्शनाच्छ्रवणात् ।

संकीर्तनात्ताथोन्द्रियविषयाणामत्यह्वानाम् । ।

हल्लेखाननिष्ठीवनमुखाक्कूणनसर्वगात्रसंहाराः ।

उद्वेगः सन्त्यस्मिन्गाम्भीर्यान्नोत्तमानां तु । ।¹

अर्थात् वीभत्स रस की प्रकृति जुगुप्सा है। यह जुगुप्सा अति घृणित पदार्थों के देखने, सुनने तथा वर्णन करने से उत्पन्न होती है। हृदय का काँपना, थूकना, मुँह बनाना, सारे अंगों को सिकोड़ना तथा उद्विग्न होना—ये सब वीभत्स रस में होते हैं किन्तु गम्भीर स्वभाव होने के कारण उत्तम नायकों में ये नहीं होते।

दशरूपककार ने वीभत्स रस का स्वरूप इस प्रकार बतलाया है—

वीभत्सः कृमिपूतिगन्धिवमथुप्रायैर्जुगुप्सैकभू—

रुद्वेगी रुधिरान्त्रकीकसवसामांसादिभिः क्षोभणः ।

वैराग्याज्जघनस्तनादिषु घृणाशुद्धोऽनुभावैर्वृतो ।

नासावक्रविकूणनादिभिरिहावेगार्तिशंकादयः । ।²

अर्थात् कृमि, दुर्गन्ध, वमन आदि विभावों से, जुगुप्सा स्थायी भाव से उत्पन्न होने वाला वीभत्स उद्वेगी वीभत्स रस होता है। रक्त, अंतड़ियाँ, अस्थियाँ, चर्बी तथा माँस आदि विभावों से क्षोभण वीभत्स उत्पन्न होता है। जघन, स्तन आदि के प्रति वैराग्य के कारण उत्पन्न घृणा से शुद्ध वीभत्स उत्पन्न होता है। वीभत्स रस के अनुभाव नासिका को टेढ़ा करना, सिकोड़ना आदि हैं। इसके संचारी भाव आवेग

1 काव्यालंकार, 15/5,6

2 दशरूपक, 4/73.

शंका आदि होते हैं।

शिङ्गभूपाल ने वीभत्स रस को इस प्रकार परिभाषित किया है—

विभावैरनुभावैश्च स्वोचितैर्व्यभिचारिभिः ।।

जुगुप्सा पोषमापन्ना वीभत्सत्वेन रस्यते ।

अत्र ग्लानिश्रमोन्मादमोहापस्मारदीनताः ।।

विषादचापलावेगजाड्याद्या व्यभिचारिणः ।

स्वेदरामांचनासाग्राछादनाद्याश्च विक्रियाः ।।¹

साहित्यदर्पणकार ने वीभत्स रस की परिभाषा इस प्रकार दी है—

जुगुप्सास्थयिभावस्तु वीभत्सः कथ्यते रसः ।

नीलवर्णो महाकालदवैतोऽयमुदाहृतः ।।

दुर्गन्धमांसरुधिरमेदांस्यालम्बनं मतम् ।

तत्रैव कृमिपाताद्यमुद्दीपनमुदाहृतम् ।।

निष्ठीवनास्यवलननेत्रसंकोचनादयः ।

अनुभावास्तत्र मतास्तथा स्युर्व्यभिचारिणः ।।

मोहोऽपस्मार आवेगो व्याधिश्च मरणादयः ।²

अर्थात् वीभत्स रस का स्थायी भाव जुगुप्सा है। इसका वर्ण नील तथा देवता महाकाल हैं। दुर्गन्धयुक्त माँस, रुधिर, चर्बी आदि इसके आलम्बन होते हैं और उन्हीं में कीड़े पड़ जाना आदि उद्दीपन विभाव होते हैं। थूकना, मुख फेरना, नेत्रों को

1 रसार्णवसुधाकर, 2/247-249.

2 साहित्यदर्पण, 3/239-241.

बन्द करना इसके अनुभाव होते हैं, तथा मोह, अपस्मार, आवेग, व्याधि और मरण इसके व्यभिचारी भाव होते हैं।

कवि द्वारा वीभत्स रस का प्रयोग श्मशान वर्णन में किया गया है—

ततः क्रमेण गव्यूतिमात्रमध्वानं गत्वा, नरजांगलकवलनाभिलाषमिलितनिःशङ्क—
कङ्काकुलसंकुलेन अर्धदग्धचिताचक्रसिमसिमायमानवसाविस्रविकटकटतृष्णाचटुलकट—
पूतनोत्तालवेतालरवभीषणेन, शूलशिखरारोपितशंकितवर्णकर्णनासिकच्छेदरुधिरपटल—
पतितझांकारिकरकोटिकर्पूरकरालकौणपनृत्ततुमुलेन, भम्भरालीकेलिसम्भारभरितभूमिभाग—
वीभत्सेन, कटाग्निदह्यमानपटुचटचटन्तृकरोटिटङ्कारभैरवरणेव, विवृतोल्कामुखीमुज्वल
ज्ज्वलनज्वालाजटिलेन, आन्त्रतन्तुप्रोतकपालकलितकुचप्रालम्बडामरडाकिनीगणकृत
कुणपविभागकोलाहलेन, आर्द्रसिरारचितविवाहमंगलप्रतिसरपिशाचमिथुनप्रदक्षिणीक्रिय—
माणचितानलेन, शूलपाणिनेव कपालावलिशिवाबहुभूतिभुजगराजावरुद्धदेहेन, पुरुषा—
तिशयेनेव अनेकमण्डलकृतसेवेन, दण्डकारण्येनेव कबन्धाधिष्ठितेन, चक्रवर्तिनेव
अनेकनरेन्द्रपरिवृतेन, श्मशानवाटनेनिर्गत्य.....¹

यहाँ मुर्दे, डाकिनी, पिशाच, राक्षस, बेताल इत्यादि आलम्बन विभाव हैं। मनुष्य मांस, वसा, गन्ध, बहता हुआ रुधिर, मक्खियों का भिनभिनाना, रुधिर से सनी हुई अंतड़ियों का मांगलिक सूत्र आदि उद्दीपन विभाव हैं। इन सबसे उत्पन्न जुगुप्सा स्थायी भाव हैं।

भयानक रस—

नाट्यशास्त्र में भयानक रस को पारिभाषित करते हुए कहा गया है कि इसका

1 पं० शंकरदेव शास्त्री द्वारा संपादित वासवदत्ता, पृ०-259-262

स्थायी भाव भय होता है। विकृत शब्द हिंसक जन्तुओं का दर्शन, सियार तथा उल्लू के द्वारा त्रास, उद्वेग, शून्य, अरण्य एवं गृह में प्रवेश, आत्मीय व्यक्ति के वस्त्र तथा बन्धन का दर्शन, श्रवण या कथन आदि इसके उद्दीपन विभाव होते हैं। भरत के अनुसार इसका अभिनय धूजते हुए हाथ, पैर तथा फड़कते हुए नेत्रों, रोमांच, मुँह का उतर जाना तथा स्वरभेद आदि अनुभावों के द्वारा करना चाहिये। इसमें स्तम्भ, स्वेद, गद्गद हो जाना, रोमांच, वेपथु, स्वर भेद, वैवर्ण्य, शंका, मोह, दैन्य, आवेग, जड़ता, त्रास, अपस्मार तथा मरण आदि संचारी भाव होते हैं।¹

रुद्रट ने भयानक रस का लक्षण करते हुए कहा है— भयानक रस की प्रकृति भय है। अति घोर शब्द आदि से भय उत्पन्न होता है। इसके नायक नीच व्यक्ति, स्त्री तथा बालक होते हैं। दिशाओं को देखना, मुख सूख जाना, विवर्णता, स्वेद, गला रुँध जाना, त्रास, हाथ—पैरों का कम्पन, चक्कर आना और मूर्च्छा ये सब भयानक रस में होते हैं—

संभवति भयप्रकृतिर्भयानको भयमतीव घोरेभ्यः ।

शब्दादिभ्यस्तस्य च नीचस्त्रीबालनायकता ॥

दिवप्रेक्षणमुखशोषणवैवर्ण्यसवेदगद्गदत्रासाः ।

करचरणकम्पसंभ्रममोहाश्च भयानके सन्ति ॥²

1 विकृतरसत्वदर्शनसंग्रामारण्यशून्यगृहगमनात् ।

गुरुनृपयोरपराधात्कृतकश्च भयानको ज्ञेयः ॥

गात्रमुखदृष्टिभेदैरुस्तम्भाभिवीक्षणोद्वेगैः ।

सन्नमुखशोषहृदयस्पन्दनरोमोद्गमैश्च ॥

एतत्स्वभावजं स्यात्सत्त्वसामुत्थं तथैव कर्तव्यम् ।

पुनेभिरेव भावैः कृतकं मृदुचेष्टितैः कार्यम् ॥

करचरणवेपथुस्तम्भागात्रसंकोचहृदयकम्पेन ।

शुष्कोष्ठ—तालु कण्ठैर्भयानको नित्यमभिनेयः ॥ —नाट्यशास्त्र, 6/70-73

2 काव्यालंकार, 15/7,8

धनंजय का भयानक रस के सन्दर्भ में कथन है कि किसी व्यक्ति के स्वर, शरीर आदि का डरावनापन देखकर भय नामक स्थायी भाव होता है, उसी का परिपोष भयानक रस है। इसके अनुभाव सम्पूर्ण शरीर का कम्पन, स्वेद, मुख सूखना, मुख का विवर्ण होना, चिन्ता होना आदि हैं। इसमें दैन्य सम्भ्रम, सम्मोह, त्रास, आदि व्यभिचारी भाव दृष्टिगत होते हैं—

विकृतस्वरसत्त्वादेर्भयभावो भयानकः ।

सर्वाङ्गवेपथुस्वेदशोषवैचित्त्यलक्षणः ।

दैन्यसम्भ्रमसम्मोहत्रासादिस्तत्सहोदरः ॥¹

रसार्णवसुधाकर में भयानक रस का लक्षण इस प्रकार दिया गया है—

विभावैरनुभावैश्च स्वोचितैर्व्यभिचारिभिः ।

भयं सदस्यरस्यत्वं नीतं प्रोक्तो भयानकः ॥

तत्र सन्त्राससरणचापलावेगदीनताः ।

विषादमोहापस्मारशंकाद्या व्यभिचारिणः ॥

विक्रयास्त्वास्यशोषाद्याः सात्त्विकाञ्चाश्रुवर्जिताः ॥²

साहित्यदर्पण में भयानक रस की परिभाषा इस प्रकार दी है—

भयानको भयस्थायिभावः कालाधिदैवतः ।

स्त्रीनीचप्रकृतिः कृष्णो मतस्तत्त्वविशारदैः ॥

यस्मादुत्पद्यते भीतिस्तदत्रालम्बनं मतम् ।

1 दशरूपक, 4/80.

2 रसार्णवसुधाकर, 2/250-252.

चेष्टा घोरतरास्तस्य भवेदुद्दीपनं पुनः ।।

अनुभावोऽत्र वैवर्ण्यगद्गदस्वरभाषणम् ।

प्रलयस्वेदरोमांचकम्पदिक्प्रेक्षणादयः ।।

जुगुप्सावेगसंमोहसंत्रासग्लानिदीनताः ।

शंकापस्मारसंभ्रान्तिमृत्य्वाद्या व्यभिचारिणः ।।¹

अर्थात् भयानक का स्थायी भाव भय है। देवता काल, वर्ण तथा इसके आश्रयपात्र स्त्री तथा नीचपुरुष आदि होते हैं। जिससे भय उत्पन्न हो वह सिंह आदि इसमें आलम्बन और उसकी चेष्टायें उद्दीपन मानी जाती हैं। विवर्णता, गद्गद भाषण, प्रलय अर्थात् मूर्च्छा, स्वेद, रोमांच, कम्प और इधर-उधर ताकना आदि इसके अनुभाव होते हैं जुगुप्सा, आवेग, मोह, त्रास, ग्लानि, दीनता, शंका, अपस्मार, संभ्रम तथा मृत्यु आदि इसके व्याभिचारी होते हैं।

कवि ने मकरन्द द्वारा विन्ध्यपर्वत को सिंह के समान वर्णित करने में भयानक रस का प्रयोग अत्यन्त स्वाभाविकता से किया है—

पश्योदञ्चदवाञ्चदञ्चितवपुःवपूर्वार्धपश्चार्द्धभाक्,

स्तब्धोत्तानितपृष्ठनिष्ठितमनाग्भुग्नाग्रलाङ्गूलभृत् ।

दंष्ट्राकोटिविशङ्कटास्यकुहरः कुर्वन् सटामुत्कटा-

मुत्कर्णः कुरुते क्रमं करिपतौ क्रूराकृतिः केसरी ।।

उत्कण्ठोऽयमकाण्डचण्डिमपटुः स्फारस्फुरत्केसरः

क्रूराकारकरालवक्त्रकुहरः स्तब्धोर्ध्वलाङ्गूलभृत् ।

चित्रे चापि न शक्यते विलिखतुं सर्वांगसंकोचभाक्

फीट्कुर्वद्गिरिकुञ्जकुञ्जरबृहत्कुम्भस्थलस्थो हरिः ॥¹

प्रस्तुत उदाहरण में कवि द्वारा वर्णित सिंह के भयंकर आक्रमण से उत्पन्न भय स्थायी भाव है। सिंह की आक्रमण करने की चेष्टाएँ उद्दीपन विभाव हैं। घोर स्वर आदि अनुभाव हैं तथा शंका, त्रास, रोमांच, आदि व्याभिचारी भाव हैं। इनसे पुष्ट होने के कारण यहाँ भयानक रस है।

रौद्र रस—

भरतमुनि ने षष्ठ अध्याय में रौद्ररस का लक्षण बताते हुए कहा है कि रौद्ररस का स्थायी भाव क्रोध है। इसका उद्भव राक्षस, दानव तथा उद्भट प्रकृति के मनुष्यों से संग्राम के द्वारा होता है। यह क्रोध बलात् खींचना, दुर्वचन, अपमान, असत्य वचनों द्वारा आरोप, कठोर वचन, द्रोह, मात्सर्य आदि विभावों द्वारा उत्पन्न होता है। इसके पीटना, फाड़ना, पीड़ा देना, छेदन, शस्त्रों का लाना, शस्त्रों का फेंकना, शस्त्रों से प्रहार, रुधिर निकालना और इसी प्रकार के अन्य कार्य हैं। इसका अभिनय रक्तनयन, स्वेद प्रसार, भ्रुकुटी चढ़ाना, दाँत व ओष्ठ चबाना, गाल फुलाना, हाथों का मसलना आदि अनुभावों द्वारा किया जाय। इसमें मोह, उत्साह, आवेग, अमर्ष, चपलता, उग्रता, स्वेद, कम्पन रोमांच एवं गद्गद आदि संचारी भाव होते हैं।²

1 आर० वी० कृष्णमाचारियर द्वारा संपादित वासवदत्ता, पृ०—115, 116

2 युद्धप्रहारधातनविकृतच्छेदनविदारणैश्चैव।

संग्रामसम्भ्रमाद्यैरेभिः संजायते रौद्रः॥

नानाप्रहरणमोक्षैः शिरःकबन्धभुजकर्तनैश्चैव।

एभिश्चार्थविशेषैरस्याभिनयः प्रयोक्तव्यः॥

इति रौद्रारसे रौद्रवाग्दग्धेष्टितः।

शस्त्रप्रहारभूयिष्ठ उग्रकर्मक्रियात्मकः॥

—नाट्यशास्त्र, 6/65-67

रुद्रट ने रौद्र रस की परिभाषा इस प्रकार दी है—

रौद्रः क्रोधप्रकृतिः क्रोधोऽरिकृतात्पराभवादभवति ।

तत्र सुदारुणचेष्टः सामर्षो नायकोऽत्युग्रः ।।

तत्र निजांसस्फालनविषमभ्रकुटीक्षणायुधोत्क्षेपाः ।

सन्ति स्वशक्तिशंसाप्रतिपक्षाक्षेपदलनानि ।।¹

रौद्र रस की प्रकृति क्रोध है। शत्रु द्वारा किये गये अपमान से क्रोध उत्पन्न होता है। इसका नायक अति दारुण चेष्टाओं से युक्त, क्रोधयुक्त और अति उग्र होता है। अपने कन्धे फड़काना, भ्रकुटि तानना, आँखे तरेरना, शस्त्र उठाना, अपना पराक्रम बखान करना और शत्रु के आक्षेपों का आक्रामक जवाब देना— ये सब इस रस में होते हैं।

दशरूपककार के विचारानुसार मत्सर अथवा शत्रु के द्वारा किये गये अपकार आदि कारणों से क्रोध उत्पन्न होता है। इसी क्रोध नामक स्थायी भाव का परिपोष रौद्र रस है। शस्त्र को बार—बार चमकाना, डींगे मारना, पृथ्वी पर चोट करना, प्रतिज्ञा करना आदि इसके अनुभाव हैं। रौद्र रस में अमर्ष, मद, स्मृति, चपलता, असूया, औग्रय, वेग आदि संचारी भाव प्राप्त होते हैं—

क्रोधो मत्सरवैरिवैकृतयैः पोषोऽस्य रौद्रोऽनुजः

क्षोभः स्वाधरदंशकम्पभ्रकुटिस्वेदास्यरागैर्युतः ।

शस्त्रोल्लासविकत्थनांसधरणीघातप्रतिज्ञाग्रहै—

रत्रामर्षमदौ स्मृतिश्चपलतासूयौग्रन्धवेगादयः ।।²

1 काव्यालंकार, 15/13,14

2 दशरूपक, 4/74

शिङ्गभूपाल की दृष्टि में रौद्र रस का लक्षण इस प्रकार है—

विभावैरनुभावैश्च स्वोचितैर्व्यभिचारिभिः ।।

क्रोधः सदस्यरस्यत्वं नीतो रौद्र इतीर्यते ।

आवेगगर्वोग्रयामर्षमोहाद्या व्यभिचारिणः ।।

प्रस्वेदभ्रकुटीनेत्ररागाद्यास्तत्र विक्रियाः ।¹

विश्वनाथ के अनुसार रौद्र रस का स्थायी भाव क्रोध है। इसका वर्ण लाल और देवता रुद्र हैं। इसमें आलम्बन, शत्रु होता है और उसकी चेष्टायें उद्दीपन होती हैं। मुक्का मारने, गिराने, बुरी तरह काटने, फाड़ देने, युद्ध करने के लिये व्याकुल होने आदि के वर्णन से रौद्ररस की अति प्रदीप्ति होती है। भृकुटि भंग, ओंठ चबाना, ताल ठोंकना, डाँटना, अपने पूर्व कृत कार्यों की प्रशंसा करना, शस्त्र घुमाना, उग्रता, आवेग, रोमांच, स्वेद, वेपथु और मद इस रस के अनुभाव होते हैं। आक्षेप करना, क्रूरता से देखना, मोह और अमर्ष आदि इसके व्यभिचारी होते हैं।

रौद्रः क्रोधस्थायिभावो रक्तो रुद्राधिदैवतः ।

आलम्बनमरिस्तत्र तच्चेष्टोद्दीपनं मतम् ।।

मुष्टिप्रहारपातनविकृतच्छेदावदारणैश्चैव ।

संग्रामसंभ्रमाद्यैरस्योद्दीप्तिर्भवेत्प्रौढा ।।

भूविभङ्गौष्ठनिर्दशबाहुस्फोटनतर्जनाः ।

आत्मावदानकथनमायुधोत्क्षेपणानि च ।।

¹ रसार्णवसुधाकर, 2 / 243-245.

उग्रतावेगरोमांचस्वेदवेपथवो मदः ।

अनुभावास्तथाक्षेपक्रूरसंदर्शनादयः ।।

मोहमर्षादयस्तत्र भावाः स्युर्व्यभिचारिणः ।¹

रौद्र रस का स्पष्ट उदाहरण कवि ने नहीं दिया है। कुछ स्थलों पर ही 'क्रोध' नामक भाव की उत्पत्ति होती है। सिंह द्वारा हस्ती पर आक्रमण करने² रात्रि वर्णन के समय भगवान् शंकर के ताण्डव नृत्य करने,³ वनमक्षिकाओं द्वारा काटने से क्रुद्ध वानर शिशुओं⁴ के वर्णन में तथा समुद्र के अपनी लहरों द्वारा⁵ क्रोध प्रकट करने में ही रौद्र रस संकेतित होता है।

हास्य रस—

हास्य रस का स्वरूप हास नाम स्थायी भाव वाला होता है। यह अन्य व्यक्ति के विकृत वेष अलंकार, ठिढाई, चंचलता, कुहक, व्यर्थ बकवास, हीन अवयवों के दर्शन, दोषों के देखने तथा इसी प्रकार की अन्य बातों वाले विभावों के द्वारा उत्पन्न होता है। इसका अभिनय ओठ, नाक तथा गले के फड़काने दृष्टि को संकुचित अथवा विस्तृत करने, स्वेद, मुंह के लाल होने तथा बगली झांकने आदि अनुभावों के द्वारा किया जाय। इसके संचारी भाव हैं—आलस्य, अवहित्था, तन्द्रा, निद्रा, स्वप्न, प्रबोध तथा असूया। यह हास्य दो प्रकार का होता है— आत्मस्थ तथा तरस्थ। जब मनुष्य

1 साहित्यदर्पण, 3/227-231

2 प० शंकरदेव शास्त्री द्वारा संपादित वासवदत्ता, पृ०-94, 95

3 प० शंकरदेव शास्त्री द्वारा संपादित वासवदत्ता, पृ०-203

4 प० शंकरदेव शास्त्री द्वारा संपादित वासवदत्ता, पृ०-284

5 प० शंकरदेव शास्त्री द्वारा संपादित वासवदत्ता, पृ०-288

स्वयं हँसने लगे तो आत्मस्थ तथा दूसरों को हँसायें तो परस्थ होता है।¹

हास्य के छः भेद हैं—स्मित, हसित, विहसित, उपहसित, अपहसित, अतिहसित। इनमें से प्रत्येक दो प्रकार का होकर उत्तम, मध्यम तथा अधम प्रकृति के व्यक्तियों में प्रयुक्त किये जाता हैं। उत्तम प्रकृति के मनुष्यों में स्मित तथा हसित, मध्यजन में विहसित तथा उपहसित एवं अधमप्रकृति के मनुष्यों में अपहसित तथा अतिहसित प्रयुक्त किये जाते हैं।²

रुद्रट के शब्दों में—

हास्यो हासप्रकृतिर्हासो विकृतांगवेषचेष्टाभ्यः।

भवति परस्थाभ्यः स च भूम्ना स्त्रीनीचबालगतः॥

नयनकपोलविकासी किञ्चिल्लक्ष्यद्विजोऽप्यसौ महताम्।

मध्यानां विवृताभ्यः सशब्दवाष्पश्च नीचानाम्॥³

अर्थात् हास्य रस की प्रकृति हास है। दूसरों में स्थित विकृत अंग, विकृत वेष तथा विकृत चेष्टाओं से हास उत्पन्न होता है। विशेष रूप से स्त्री, नीच व्यक्ति और बालक इसके नायक होते हैं। इसमें नेत्र तथा कपोल विकसित हो जाते हैं। उत्तम नायकों में हास में दाँत अल्प मात्रा में दिखते हैं। मध्यम नायकों के हास में मुख पूरी तरह से खुल जाता है तथा अधम नायकों में हास में कहकहे के साथ थूक गिरता है।

1 विपरीतालङ्कारैर्विकृताचाराभिधानवेषैश्च।

विकृतैरङ्गविकारैरहसतीति रसः स्मृतो हास्यः॥

विकृताचारैर्वाक्यैरङ्गविकारैश्च विकृतवेषैश्च।

हासयति जनं यस्मात्तस्माज्ज्ञेयो रसो हास्यः॥ —नाट्यशास्त्र, 6/50, 51.

2 स्मितमथ हसितं विहसितमुपहसितं चापहसितमतिहसितम्।

द्वौ द्वौ भेदौ स्यातामुत्तममध्याधमप्रकृतौ॥

स्मितहसिते ज्येष्ठानां मध्यानां विहसितोपहसिते च।

अधमानामहसितं ह्यतिहसितं चापि विज्ञेयम्॥

—नाट्यशास्त्र, 6/53,54

3 काव्यालंकार, 15/11, 12

धनंजय के शब्दों में—

विकृताकृतिवाग्बैरात्मनोऽथ परस्य वा ।

हासः स्यात्परिपोषोऽस्य हास्यस्त्रिप्रकृतिः स्मृतः ॥¹

अर्थात् स्वयं अथवा दूसरे के आकार वाणी तथा वेष में उत्पन्न विकार को देखकर हास की उत्पत्ति होती है। इस हास नामक स्थायी भाव का परिपोष हास्य रस कहलाता है।

शिङ्गभूपाल ने हास्य रस के दो भेदों आत्मस्थ तथा परस्थ का उल्लेख करते हुए हास्य रस का लक्षण इस प्रकार दिया है—

विभावैरनुभावैश्च स्वोचितैर्व्यभिचारिभिः ॥

हासः सदस्यरस्यत्वं नीतो हास्य इतीर्यते ।

तत्रालस्यग्लानिनिद्राबोधाद्या व्यभिचारिणः ॥

एष द्वेधा भवेदात्मपरस्थितिविभागतः ।

आत्मस्थस्तु यदा स्वस्य विकारैर्हसितः स्वयम् ॥²

साहित्यदर्पणकार ने विकृत आकार, वाणी, चेष्टा आदि से हास्य रस का आविर्भाव माना है। इसका स्थायी भाव 'हास' है। वर्ण शुक्ल और अधिष्ठातृ देवता प्रमथ अर्थात् शिवगण हैं। जिसकी विकृत आकृति, वाणी, वेष तथा चेष्टा आदि को देखकर लोग हँसे वह यहाँ आलम्बन और उसकी चेष्टा आदि उद्दीपन विभाव होते हैं। नयनों का मुकुलित होना और वदन का विकसित होना इस रस के अनुभाव हैं।

1 दशरूपक, 4/75.

2 रसार्णवसुधाकर, 2/226-228

निद्रा, आलस्य, अवहित्था आदि सचारी भाव होते हैं—

विकृताकारवाग्धेषचेष्टादे कुहकादभवेत् ।

हास्यो हास्यस्थायिभाव श्वे प्रमथदैवत ॥

विकृताकारवाक्चेष्ट यमलोक्य हसेज्जन ।

तदत्रालम्बन प्राहुस्तच्चेष्टोददीपन मतम् ॥

अनुभावो ऽक्षिस कोचवदनरमेरतादय ।

निद्रालस्यावहित्थाद्या अत्र स्युर्व्यभिचारिण ॥¹

हास्य रस का उदाहरण गोवर्धन पर्वत को धारण करने वाले श्रीकृष्ण के प्रसंग में प्राप्त होता है— तुम थक गये हो, पर्वत को छोड़ दो, हम सभाले रहेगे, इस प्रकार गोपो के कहने पर हरि ने अपनी भुजा को कछ शिथिल कर लिया, तब गोपो की भुजाएँ भार से झुक गयी और व्यर्थ हो गयी, पर्वत के भार को सभाल न सकी। तब हरि हँसने लगे। इस प्रकार हँसते हुए हरि विजय को प्राप्त हो।²

प्रस्तुत उदाहरण में गोप आलम्बन विभाव तथा उनकी गर्व पूर्ण उक्ति उददीपन विभाव है। भुजाओं का टेढ़ा होना अनुभाव तथा हर्ष आदि व्यभिचारी भाव हैं। उनसे उत्पन्न हास नामक स्थायी भाव होने से यहाँ हास्य रस है।

इस प्रकार प्रस्तुत विवरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि सुबन्धु ने वासवदत्ता कथा में विभिन्न रसों का समायोजन अत्यन्त कुशलता से किया है।

1 साहित्यदर्पण 2/214-216

2 प० शंकरदेव शास्त्री द्वारा संपादित वासवदत्ता भूमिका श्लोक-2

षष्ठ अध्याय

वासवदत्ता में प्रतिबिम्बित समाज एवं
संस्कृति

षष्ठ अध्याय

वासवदत्ता में प्रतिबिम्बित समाज एवं संस्कृति

साहित्य को समाज का दर्पण माना गया है। काल विशेष के सामाजिक तथा सांस्कृतिक स्वरूप को जानने के लिये तत्कालीन साहित्य का अध्ययन करना आवश्यक है। कवियों की सूक्ष्म दृष्टि समाज के विविध पक्षों को कलात्मक रूप से एक साथ एकत्रित कर भविष्य के लिये आधार का निर्माण करती है। समाज के बदलते स्वरूप तथा बदलती धारणाओं के मूल में साहित्य का ही किंचित् योगदान होता है। इसका स्पष्ट प्रमाण संस्कृत साहित्य है। वैदिक कालीन साहित्य जहाँ अत्यधिक क्लिष्ट स्वरूप में प्राप्त होता है, वहीं वैदिकेतर लौकिक कवियों ने संस्कृत भाषा के प्रचार-प्रसार के लिये अपनी कृतियों की रचना अत्यधिक सरल भाषा में की है। इसके अतिरिक्त मानवीय मूल्यों के पतन के कारण आधुनिक कवियों की रचनाओं में क्रान्ति के स्वर मुखरित हैं।

सुबन्धु ने अपनी गद्य कथा में तत्कालीन समाज का अत्यन्त कुशलता से चित्रण किया है। भारतीय इतिहास में गुप्त काल को स्वर्ण युग की संज्ञा दी गयी है। सुबन्धु के उल्लेखों में तत्कालीन समाज के वैभव का जहाँ स्पष्ट दर्शन होता है, वहीं तत्कालीन समय की सामाजिक व्यवस्था की अनेक विशेषताएँ दृष्टिगोचर होती हैं।

आश्रम व्यवस्था—

सुव्यवस्थित जीवन व्यतीत करने की पद्धति के रूप में वैदिक मनीषियों ने आश्रम व्यवस्था का निरूपण किया है। प्राचीन काल में मनुष्य की आयु सौ वर्ष मानी

गयी है।¹ इस आश्रम व्यवस्था के अन्तर्गत सम्पूर्ण जीवन को चार आश्रमों में विभाजित करने की परिकल्पना की गई है। ये चार आश्रम हैं— ब्रह्मचर्य आश्रम, गृहस्थाश्रम, वानप्रस्थाश्रम तथा संन्यासाश्रम। इन सभी का जीवन में पृथक्-पृथक् महत्त्व है। ये चारों आश्रम मनुष्य को कर्म करते हुए भी उनमें लिप्त न होने की शिक्षा देते हैं, जिससे प्राणी मोक्ष प्राप्ति की ओर अग्रसर हो सके। यह परिकल्पना नैतिक मूल्यों के अनुरूप संयमित जीवन के प्रति सम्यक् दृष्टिकोण की परिचायक है। सुबन्धु की सूक्ष्म दृष्टि से जीवन की यह व्यवस्था अच्युत नहीं रही है। उनके काव्य में यत्र तत्र आश्रम व्यवस्था का स्पष्ट स्वरूप परिलक्षित होता है।

ब्रह्मचर्य आश्रम—

कवि ने विभिन्न संकेतों से यह स्पष्ट कर दिया है कि उस समय छात्रों की शिक्षा-दीक्षा के लिये मठों तथा विद्यालयों की व्यवस्था थी जिनमें विद्यार्थी अध्ययन के लिये जाते थे।² सुबन्धु ने नायक कन्दर्पकेतु को सम्पूर्ण कलाओं का आगार उसी प्रकार बताया है जिस प्रकार चन्द्रमा सम्पूर्ण कलाओं का आश्रय स्थल है—

येन च चन्द्रेणैव सकलकलाकुलगृहेण।³

सम्पूर्ण कलाओं की प्राप्ति अध्ययन के बिना नहीं की जा सकती। अतः यह स्पष्ट हो जाता है कि नायक ने किसी आश्रम अथवा गुरुकुल में जाकर शिक्षा ग्रहण की होगी अथवा उसके पिता ने राजभवन में ही उसकी शिक्षा की व्यवस्था की होगी।

सुबन्धु ने जप तथा वेदाध्ययन करने वाले तपस्वियों को जपा पुष्प से युक्त

1 कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः।

एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे॥ —ईशावास्योपनिषद्, मन्त्र-2

2 प्रबुद्धाध्ययन कर्मठेषु मठेषु —आर० वी० कृष्णमाचारियर द्वारा संपादित वासवदत्ता, पृ०-58.

3 पं० शंकरदेव शास्त्री द्वारा सम्पादित वासवदत्ता, पृ०-30.

तथा माला से सुशोभित शृंगार के समान सुन्दर कृतमाल वृक्ष से विभूषित किया है—

तपस्विभिरिव जपासक्तैः प्रसाधितैरिव कृतमालोपशोभितैः।¹

गृहस्थ आश्रम—

राजा शृंगारशेखर का वर्णन गृहस्थ आश्रम का स्पष्ट उदाहरण है। कवि ने नायक के केवल पिता का ही उल्लेख किया है, किन्तु शृंगारशेखर के परिवार का विस्तृत एवं स्पष्ट वर्णन मिलता है। गद्यकार ने शृंगारशेखर उसकी पत्नी रानी अनंगवती तथा पुत्री वासवदत्ता का विवरण अपनी कृति में दिया है।² सुबन्धु ने शृंगारशेखर को भोग विलास सम्पन्न, पराक्रमी, धर्मात्मा, तथा विविध कार्यों का सम्पादन करने वाला बताया है—

तत्र सुरतरभसखिन्नप्रसुप्तसीमन्तिनीरत्नताटंकमुद्रांकितबाहुदण्डप्रचण्डप्रतिपक्षलक्ष्मी
केशपाशकुसुममालामोदसुरभितकरकमलः, प्रशस्तकेदार इव बहुधान्यकार्यसम्पादकः पार्थ
इव सुभद्रान्वितः सभीमसेनश्च, कृष्ण इव सत्यभामोपेतः सबलश्च, शृंगारशेखरो नाम
राजा प्रतिवसति स्म। यो बलभित्, पावकः, धर्मराट्, निऋतिः, प्रचेताः, सदागतिः,
धनदः, शंकर इत्यष्टमूर्तिरप्यनष्टमूर्तिः।³

संन्यास आश्रम—

वासवदत्ता के शाप वर्णन के प्रसंग में वर्णित मुनि के आश्रम से यह ज्ञात हो जाता है कि आश्रमों की व्यवस्था थी जिनमें ऋषि मुनि अपने धार्मिक अनुष्ठान किया

1 पं० शंकरदेव शास्त्री द्वारा संपादित वासवदत्ता, पृ०—118

2 पं० शंकरदेव शास्त्री द्वारा संपादित वासवदत्ता, पृ०—120—133

3 पं० शंकरदेव शास्त्री द्वारा संपादित वासवदत्ता, पृ०—120. 121.

करते थे।¹ संन्यासियों का भी उल्लेख किया है। यथा—

स्फुटिककमण्डलुरिव नभोव्रतिनः²

वर्षा ऋतु के वर्णन के प्रसंग में कमण्डलु को धारण किये हुए संन्यासी का उल्लेख मिलता है। कवि के अनुसार वर्षा ऋतु ने जल से युक्त कमण्डलु को धारण करने वाले संन्यासी के समान मेघ तथा ओलों को धारण कर रखा था—

तापस इव धृतजलदकरकः³

उस समय में रज अर्थात् धूल उसी प्रकार दब गयी थी जिस प्रकार किसी तपस्वी का रजोगुण शान्त हो जाता है—

महातपस्वीव प्रशमितरजः प्रसरः⁴

वर्ण व्यवस्था—

प्राचीन समय से ही समाज ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र चार वर्णों में विभक्त रहा है। प्रत्येक वर्ण का अपना पृथक्-पृथक् कार्य है। इस विभाजन का मुख्य कारण संभवतः सामाजिक व्यवस्था को सुचारु रूप से संचालित करना रहा होगा। यही कारण है कि जगत् के आविर्भाव के साथ ही सामाजिक आधार के रूप वर्णाश्रम व्यवस्था की कल्पना की गयी। इसी से व्यक्ति और समष्टि का कल्याण हो सकता है। सृष्टि विषयक विचारधारा को प्रतिपादित करने वाला पुरुष सूक्त इसी चिन्तन को प्रतिपादित करता है। यहाँ विराट् पुरुष के अंगों से ही चारों वर्णों की उत्पत्ति बतायी गयी है।⁵

1 सुबन्धु का सांस्कृतिक सर्वेक्षण—डॉ० सलमा महफूज़, जर्नल ऑफ गंगानाथ झा केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ, इलाहाबाद 2000 Vol.56

2 पं० शंकरदेव शास्त्री द्वारा संपादित वासवदत्ता, पृ०-215

3 पं० शंकरदेव शास्त्री द्वारा संपादित वासवदत्ता, पृ०-299

4 पं० शंकरदेव शास्त्री द्वारा संपादित वासवदत्ता, पृ०-299

5 ऋग्वेद, पुरुष सूक्त, मन्त्र-15

ऋग्वेद के पश्चात् रामायण, महाभारत¹, पुराणों², स्मृतियों³ में तथा लौकिक साहित्य में भी वर्ण व्यवस्था को उचित स्थान प्राप्त हुआ। सुबन्धु कालीन समाज भी परम्परागत मान्यताओं के अनुसार वर्ण व्यवस्था पर अवस्थित था।

ब्राह्मण—

ब्राह्मणों का कार्य अध्ययन अध्यापन माना गया है। किन्तु रामायण महाभारत इत्यादि महाकाव्यों में उन्हें विविध कर्मों को संपादित करने वाला भी बताया गया है। मनुस्मृति के अनुसार ब्राह्मण को धर्म की रक्षा करने में समर्थ होने के कारण पृथ्वी पर श्रेष्ठ माना गया है—

ब्राह्मणो जायामानो हि पृथिव्यामधिजायते।

ईश्वरः सर्वभूतानां धर्मकोशस्य गुप्तये॥⁴

ब्राह्मण के कर्मों का विवेचन करते हुए मनुस्मृति में कहा गया है कि पढ़ाना, पढ़ना, यज्ञ कराना, करना, दान देना तथा दान लेना इन कर्मों को ब्रह्मा ने ब्राह्मणों के लिये बनाया है।⁵ सुबन्धु ने ब्राह्मणों को अपनी कथा में सम्माननीय स्थान प्रदान किया है। वे वेदाध्ययन करते थे—⁶ प्रजाओं में ब्राह्मणों का वध नहीं किया जाता था—

1 ब्राह्मणो मुखतः सृष्टतः ब्रह्मणो राजसत्तम।
बाबहुभ्यां क्षत्रियः सृष्टः उरुभ्यां वैश्य एव च॥
वर्णानां परिचर्यार्थं त्रयाणां भारतर्षभ।
वर्णश्चतुर्थः संभूत पदभ्यां शूद्रो विनिर्मितः।
—महाभारत, शान्तिपर्व, 112/4

2 क. कूर्म पुराण, 2/25,26, 2/38-41.
ख. शिव पुराण, वायु संहिता 15/
ग. विष्णु पुराण, 6/5,6
घ. गरुड़ पुराण, 4/34.
ड. श्रीमद्भागवत पुराण, 2/5/37.

3 मनुस्मृति, 1/37

4 मनुस्मृति, 1/99

5 अध्यापनमध्ययनं यजनं याजनं तथा। दानं प्रतिग्रहं चैव ब्राह्मणानामकल्पयत्॥ —मनुस्मृति, 1/88

6 द्विजकुलमिव श्रुति प्रणयि तदीक्षणयुगलम् —आर० वी० कृष्णमाचारियर द्वारा संपादित वासवदत्ता, पृ०-200

द्विजाधातः सुरतेषु न प्रजासु¹

वे पूज्यनीय समझे जाते थे—

द्विजकुल स्थितिमिव चारुचरणाम्।²

समाज में ब्राह्मणों के श्रेष्ठ स्तर इसी से बोध हो जाता है कि राजकुमार कन्दर्पकेतु वासवदत्ता के शापवश प्रस्तर प्रतिमा बन जाने पर अपने भाग्य को दोष देते हुए कहता है कि क्या मैंने ब्राह्मणों का अपमान किया था जो आज मुझे यह दुःख प्राप्त हुआ है—

किं नामाधिक्षिप्ता भूदेवाः।³

लेकिन यहाँ यह भी दर्शनीय है कि सुबन्धु ने कर्म के अनुसार ही ब्राह्मणों की उत्कृष्टता तथा निकृष्टता का प्रतिपादन किया है। जन्म के आधार पर वर्णश्रेष्ठता को वे उचित नहीं मानते। यही कारण है कि उन्होंने अवांछनीय भोग विलासों में लिप्त ब्राह्मणों के प्रति तिरस्कृत दृष्टि रखी है। प्रातः काल के समय के वर्णन करते हुए सुबन्धु ने डूबते हुए चन्द्रमा की। तुलना मदिरापान करने वाले ब्राह्मण से की है—

मत्संगमादतिप्रवृद्धो वारुणीसंगमाद् द्विजपतिरेष पततीति हसन्त्यामिवाखण्ड—
शालायाम्,⁴

इसी प्रकार जब वासवदत्ता को प्राप्त करने के लिये दो सेनाओं में युद्ध होता है तब युद्ध में गिरते हुए सैनिकों की उपमा कवि ने मदिरापान करने वाले ब्राह्मण से दी है—

1 आर० वी० कृष्णमाचारियर द्वारा संपादित वासवदत्ता, पृ०—148

2 आर० वी० कृष्णमाचारियर द्वारा संपादित वासवदत्ता, पृ०—303.

3 आर० वी० कृष्णमाचारियर द्वारा संपादित वासवदत्ता, पृ०—326

4 प० शंकरदेव शास्त्री द्वारा संपादित वासवदत्ता, पृ०—270

कश्चित्सुरापद्विज इव पपात।¹

अतः यह स्पष्ट है कि तत्कालीन समाज में उत्तम गुणों से युक्त तथा दुर्गुणों से युक्त पतित ब्राह्मण निवास करते थे। इसीलिये सुबन्धु ने वासवदत्ता में दोनों प्रकार के ब्राह्मणों का उल्लेख किया है।

क्षत्रिय—

मनुस्मृति में क्षत्रियों के कर्मों पर प्रकाश डालते हुए कहा गया है—

प्रजानां रक्षणं दानमिज्याऽध्ययनमेव च।

विषयेष्वप्रसक्तिश्च क्षत्रियस्य समासतः॥²

अर्थात् प्रजा की रक्षा करना, दान देना यज्ञ करना, पढ़ना, विषय में आसक्ति न रखना संक्षेप में ब्रह्मा द्वारा इन कर्मों को क्षत्रियों के लिये बनाया गया।

अन्य वर्णों की अपेक्षा क्षत्रिय वर्ण की चर्चा सुबन्धु ने अधिक स्पष्टता से की है। इसका कारण यह है कि नायक तथा नायिका दोनों का संबंध राजकुलों से है। नायक के पराक्रम का वर्णन करते हुए कवि ने कहा है उसके प्रताप के कारण उसका यश चारों ओर फैल गया था—

यस्य च समरभुवि भुजदण्डेन कोदण्डं, कोदण्डेन शरा , शरैररि शिरः,
अरिशिरसा भूमण्डलं, भूमण्डलेनानुभूतपूर्वो नायकः, नायकेन कीर्तिः, कीर्त्या च सप्त
सागराः, सागरै कृतयुगादिराजचरितस्मरणम्, स्मरणेन स्थैर्यम् स्थैर्येण प्रतिक्षणमाश्चर्य-
मासादितम्।³

1 प० शंकरदेव शास्त्री द्वारा संपादित वासवदत्ता, पृ०-314

2 मनुस्मृति, 1/89

3 आर०वी कृष्णचारियर द्वारा संपादित वासवदत्ता, पृ०-53

राजा चिन्तामणि समस्त राजाओं पर विजय प्राप्त कर चुका था। उसके चरणों की नख रूपी मणियाँ राजाओं के मुकुट पर लगी हुई चूड़ामणि रूपी कसौटी पर घिसने के कारण निर्मल हो गयी थीं।¹

कवि ने नायिका के पिता राजा शृंगारशेखर का वर्णन करते हुए उसे इन्द्र से श्रेष्ठ वर्णित किया है—

सुराणां पाताऽसौ स पुनरतिपुण्यैकहृदयो
ग्रहस्तस्यास्थाने गुरुचित्तमार्गे स निरतः।
करस्तस्यात्यर्थं वहति शतकोटिप्रणयितां
स सर्वस्वं दाता तृणामिव सुरेन्द्र विजयते॥²

अर्थात् इन्द्र मात्र देवताओं का रक्षक, मद्यपान करने वाला, अनुचित मार्ग पर चलने वाला तथा सदैव वज्र को हाथ में धारण करने वाला है। किन्तु शृंगारशेखर पवित्र हृदय वाला, उचित मार्ग का अनुसरण करने वाला तथा याचक को अपना सर्वस्व तिनके के समान मानकर याचक को दान कर देता था।

वासवदत्ता का अध्ययन करने पर ऐसा प्रतीत होता है कि उस समय राजाओं के लिये कुछ नियम थे जिनका पालन न करने पर उन्हें 'कु नृपति' कहा जाता था—

कुनृपतिमेव नक्षत्रपथ गामिना³

वैश्य—

वासवदत्ता में स्थान—स्थान पर वैश्यों का उल्लेख मिलता है। किन्तु यह वर्णन

1 आर०वी. कृष्णचारियर द्वारा संपादित वासवदत्ता, पृ०—17

2 आर०वी. कृष्णचारियर द्वारा संपादित वासवदत्ता, पृ०—142, 143.

3 पं० शंकरदेवशास्त्री द्वारा संपादित वासवदत्ता, पृ०—313.

संक्षिप्त ही है। पशुओं की रक्षा करना, दान देना, यज्ञ करना, पढ़ना, व्यापार करना, ब्याज लेना और खेती करना ये वैश्यो के कर्म कहे गये हैं।¹ सुबन्धु ने वस्त्र व्यापारी तथा माप-तौल का कार्य करने वाले वैश्यो की चर्चा की है। रात्रि के समय आकाश सूर्य से तथा बाजार माप-तौल का कार्य करने वाले व्यापारियो से रहित हो गया था—

तुलाधारशून्याया पण्यवीथिकायामिव दिवि²

सूर्य की किरणो से उपमा देते हुए कवि ने वस्त्र व्यापारियो का उल्लेख किया है जिससे यह पता चलता है कि वस्त्र व्यापार अत्यन्त विकसित था—

ततो वणिजीव प्रसारिताम्बरे।³

ऐसा प्रतीत होता है कि तत्कालीन समाज में कुछ वैश्य व्यापार क्योंकि कवि ने गणनासंबंधी कारिका का निर्माण करने वाले ज्योतिःशास्त्र में निष्णात शूलवाल नामक वैश्य का वर्णन किया है—

शूलपालचित्तवृत्तिमिव फलितगणिकारिकाम्।⁴

शूद्र—

यद्यपि सुबन्धु ने अपनी कृति में शूद्रो का स्पष्ट रूप से वर्णन नहीं किया है तथापि उनके द्वारा प्रयुक्त कुछ शब्दों के प्रयोग से यह ज्ञात होता है कि उस समय शूद्र विभिन्न कार्यों में संलग्न थे।⁵ यथा—कवि ने क्रकच अर्थात् आरा शब्द का प्रयोग

1 पशूना रक्षण दानमिज्याध्मयनमेव च।

वणिक्पथ कुसीद च वैश्यस्य कृषिमेव च॥ —मनुस्मृति 1/90

2 प० शकरदेवशास्त्री द्वारा संपादित वासवदत्ता, पृ०—195

3 प० शकरदेवशास्त्री द्वारा संपादित वासवदत्ता, पृ०—276

4 प० शकरदेवशास्त्री द्वारा संपादित वासवदत्ता, पृ०—263

5 सुबन्धु का सांस्कृतिक सर्वेक्षण—डॉ० सलमा महफूज जरनल ऑफ गगानाथ झा केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ इलाहाबाद 2000 Vol 56

किया है जिससे बढई जाति का पता चलता है।¹ इसके अतिरिक्त स्वर्णकार², कुम्भकार³, तथा मछली पकडने वाली धीवर⁴जाति का उल्लेख मिलता है।⁵

धार्मिक स्थिति—

धर्म व्यवस्थित, नियंत्रित एवं मर्यादित जीवन का आधार होता है। धार्मिक स्थिति के द्वारा समाज के उच्च स्तर तथा निम्न स्तर का पता चलता है। धर्म शब्द 'धृ' धरणे धातु से 'मन्' प्रत्यय से निष्पन्न होता है। जिसका तात्पर्य है— जो तत्त्व प्राणियों को धारण करता है, पालन पोषण करता है तथा उन्हें सुख शान्ति से आप्यायित करता है उसे धर्म कहते हैं।⁶ मनुष्य की सभी प्रकार की उन्नतियों का कारण धर्म ही है।⁷ सांख्यकारिका में मनुष्य की उन्नति और अवनति को धर्म और अधर्म का फल कहा गया है—

धर्मेण गमनमूर्ध्व गमनमधस्तात् भवत्यधर्मेण।⁸

महर्षि कणाद के अनुसार मनुष्यों के ऐहलौकिक अभ्युदय तथा मोक्ष की सिद्धि का साधन धर्म है।⁹ महर्षि जैमिनि के अनुसार मनुष्यों के सम्पूर्ण अभीष्ट को सिद्ध करने वाला जो वेद प्रतिपादित साधन है वही धर्म है—

1 विरहिणा हृदय विदारयितु कृत करपत्रमिव कुसुमायुधस्य केतकीपुष्पमभासत

—प० शंकरदेव शास्त्री द्वारा संपादित वासवदत्ता, पृ०-302

2 रविदपिकज्जलितमेघकिषोपलेमेघसमयस्वर्णकारकर्षितस्वर्णरेखेव तडिदशोभत

—प० शंकरदेवशास्त्री द्वारा संपादित वासवदत्ता, पृ०-301

3 कुलालगृहा इव अभिनवभाण्डहारिण, —प० शंकरदेवशास्त्री द्वारा संपादित वासवदत्ता, पृ०-311

4 क कैवर्त इव बद्धराजीवोत्पलसाल —प० शंकरदेवशास्त्री द्वारा संपादित वासवदत्ता, पृ०-139

ख पथिकजनहृदयमत्स्य ग्रहीतु मकरकेतो पलाव पाटलिपुष्पमदृश्यत—प० शंकरदेवशास्त्री द्वारा संपादित वासवदत्ता, पृ०-146

5 'वासवदत्ता मे वर्णित वर्णाश्रम व्यवस्था—शोध पत्र, वीमेन्स कालेज पत्रिका, अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय, अलीगढ़ 2003-2004

6 प्रेमवल्लभ त्रिपाठी कृत पुरुषार्थ चतुष्टय, पृ०-42

7 प्रेमवल्लभ त्रिपाठी कृत पुरुषार्थ चतुष्टय, पृ०

8 सांख्यकारिका, कारिका-44

9 यतोऽभ्युदयनि श्रेयससिद्धि स धर्म —वैशेषिक दर्शन, 1/2

चोदनालक्षणोऽर्थो धर्मः¹

धर्म की उत्पत्ति कर्म से होती है। अतः मनुस्मृति में कहा गया है कि कर्मों के विवेचन के लिए ही धर्म तथा अधर्म का विभाग किया गया है—

कर्मणाम च विवेकार्थं धर्माधर्मौ व्यवचयत् ।

द्वन्द्वैरयोज्यच्चेमाः सुखदुःखादिभिः प्रजाः ।।²

मनु ने आचार को परम धर्म मानते हुए वेदों, स्मृति ग्रंथों, सदाचरण तथा आत्मसंतुष्टि को धर्म का आधार माना है।³ याज्ञवल्क्यस्मृति में भी इस तथ्य को स्वीकार किया गया है।⁴ महाभारत के अनुसार ब्रह्मचर्य, सत्य, दया, धृति और क्षमा ये सनातन धर्म के सनातन मूल हैं।⁵ इनमें भी सत्य ही प्रमुख है।⁶

वासवदत्ता के अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि तत्कालीन समय में लोगों की धर्म में आस्था थी। तत्कालीन समाज में जहाँ वैदिक धर्म अपनी पराकाष्ठा पर था वहीं बौद्ध तथा जैन आदि धर्मों का भी पादुर्भाव हो चुका था। लोग यज्ञ, दान तथा तप में विश्वास करते थे। वेद, उपनिषद्, पुराण तथा रामायण, महाभारत का पठन-पाठन किया जाता था। गाय को पूज्य पशु माना जाता था तथा उसकी सेवा की जाती थी।⁷ अवतारवाद को मान्यता प्राप्त थी। क्योंकि सुबन्धु ने विभिन्न देवी देवताओं के अवतारों की चर्चा की है। इससे यह भी ज्ञात होता है कि तत्कालीन

1 मीमांसा दर्शन, 1/2

2 मनुस्मृति, 1/26

3 मनुस्मृति, 1/125

4 याज्ञवल्क्यस्मृति, 1/1/7

5 महाभारत, आश्वमेधिक पर्व, 91/33,34.

6 धर्मो न वै यत्र न च नास्ति सत्यम्।

न तत् सत्यं यच्चलेनाभ्युपेतम्।। —महाभारत, उद्योग पर्व, 35/58

7 किं न प्रदक्षिणीकृता सुरभयः— पं० शंकरदेवशास्त्री द्वारा संपादित वासवदत्ता, पृ०—278.

समाज में बहुदेववाद प्रथा प्रचलित थी। कुसुमपुर नगर में मन्दिरों के निर्मित होने से यह तथ्य स्पष्ट होता है कि लोग मूर्तिपूजा किया करते थे। किन्तु एक वर्ग ऐसा भी था जो वैदिक धर्म के सिद्धान्तों का खण्डन करता था। इस वर्ग की मान्यता बौद्ध, जैन, आदि धर्मों में थी।

देवी देवता—

भारतीय धर्म में ब्रह्मा, विष्णु, तथा महेश की मान्यता सदैव से रही है। ब्रह्मा को उत्पन्न करने वाला, विष्णु को पालन करने वाला, तथा शिव को संहारक माना गया है। सुबन्धु ने भी त्रिदेवों का वर्णन अपनी कृति में किया है।

ब्रह्मा—

वेदों में ब्रह्मा को प्रजापति कहा गया है। वे प्रजनन तथा प्राणियों के रक्षक के रूप में वर्णित हैं। उन्हें आकाश, पृथ्वी, जल तथा समस्त जीवित प्राणियों के स्रष्टा के रूप में चित्रित किया गया है। श्रीमद्भागवत पुराण में उन्हें यज्ञों का विस्तार करने वाला, अनादि, अनन्त, अपार, सर्वज्ञ, अन्त्यामी, कालरूप एवं काल का विभाजन करने वाला, निर्विकार, ज्ञानस्वरूप, परमेश्वर, अजन्मा कहा गया है।¹

कवि ने 'वासवदत्ता' में ब्रह्मा को प्रजापति², विधातु,³ विधि⁴ तथा ब्रह्मा⁵ इत्यादि नामों से सम्बोधित किया है।

1 श्रीमद्भागवत पुराण, 7/3/30,31

2 क त्रिभुवनविलोभन सृष्टिमिव प्रजायते — प० शंकरदेव शास्त्री द्वारा सम्पादित वासवदत्ता, पृ०-60

ख अहो प्रजापते रूपनिर्माणकौशलम् — प० शंकरदेव शास्त्री द्वारा सम्पादित वासवदत्ता, पृ०-167

3 क विधातुरतिपीडयतो हस्तपरामर्शजनितपरिक्लेशेनैव— प० शंकरदेव शास्त्री द्वारा सम्पादित वासवदत्ता, पृ०-50

ख विश्व गणयतो विधातु शशिकठिनीखण्डेन तमोमधीश्यामेऽजिन इव वियति ससारस्यातिशून्यत्वात् शून्यबिन्दव इव विलिखिता — प० शंकरदेव शास्त्री द्वारा सम्पादित वासवदत्ता, पृ०-205

4 किमिति लोचनमयान्येव न कृतान्यगानि विधिना — प० शंकरदेव शास्त्री द्वारा सम्पादित वासवदत्ता, पृ०-174

5 ब्रह्मा लिपिकरायते — प० शंकरदेव शास्त्री द्वारा सम्पादित वासवदत्ता, पृ०-256

विष्णु—

ऋग्वेद में विष्णु को सौर देवता के रूप में सूर्य का ही दूसरा रूप कहा गया है। ऋग्वेद में विष्णु के परमपद को सदा आकाश में विद्यमान सूर्य के समान कहा गया है—

तद् विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः। दिवीव चक्षुराततम्॥¹

निरुक्त में विष्णु नाम की व्युत्पत्ति इस प्रकार दी गई है—

अथ यद् विषितो भवति तद् विष्णुर्भवति। विष्णुर्विशतेर्वा व्यश्नोतेर्वा।²

विष्णु पुराण में कहा गया है कि परात्पर आत्मसंस्थित परमात्मा, जो कि रूप, वर्ण, निर्देश से रहित है अपक्षय, विनाश, परिणाम, वृद्धि, जन्म से रहित है जिसके सम्बन्ध में इतना ही कहा जा सकता है कि वह सदा है वही इस जगत् में सर्वत्र व्याप्त है और समस्त जगत् उसमें वास करता है इसीलिये उसे वासुदेव कहा जाता है।³

राजा चिन्तामणि के वर्णन प्रसंग में विष्णु के विभिन्न अवतारों का उल्लेख मिलता है। कवि ने राजा चिन्तामणि को नृसिंह,⁴ कृष्ण⁵, वराह⁶ के रूप में वर्णित किया है। इसके अतिरिक्त सुबन्धु ने यत्र तत्र विष्णु के विभिन्न अवतारों तथा नामों की चर्चा की है। वासवदत्ता में विष्णु का नारायण⁷, चक्रीव⁸, वामन⁹,

1 ऋग्वेद, 1/22/20

2 यास्क कृत निरुक्त, 12/19

3 विष्णु पुराण, 1/2/10-12

4 नृसिंह इव दर्शिताहिरण्यकशिपुक्षेत्रदानविस्मयः, आर० वी० कृष्णमाचारियर द्वारा सम्पादित वासवदत्ता, पृ०-17

5 आर० वी० कृष्णमाचारियर द्वारा सम्पादित वासवदत्ता, पृ०-17.

6 आर० वी० कृष्णमाचारियर द्वारा सम्पादित वासवदत्ता, पृ०-17, 18.

7 नारायण इव सौकर्यसमासादित धरणिमण्डलः —पं० शंकरदेव शास्त्री द्वारा सम्पादित वासवदत्ता, पृ०-9.

8 न चक्रीव शृगालवधस्तुति समुल्लसितः —पं० शंकरदेव शास्त्री द्वारा सम्पादित वासवदत्ता, पृ०-23.

9 वामनलीलामिव दर्शितबलिविभंगाम् —पं० शंकरदेव शास्त्री द्वारा सम्पादित वासवदत्ता, पृ०-56.

जनार्दन¹ पीताम्बर², हरि³, पद्मनाभ⁴, अच्युत⁵, दामोदर⁶, इत्यादि के रूप में वर्णन किया गया है।

शिव—

ऋग्वेद में शिव का उल्लेख रुद्र के रूप में किया गया है। किन्तु रुद्र को अग्नि, वरुण, इन्द्र आदि देवताओं की अपेक्षा कम महत्त्व दिया गया है। तत्पश्चात् यजुर्वेद, अथर्ववेद तथा ब्राह्मण ग्रन्थों में अपेक्षाकृत रुद्र का महत्त्व बढ़ गया। छान्दोग्योपनिषद्⁷, बृहदारण्यक उपनिषद्⁸ तथा श्वेताश्वतर उपनिषद्⁹ आदि में रुद्र की चर्चा की गयी है। किन्तु पुराणों में शिव के सगुण तथा निर्गुण रूपों की उपासना की गयी है। कथाकार ने शिव के विविध नामों जैसे हर¹⁰, वृषध्वज¹¹, महेश्वर¹², मल्लिकार्जुन¹³, ईशान¹⁴, पशुपति¹⁵, रुद्र¹⁶, महानट¹⁷, मदनारि¹⁸,

-
- 1 जनार्दन इव विचित्रवनमाल —प० शंकरदेव शास्त्री द्वारा सम्पादित वासवदत्ता, पृ०-79
 2 लक्ष्मीरिव स्वयंवरगृहीतपीताम्बरा, —प० शंकरदेव शास्त्री द्वारा सम्पादित वासवदत्ता, पृ०-193
 3 क गरुड इव हरिणाधिष्ठित — प० शंकरदेव शास्त्री द्वारा सम्पादित वासवदत्ता, पृ०-212
 ख प० शंकरदेव शास्त्री द्वारा सम्पादित वासवदत्ता, प्रस्तावना, श्लोक 2,
 4 पद्मनाभ इवोल्लसितपद्मे— —प० शंकरदेव शास्त्री द्वारा सम्पादित वासवदत्ता, पृ०-273
 5 साधुनिवाच्युतस्थितिरमणीयम्— —प० शंकरदेव शास्त्री द्वारा सम्पादित वासवदत्ता, पृ०-289
 6 प० शंकरदेव शास्त्री द्वारा सम्पादित वासवदत्ता, प्रस्तावना, श्लोक-3
 7 छान्दोग्योपनिषद्, 3/7/4
 8 बृहदारण्यक उपनिषद्, 3/9/4
 9 श्वेताश्वतर उपनिषद्, 3/2/4
 10 क हर इव महासेनानुगतो निर्वर्तितमारश्च —आर० वी० कृष्णमाचारियर, द्वारा संपादित वासवदत्ता पृ०-21
 ख हरकण्ठकालिमसनाभि, —आर० वी० कृष्णमाचारियर, द्वारा संपादित वासवदत्ता, पृ०-226
 11 स हिमानीगिरि स्थितो वृषध्वज —आर० वी० कृष्णमाचारियर, द्वारा संपादित वासवदत्ता, पृ०-31
 12 क कैलास इव महेश्वरोप भुक्तकोटि —आर० वी० कृष्णमाचारियर द्वारा संपादित वासवदत्ता, पृ०-43
 ख महेश्वरेणैव चन्द्र दधता —आर० वी० कृष्णमाचारियर, द्वारा संपादित वासवदत्ता, पृ०-130
 13 श्रीपर्वत इव सन्निहितमल्लिकार्जुन —आर० वी० कृष्णमाचारियर, द्वारा संपादित वासवदत्ता, पृ०-130
 14 ईशानुभूतिसचय इव सन्ध्योच्छलित —आर० वी० कृष्णमाचारियर, द्वारा संपादित वासवदत्ता, पृ०-44
 15 क पशुपतिताण्डवलीलामिव उल्लसच्चक्षु श्रवसम् —आर० वी० कृष्णमाचारियर, द्वारा संपादित वासवदत्ता पृ०-76
 ख पशुपतिरिव नागनिश्वाससमुत्क्षिप्तभूति —आर० वी० कृष्णमाचारियर, द्वारा संपादित वासवदत्ता, पृ०-99
 16 रुद्र इव विरुपाक्ष —आर० वी० कृष्णमाचारियर, द्वारा संपादित वासवदत्ता, पृ०-84
 17 महानटबाहुनेव बद्धभुजगाकेन —आर० वी० कृष्णमाचारियर द्वारा संपादित वासवदत्ता, पृ०-132
 18 चैत्यमिव मदनारिदग्धस्य मकरकेतो, —आर० वी० कृष्णमाचारियर, द्वारा संपादित वासवदत्ता, पृ०-247

नीलकण्ठ¹, शर्व² इत्यादि का वर्णन किया है।

ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव की ही भाँति सरस्वती लक्ष्मी, पार्वती की महत्ता भी सर्वविदित है। सरस्वती को ज्ञान की देवी कहा गया है। लक्ष्मी विष्णु की पत्नी तथा धन की देवी मानी जाती है। पार्वती के नौ रूपों की पूजा की जाती है।

सरस्वती—

अपने ग्रन्थ का शुभारम्भ सरस्वती सुबन्धु की अराधना से किया है—

करबदरसदृशमखिलं भुवनतलं यत्प्रसादतः कवयः।

पश्यन्ति सूक्ष्ममतयः सा जयति सरस्वती देवी।।³

इसके अतिरिक्त उन्होंने यह भी स्वीकार किया है कि सरस्वती की कृपा से ही उन्होंने ने प्रत्यक्षर श्लेष से युक्त इस कृति का प्रणयन किया है।⁴ लक्ष्मी तथा सरस्वती की एक साथ प्राप्ति दुर्लभ है। किन्तु कवि ने नायक कन्दर्पकेतु को लक्ष्मी तथा सरस्वती के स्पर्धागृह के रूप में वर्णित किया है।⁵

लक्ष्मी—

लक्ष्मी धन की देवी तथा चंचल प्रवृत्ति की है। कवि ने लक्ष्मी को विविध रूपों में चित्रित किया है। कहीं उन्होंने शिप्रा नदी के तट की तुलना लक्ष्मी से की है⁶ तो कहीं चन्द्रमा को लक्ष्मी के कुण्डल के समान बताया है।⁷ लक्ष्मी कहीं विष्णु की प्रिया

1 सांयतनसमय इव नर्तितनीलकण्ठः, —आर० वी० कृष्णमाचारियर, द्वारा संपादित वासवदत्ता, पृ०—343.

2 शर्वशीतिहारिणा, —आर० वी० कृष्णमाचारियर, द्वारा संपादित वासवदत्ता, पृ०—49.

3 पं० शंकरदेव शास्त्री द्वारा संपादित वासवदत्ता, प्रस्तावना श्लोक—1.

4 पं० शंकरदेव शास्त्री द्वारा संपादित वासवदत्ता, प्रस्तावना श्लोक—13.

5 पं० शंकरदेव शास्त्री द्वारा संपादित वासवदत्ता, पृ०—166

6 पं० शंकरदेव शास्त्री द्वारा संपादित वासवदत्ता, पृ०—99

7 पं० शंकरदेव शास्त्री द्वारा संपादित वासवदत्ता, पृ०—211

के रूप में¹ तो कहीं सत्पुरुषों का नाश कर देने वाली के रूप में वर्णित है।²

पार्वती—

कवि ने रानी अनंगवती को पार्वती के समान बताया है—

पार्वतीव सुकुमारा चन्द्रलेखालंकृता³

पार्वती के नव रूपों में से दुर्गा, चण्डिका तथा कात्यायनी का भी उल्लेख प्राप्त होता है—

यत्र च सुरासुरमौलिमालालाक्षितचरणाविन्दा, शुम्भनिशुम्भमहासुरवल—
महावनदावज्वाला, महिषासुरगिरिवरवज्रधारा, प्रणयकलहप्रणतगंगाधरजटाजूट— कोटि—
स्खलितजाह्नवीजलधाराधौतपादपद्मा, भगवती कात्यायनी चण्डाभिधाना स्वयं निवसति।⁴
इन्द्र, इन्द्राणी—

इन्द्र देवताओं के राजा हैं। जहाँ इन्द्र राक्षसों पर विजय प्राप्त करके स्वर्ग की रक्षा करते हैं, वहीं कुछ ऐसे वर्णन भी प्राप्त होते हैं जब इन्द्र अपने दुर्गुणों के समक्ष पराजित हो जाते हैं। उनके दर्प का एक उदाहरण सुबन्धु द्वारा भी दिया गया है। इसी प्रकार राजा शृंगारशेखर को कवि ने इन्द्र से श्रेष्ठ बताया है क्योंकि वह इन्द्र के समान मदिरापान करने वाला तथा अनुचित मार्ग का आचरण करने वाला नहीं था।⁵ इन्द्र के शक्र⁶, सुरपति⁷,

1 लक्ष्मीरिव स्वयंवरगृहीतपीताम्बरा —पं० शंकरदेव शास्त्री द्वारा संपादित वासवदत्ता, पृ०-193.

2 परशुरिव भद्रश्रियमपि खण्डयति —पं० शंकरदेव शास्त्री द्वारा संपादित वासवदत्ता, पृ०-69

3 पं० शंकरदेव शास्त्री द्वारा संपादित वासवदत्ता, पृ०-130.

4 पं० शंकरदेव शास्त्री द्वारा संपादित वासवदत्ता, पृ०-113.

5 पं० शंकरदेव शास्त्री द्वारा संपादित वासवदत्ता, पृ०-122.

6 शक्र इव गोपतौ — पं० शंकरदेव शास्त्री द्वारा संपादित वासवदत्ता, पृ०-273.

7 सुरपत्युपात्तपारिजातम् — पं० शंकरदेव शास्त्री द्वारा संपादित वासवदत्ता, पृ०-286.

देवेन्द्र¹, सहस्रनेत्र², सुरराज³, कौशिक⁴ इत्यादि नाम वासवदत्ता में उपलब्ध होते हैं।

इन्द्र के साथ-साथ उसके उच्चैश्रवा नामक अश्व⁵ तथा ऐरावत⁶ नामक गज का भी वर्णन किया गया है। कन्दर्पकेतु को कवि ने इन्द्र के पुत्र जयन्त के सदृश बताया है।⁷

कवि के अनुसार जिस प्रकार हजारों नेत्रों वाले इन्द्र के योग्य सची से पुलोम वंश सुशोभित होता है उसी प्रकार विन्ध्याटवी हजारों जड़ों से व्याप्त सिन्धुवार के वृक्षों से सुशोभित होता है।⁸ अन्यत्र भी कवि ने इन्द्र के साथ इन्द्राणी का मनोरम वर्णन किया है।⁹ यहाँ तक कि कवि ने वासवदत्ता के भवन की तुलना अमरावती से की है—

गगनपुरश्रियं पताकाभिरुशोभमानम्।¹⁰

सूर्य—

ऋग्वेद में सूर्य को जगत् की आत्मा कहा गया है—

सूर्य आत्मा जगतस्तरस्थुषश्च¹¹

1 अहेतुकमिव पुलोमतनया देवेन्द्रासक्तचित्ता वभूव — पं० शंकरदेव शास्त्री द्वारा संपादित वासवदत्ता, पृ०-69.

2 पुलोमतनयेवानन्दितसहस्रनेत्रा — पं० शंकरदेव शास्त्री द्वारा संपादित वासवदत्ता, पृ०-131.

3 सिन्दूरराजिरंजितसुरराजकुम्भिकुम्भविभ्रमं विभ्राणः, — पं० शंकरदेव शास्त्री द्वारा संपादित वासवदत्ता, पृ०-183.

4 नन्दनवनमिव संचरत्कौशिकम् — पं० शंकरदेव शास्त्री द्वारा संपादित वासवदत्ता, पृ०-197.

5 पं० शंकरदेव शास्त्री द्वारा संपादित वासवदत्ता, पृ०-66.

6 क. पं० शंकरदेव शास्त्री द्वारा संपादित वासवदत्ता, पृ०-113

ख. पं० शंकरदेव शास्त्री द्वारा संपादित वासवदत्ता, पृ०-216.

7 पं० शंकरदेव शास्त्री द्वारा संपादित वासवदत्ता, पृ०-162..

8 पुलोमकुलस्थितिमिव सहस्रनेत्रोचितेन्द्राणीम् — पं० शंकरदेव शास्त्री द्वारा संपादित वासवदत्ता, पृ०-263.

9 शक्र इवेन्द्राणीरुचिरः — पं० शंकरदेव शास्त्री द्वारा संपादित वासवदत्ता, पृ०-140.

10 पं० शंकरदेव शास्त्री द्वारा संपादित वासवदत्ता, पृ०-234.

11 ऋग्वेद, 1/115/1

सूर्य को ज्ञान प्रकाश तथा जीवन का प्रदाता माना गया है। छाया उनकी पत्नी है।¹ सूर्य का कवि ने सहस्रकिरण², विकर्तन³, मरीचिमाली⁴, विवस्वत⁵, असोढ⁶, रवि⁷, दिनकर⁸, दिवाकर⁹, भास्वत¹⁰, किरणमाली¹¹, इत्यादि नामों से स्मरण किया है।

यक्ष, गन्धर्व आदि—

प्रमुख देवी देवताओं के अतिरिक्त यक्ष, गन्धर्व, किन्नर आदि का उल्लेख भी वासवदत्ता में प्राप्त होता है। सुबन्धु ने गन्धर्वों का निवास स्थान पर्वत पर बताया है।¹² कवि ने राजा चिन्तामणि के विषय में कहा है कि वह विद्याधर अर्थात् विशेष देवयोनि वाले होते हुए भी देव थे।¹³ विद्याधर चौदह अथवा अट्ठारह विद्याओं से अनभिज्ञ होते हैं। अतः कवि का तात्पर्य यह है कि राजा चिन्तामणि ने विद्याधर होते हुए भी अपने गुणों से चौदह विद्याओं को प्राप्त कर स्वयं को देवताओं की श्रेणी में ला दिया था। अप्सराओं में सुकेशी तथा मंजुघोषा इत्यादि की कवि ने चर्चा की गयी है।¹⁴ इसके अतिरिक्त एक अन्य उद्धरण से यह ज्ञात होता है कि तत्कालीन समय में

1 रविरिव क्षणदानप्रिय छायासन्तापहरश्च, — प० शकरदेव शास्त्री द्वारा संपादित वासवदत्ता, पृ०-22

2 सहस्रकिरण इव सप्तपत्रस्यन्दनोपेत — प० शकरदेव शास्त्री द्वारा संपादित वासवदत्ता, पृ०-79

3 विकर्तनस्येव स्निग्धच्छायस्य — प० शकरदेव शास्त्री द्वारा संपादित वासवदत्ता, पृ०-100

4 अत्रान्तरे भगवानपि मरीचिमाली आतपक्लान्तवनमहिषलोचन पाटलमण्डलश्चरमाचलमारुरोह,
— प० शकरदेव शास्त्री द्वारा संपादित वासवदत्ता, पृ०-101

5 नभस्वतेव सत्पथगामिना विवस्वतेव गोपतिना — प० शकरदेव शास्त्री द्वारा संपादित वासवदत्ता, पृ०-109.

6 केचिदकुमुदाकरा इवासोढशूरभास — प० शकरदेव शास्त्री द्वारा संपादित वासवदत्ता, पृ०-160.

7 क प० शकरदेव शास्त्री द्वारा संपादित वासवदत्ता, पृ०-208

ख प० शकरदेव शास्त्री द्वारा संपादित वासवदत्ता, पृ०-196

8 प० शकरदेव शास्त्री द्वारा संपादित वासवदत्ता, पृ०-204

9 प० शकरदेव शास्त्री द्वारा संपादित वासवदत्ता, पृ०-208

10 प० शकरदेव शास्त्री द्वारा संपादित वासवदत्ता, पृ०-209

11 रजोमुर्मुखचूर्णसनाथमधुकर पटलधूमामुगतोददण्डपुण्डरीकव्याजाद् धूपमिव भगवते किरणमालिने प्रयच्छन्त्या कमलिनी— तापस्याम् — प० शकरदेव शास्त्री द्वारा संपादित वासवदत्ता, पृ०-269

12 आर० वी० कृष्णमाचारियर द्वारा सम्पादित वासवदत्ता, पृ०-30

13 आर० वी० कृष्णमाचारियर द्वारा सम्पादित वासवदत्ता, पृ०-22

14 अप्सर सहतिरिव सहतसुकेशी समजुघोषा च — आर० वी० कृष्णमाचारियर द्वारा सम्पादित वासवदत्ता, पृ०-150

यक्ष के लिये बलि भी दी जाती थी।¹

कामदेव तथा रति—

कामदेव तथा उसकी पत्नी रति की चर्चा यत्र तत्र वासवदत्ता में प्राप्त होती है। अन्य देवी, देवताओं की भोंति कवि ने कामदेव के विविध उपनामों जैसे—मार², मकरकेतु³, हृच्छय⁴, कन्दर्प⁵, मकरध्वज⁶, मदन⁷, मन्मथ⁸, पुष्पकेतु⁹, अनग¹⁰, कुसुमशर¹¹ आदि का उल्लेख किया है।

कामदेव की पत्नी रति¹² तथा उसके पुत्र अनिरुद्ध¹³ का भी वर्णन कवि ने कथा में किया है।

अन्धविश्वास तथा शुभाशुभ शकुन—

प्रत्येक समाज में कुछ ऐसी मान्यताएं रहती हैं जो धीरे-धीरे रूढ़ होकर

1 यक्षबलिरिव आत्मघोषमुखरो मण्डलभ्रमणकश्च — आर० वी० कृष्णमाचारियर द्वारा सम्पादित वासवदत्ता, पृ०-86

2 हर इव महासेनानुगतो निर्वर्तितमारश्च — प० शंकरदेव शास्त्री द्वारा संपादित वासवदत्ता, पृ०-11

3 क प० शंकरदेव शास्त्री द्वारा संपादित वासवदत्ता, पृ०-31

ख प० शंकरदेव शास्त्री द्वारा संपादित वासवदत्ता, पृ०-52

ग प० शंकरदेव शास्त्री द्वारा संपादित वासवदत्ता, पृ०-143

घ प० शंकरदेव शास्त्री द्वारा संपादित वासवदत्ता, पृ०-146

4 क हृच्छयविलासचातुरकविभ्रमाभ्याम् — प० शंकरदेव शास्त्री द्वारा संपादित वासवदत्ता, पृ०-51

ख हृदयावासगृहावस्थितस्य हृच्छयविलासिनो — प० शंकरदेव शास्त्री द्वारा संपादित वासवदत्ता, पृ०-54

5 क कन्दर्पदर्पवर्धनचूर्णपूर्णकनककलाशाभ्यामिव — आर० वी० कृष्णमाचारियर द्वारा सम्पादित वासवदत्ता पृ०-71

ख प्रभवशैल सुन्दरकन्दर्पकथानदीनाम् — आर० वी० कृष्णमाचारियर द्वारा सम्पादित वासवदत्ता पृ०-187

ग आर० वी० कृष्णमाचारियर द्वारा सम्पादित वासवदत्ता, पृ०-194

6 क विजयपताकामिव मकरध्वजस्य — आर० वी० कृष्णमाचारियर द्वारा सम्पादित वासवदत्ता, पृ०-78

ख आर० वी० कृष्णमाचारियर द्वारा सम्पादित वासवदत्ता, पृ०-218

7 आजिभूमिमिव मदनस्य — आर० वी० कृष्णमाचारियर द्वारा सम्पादित वासवदत्ता, पृ०-79.

8 क आर० वी० कृष्णमाचारियर द्वारा सम्पादित वासवदत्ता, पृ०-66.

ख चक्षुर्वन्धनमहौषधिमिव मन्मथेन्द्रजालिन — आर० वी० कृष्णमाचारियर द्वारा सम्पादित वासवदत्ता, पृ०-79

9 प्रियवदेनापि पुष्पकेतुना — आर० वी० कृष्णमाचारियर द्वारा सम्पादित वासवदत्ता, पृ०-125

10 अदृष्टचरमनगातिशायि तद्रूपम् — आर० वी० कृष्णमाचारियर द्वारा सम्पादित वासवदत्ता, पृ०-201

11 क आर० वी० कृष्णमाचारियर द्वारा सम्पादित वासवदत्ता, पृ०-163

ख आर० वी० कृष्णमाचारियर द्वारा सम्पादित वासवदत्ता, पृ०-स०

12 राजरज्जुरिवोल्लासितरति — आर० वी० कृष्णमाचारियर द्वारा सम्पादित वासवदत्ता, पृ०-44

13 यस्य च जनितानिरुद्धलीलस्य, रतिप्रियस्य — आर० वी० कृष्णमाचारियर द्वारा सम्पादित वासवदत्ता, पृ०-50

अन्धविश्वास का रूप धारण कर लेती हैं। सुबन्धु कालीन समाज में भी कुछ मान्यताएँ प्रचलित थीं जिनमें लोगों का विश्वास था। स्वयं राजा भी इन अन्धविश्वासों से अछूते नहीं थे। ऐसा माना जाता था कि यात्रा से पूर्व जल से पूर्ण कलश देखने से यात्रा मंगलमय होती है। अतः राजा अपने नगर के पूर्वीय द्वार पर जल से युक्त स्वर्ण कलश रखवाते थे—

नभोनगरप्राग्द्वारकनकपूर्णकुम्भे।¹

इसके अतिरिक्त विजय-यात्रा पर प्रस्थान करते समय खीलों का बिखेरना शुभ माना जाता था।² जब वासवदत्ता स्वयंवर के लिये राजभवन की ओर प्रस्थान करती है तब उसकी पालकी पर भी खीलों को बिखेरा जा रहा था।³ अतः यह स्पष्ट ही है कि विजय-यात्रा पर प्रस्थान करते समय ही नहीं अपितु किसी भी शुभ कार्य को करने से पहले खील बिखेरना कल्याणप्रद होता है ऐसा विश्वास था। इसी प्रकार वर्ष के प्रथम दिन खंजरीट पक्षी को देखना शुभ माना जाता था। ऐसा विश्वास था कि वर्ष के प्रथम दिन खंजरीट पक्षी को देखने से सम्पूर्ण वर्ष आनन्द तथा सुखपूर्वक व्यतीत होता है।⁴ एक अन्य उदाहरण से यह ज्ञात होता है कि गरुड-ध्वनि को सुनना शुभ संकेत माना जाता था।⁵

कन्दर्पकेतु के विलाप प्रसंग से यह ज्ञात हो जाता है कि तत्कालीन समाज में भाग्य पर विश्वास था। कन्दर्पकेतु स्वयं अपनी दशा के लिये दुःस्वप्नों, शुभाशुभ

1 प० शंकरदेव शास्त्री द्वारा संपादित वासवदत्ता, पृ०-272

2 प० शंकरदेव शास्त्री द्वारा संपादित वासवदत्ता, पृ०-205

3 प० शंकरदेव शास्त्री द्वारा संपादित वासवदत्ता, पृ०-151

4 केचित्खजना इव सावत्सरफलदर्शिन — प० शंकरदेव शास्त्री द्वारा संपादित वासवदत्ता, पृ०-155

5 केचिद् व्याधा इव शकुनश्रावका — प० शंकरदेव शास्त्री द्वारा संपादित वासवदत्ता, पृ०-153

कर्माँ, ग्रह दशाओ को कारण मानता है।¹ उस समय भूत तथा प्रेत योनियो मे भी लोगो का विश्वास था। सुबन्धु द्वारा किया गया श्मशान वर्णन इसका स्पष्ट उदाहरण है। इसमे कवि ने भूत, प्रेत पिशाच डाकिनियो तथा वैताल, प्रेत योनियो का वर्णन किया है।²

रामायण, महाभारत तथा विविध आख्यान—

तत्कालीन समाज मे रामायण तथा महाभारत की कथाओ को पर्याप्त प्रसिद्धि मिल चुकी थी। क्योकि कवि ने स्थान-स्थान पर रामायण तथा महाभारत के पात्रो का ही नही उनमे वर्णित आख्यानों का भी वर्णन किया है। मर्यादा पुरुषोत्तम राम को कवियो ने सदैव आदर्श माना है तथा अपने नायको को राम के समान प्रस्तुत किया है। सुबन्धु ने राम के साथ ही दशरथ³, भरत⁴, लक्ष्मण⁵, बालि⁶, सुग्रीव⁷, कुम्भकर्ण⁸, जाम्बवान⁹, जनक¹⁰, विश्वामित्र¹¹, आदि को उदाहरण रूप मे प्रस्तुत किया है।

रामायण के समान महाभारत के पात्रो यथा धृतराष्ट्र¹², दुःशासन¹³, भीष्म¹⁴,

-
- 1 प० शकरदेव शास्त्री द्वारा संपादित वासवदत्ता पृ०-278
 - 2 प० शकरदेव शास्त्री द्वारा संपादित वासवदत्ता पृ०-259-262
 - 3 प० शकरदेव शास्त्री द्वारा संपादित वासवदत्ता पृ०-24
 - 4 प० शकरदेव शास्त्री द्वारा संपादित वासवदत्ता पृ०-105
 - 5 प० शकरदेव शास्त्री द्वारा संपादित वासवदत्ता पृ०-212
 - 6 प० शकरदेव शास्त्री द्वारा संपादित वासवदत्ता पृ०-162
 - 7 प० शकरदेव शास्त्री द्वारा संपादित वासवदत्ता पृ०-57 78 104
 - 8 प० शकरदेव शास्त्री द्वारा संपादित वासवदत्ता पृ०-83
 - 9 प० शकरदेव शास्त्री द्वारा संपादित वासवदत्ता पृ०-213
 - 10 प० शकरदेव शास्त्री द्वारा संपादित वासवदत्ता पृ०-239
 - 11 प० शकरदेव शास्त्री द्वारा संपादित वासवदत्ता पृ०-289
 - 12 प० शकरदेव शास्त्री द्वारा संपादित वासवदत्ता पृ०-12
 - 13 प० शकरदेव शास्त्री द्वारा संपादित वासवदत्ता पृ०-15
 - 14 प० शकरदेव शास्त्री द्वारा संपादित वासवदत्ता पृ०-21 81 314

शान्तनु¹, सुशर्मा², अर्जुन³, भीम⁴, कर्ण⁵, कृष्ण⁶, बलराम⁷, कंस⁸, शकुनि, धृष्टद्युम्न⁹, रेवती¹⁰ आदि का उल्लेख किया गया है।

सुबन्धु ने विविध आख्यानों का अपनी कृति में संकेत किया है। इन आख्यानों को कवि द्वारा उदाहरण रूप में प्रस्तुत करने से यह ज्ञात होता है कि उस समय तक इन आख्यानों को प्रसिद्धि मिल चुकी थी। इनमें से कुछ आख्यानों का विवरण इस प्रकार है—

राजा नृग का आख्यान—

यह आख्यान वाल्मीकि रामायण के उत्तरकाण्ड के 53वें तथा 54वें अध्याय में मिलता है। इस आख्यान में राजा नृग के शाप वश गिरगिट बन जाने तथा उस शाप को बिताने के लिये किये गये उनके उपायों का वर्णन किया गया है।¹¹

नलोपाख्यान—

नलोपाख्यान महाभारत के वन पर्व में वर्णित है। इस आख्यान में राजा नल तथा दमयन्ती की प्रणय-गाथा का विवरण मिलता है।¹²

1 पं० शंकरदेव शास्त्री द्वारा संपादित वासवदत्ता, पृ०-27, 294.

2 पं० शंकरदेव शास्त्री द्वारा संपादित वासवदत्ता, पृ०-27.

3 पं० शंकरदेव शास्त्री द्वारा संपादित वासवदत्ता, पृ०-22, 27, 121, 150, 265.

4 पं० शंकरदेव शास्त्री द्वारा संपादित वासवदत्ता, पृ०-63, 84.

5 पं० शंकरदेव शास्त्री द्वारा संपादित वासवदत्ता, पृ०-81, 314.

6 पं० शंकरदेव शास्त्री द्वारा संपादित वासवदत्ता, पृ०-9, 121, 163.

7 पं० शंकरदेव शास्त्री द्वारा संपादित वासवदत्ता, पृ०-185.

8 पं० शंकरदेव शास्त्री द्वारा संपादित वासवदत्ता, पृ०-9, 27.

9 पं० शंकरदेव शास्त्री द्वारा संपादित वासवदत्ता, पृ०-197.

10 पं० शंकरदेव शास्त्री द्वारा संपादित वासवदत्ता, पृ०-299.

11 रामायण, उत्तरकाण्ड, अध्याय-53-54

12 काशीनाथ द्विवेदी द्वारा सम्पादित नलोपाख्यान, पृ०-8-16

तारकासुरवधाख्यान—

यह आख्यान शिवपुराण में रुद्र संहिता के कुमार खण्ड में वर्णित है। इसमें भगवान् शिव के पुत्र कार्तिकेय द्वारा तारकासुर के वध की कथा का वर्णन है।¹

पुरुषवाख्यान—

पुरुषवा का आख्यान महाभारत के आदिपर्व में वर्णित है। इस आख्यान में महाराज पुरुषवा द्वारा ब्राह्मणों का धन लेने तथा ब्राह्मणों के शापवश नष्ट होने का वर्णन किया गया है।²

शकुन्तलोपाख्यान—

यह आख्यान महाभारत के ही आदिपर्व में उपलब्ध होता है जिसमें शकुन्तला तथा दुष्यन्त की प्रणय कथा वर्णित है।³

देवयानी—ययाति का आख्यान—

यह आख्यान महाभारत में आदिपर्व में मिलता है। इसमें देवयानी तथा ययाति के विवाह, शर्मिष्ठा के साथ पुनः ययाति के विवाह के पश्चात् देवयानी के क्रोधित होकर अपने पिता शुक्राचार्य के पास जाने तथा शुक्राचार्य द्वारा ययाति को शाप देने का वर्णन किया गया है।⁴

तपती—संवरण आख्यान—

यह आख्यान महाभारत के आदिपर्व में उपलब्ध होता है। इसमें कुरुकुल के

1 शिव पुराण, रुद्र संहिता, कुमार खण्ड

2 महाभारत, आदिपर्व, अध्याय-75

3 महाभारत, आदिपर्व, अध्याय-69-74

4 महाभारत, आदिपर्व, अध्याय-81-83

राजा ऋक्ष के पुत्र संवरण द्वारा सूर्य पुत्री तपती पर मुग्ध होकर सूर्य की आराधना करने का वर्णन मिलता है।¹

जन्तु एवं सोमक आख्यान—

सोमक नामक राजा का आख्यान महाभारत के वनपर्व के मिलता है। राजा सोमक की सौ रानियाँ थीं किन्तु पुत्र एक ही था। जिसका नाम जन्तु था। उसकी पीड़ा से सभी रानियाँ व्यथित हो जाती थीं। अंततः राजा ने सभी रानियों से एक-एक पुत्र की प्राप्ति के निमित्त यज्ञ कराया तथा उस यज्ञ में जन्तु की बलि दे दी। उस यज्ञ से उठने वाले धुएँ को सूँघकर सभी रानियाँ गर्भवती हो गयीं।²

रम्भा—नलकूबर आख्यान—

रम्भा तथा नलकूबर का आख्यान रामायण में उपलब्ध होता है। जिसमें रम्भा के नलकूबर के समीप जाते समय लंकापति रावण द्वारा बलात्कार करने की कथा वर्णित हैं।³

इन्दुमती—अज आख्यान—

कालिदास ने इन्दुमती तथा अज की कथा को रघुवंशम् महाकाव्य में प्रस्तुत किया है। जिसमें इन्दुमती तथा अज के विवाह, अज के राज्याभिषेक तदनन्तर पुत्र प्राप्ति एवं इन्दुमती की मृत्यु के पश्चात् उनके विलाप का विवरण मिलता है।⁴

1 महाभारत, आदिपर्व, अध्याय—170—172

2 महाभारत, वनपर्व, अध्याय—127, 128

3 रामायण, उत्तरकाण्ड, अध्याय—26

4 रघुवंशम्, सर्ग 5—8

सुद्युम्न का आख्यान—

यह आख्यान श्रीमद्भागवत पुराण के नवम स्कन्ध में वर्णित हैं। इसमें वैवस्वत मनु के यज्ञ द्वारा प्राप्त इला नामक पुत्री को पुनः महर्षि वसिष्ठ द्वारा सुद्युम्न नामक पुत्र के रूप में परिणत कर देने की कथा वर्णित हैं। शिव तथा पार्वती की विहार स्थली मेरु पर्वत की तलहटी में प्रवेश करने पर सुद्युम्न तथा उसके अनुचर स्त्री बन जाते हैं। क्योंकि भगवान् शिव ने पार्वती को प्रसन्न करने के लिये यह नियम बना दिया था कि उनके अतिरिक्त जो पुरुष भी उस स्थल में प्रवेश करेगा वह स्त्री बन जायेगा।¹

संस्कार—

मनुष्य का जीवन संस्कारों से बंधा हुआ है मनुष्य के जन्म के बाद नामकरण संस्कार से लेकर मृत्यु के पश्चात् दाह संस्कार तक जीवन में विभिन्न संस्कारों का पालन वह करता ही है। सुबन्धु ने भी अपनी रचना में संस्कारों का वर्णन किया है।

‘वासवदत्ता’ में स्वयंवर प्रथा का उल्लेख किया गया है। यह संस्कार रामायण तथा महाभारत के समय से ही प्रचलित था। रामायण तथा महाभारत के समय से ही प्रचलित था। रामायण में सीता स्वयंवर तथा महाभारत में द्रौपदी स्वयंवर का वर्णन इसके प्रमुख उदाहरण हैं। इस प्रथा के द्वारा राजकुमारियाँ अपनी इच्छानुरूप वर प्राप्त कर लेती थीं। राजकुमारी के पिता द्वारा स्वयंवर में विभिन्न प्रतियोगिताओं का भी आयोजन किया जाता था। इस प्रतियोगिताओं के विजेता को राजकुमारी अपने

1 श्रीमद्भागवत पुराण, 9/1

पति के रूप में चुनती थी। कवि ने वासवदत्ता के स्वयंवर¹ का उल्लेख तो किया है किन्तु किसी प्रतियोगिता का वर्णन नहीं किया है। वासवदत्ता स्वयंवर सभा में राजकुमारों को देखकर विरक्त होकर अपने कर्णीरथ यान से उतर जाती है। इससे ज्ञात होता है कि स्वयंवर में कन्या कोई वर चुने यह आवश्यक नहीं समझा जाता था।

दाह संस्कार का स्पष्ट उदाहरण श्मशान वर्णन हैं। यहाँ कवि ने आधी जली हुई चिता की चर्चा की है।² विवाह तथा दाह संस्कार के अतिरिक्त श्राद्ध संस्कार का उदाहरण भी 'वासवदत्ता कथा' में प्राप्त होता है। लोग पितरों को प्रसन्न करने के लिये तर्पण करते थे³ तथा वृष आदि का दान दिया करते थे।⁴

शिक्षा—

वासवदत्ता कथा का अध्ययन करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि तत्कालीन समाज में शिक्षा को महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त था।

वेद तथा उपनिषद्—

सुबन्धु द्वारा उद्धृत विभिन्न उदाहरणों से यह ज्ञात होता है कि तत्कालीन समाज में वैदिक शिक्षा प्रचलित थी। लोग यज्ञ किया करते थे।⁵ वेदों की विभिन्न शाखाओं का प्रचलन हो चुका था।⁶ वेदों का अध्ययन किया जाता था।⁷ एक अन्य

1 आर०वी० कृष्णमाचारियर द्वारा सम्पादित वासवदत्ता, पृ०-170-184.

2 अर्धदग्धचिताचक्रसिमसिमायमान..... — आर०वी० कृष्णमाचारियर द्वारा सम्पादित वासवदत्ता, पृ०-310

3 आर०वी० कृष्णमाचारियर द्वारा सम्पादित वासवदत्ता, पृ०-17.

4 सुबन्धु का सांस्कृतिक सर्वेक्षण—डॉ० सलमा महफूज, जर्नल ऑफ गंगानाथ झा केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ, इलाहाबाद, 2000, Vol. 56

5 यायाजूकेनेव सुरतार्थिना—पं० शंकरदेव शास्त्री द्वारा सम्पादित सुबन्धु कृत वासवदत्ता, पृ०-110.

6 वेदस्येव भूरिशाखालङ्कृतस्य, पं० शंकरदेव शास्त्री द्वारा सम्पादित सुबन्धु कृत वासवदत्ता, पृ०-100.

7 पं० शंकरदेव शास्त्री द्वारा सम्पादित सुबन्धु कृत वासवदत्ता, पृ०-39.

उद्धरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि उपनिषदों का भी अध्ययन किया जाता था—

उपनिषदमिवानन्दमेकमुद्द्योतयन्तीम्¹

दर्शन शास्त्र—

वेदों के अतिरिक्त बौद्ध, जैन, मीमांसा तथा न्याय दर्शन का पर्याप्त प्रचलन हो चुका था। ऐसा प्रतीत होता है कि विविध दर्शनों के प्रचलन के फलस्वरूप उनके अनुयायियों में मतभेद रहता था। बौद्ध सिद्धान्तों के द्वारा वेद संबंधी मतों का अनादर किया जाता था।² एक अन्य स्थल पर बौद्ध भिक्षु का उल्लेख किया गया है।³ मीमांसा, न्याय तथा जैन धर्म के सिद्धान्तों में भी परस्पर विरोध था।⁴ तर्कशास्त्र का भी प्रादुर्भाव हो चुका था—

न्यायस्थितिमिवोद्योतकरस्वरूपाम्—⁵

काव्य शास्त्र—

काव्य शास्त्र के उदाहरण 'वासवदत्ता' में यत्र तत्र उपलब्ध होते हैं। कवि ने विविध आभूषणों से सुसज्जित नायिका वासवदत्ता को 'उपमा' आदि अलंकारों से विभूषित उत्तम कवि निर्मित काव्य के सदृश कहा है—

सत्कविकाव्यरचनामिव अलंकारप्रसाधिताम्⁶

1 पं० शंकरदेव शास्त्री द्वारा सम्पादित सुबन्धु कृत वासवदत्ता, पृ०-253.

2 कश्चित् बौद्धसिद्धान्त इव क्षपितश्रुतिवचनदर्शनोऽभवत्— पं० शंकरदेव शास्त्री द्वारा सम्पादित सुबन्धु कृत वासवदत्ता, पृ०-313.

3 पं० शंकरदेव शास्त्री द्वारा सम्पादित सुबन्धु कृत वासवदत्ता, पृ०-314.

4 क. मीमांसाकदर्शनेनैव तिरस्कृतदिगम्बरदर्शनेन— पं० शंकरदेव शास्त्री द्वारा सम्पादित सुबन्धु कृत वासवदत्ता, पृ०-312.

ख. मीमांसान्याय इव पिहितादिगम्बरदर्शनः — पं० शंकरदेव शास्त्री द्वारा सम्पादित सुबन्धु कृत वासवदत्ता, पृ०-86

ग. केचिज्जैमिनिमतानुसारिण इव तथागतमतध्वंसिनः — पं० शंकरदेव शास्त्री द्वारा सम्पादित सुबन्धु कृत वासवदत्ता, पृ०-154.

5 पं० शंकरदेव शास्त्री द्वारा सम्पादित सुबन्धु कृत वासवदत्ता, पृ०-253,

6 आर० वी० कृष्णमाचारियर द्वारा संपादित वासवदत्ता, पृ०-303

इसके अतिरिक्त सुबन्धु ने वासवदत्ता के रक्त वर्ण के चरणों की तुलना 'तेन रक्त रागात्' इत्यादि सूत्र से प्रारब्ध पादसमन्वित व्याकरण से¹ तथा उसके कृश मध्यभाग की तुलना तनुमध्या नामक छन्द² से मुक्त छन्दोविशति नामक ग्रन्थ से की है। कवि ने चिन्तामणि³ तथा शृंगारशेखर⁴ दोनों की काव्य के प्रति अभिरुचि व्यक्त की है। अन्यत्र भी स्त्री, नदी तथा कृत्य प्रत्ययों का उल्लेख मिलता है—

व्याकरणमिव स्त्रीनदीकृत्यबहुलम्⁵

गुणाद्य रचित बृहत्कथा का भी वर्णन मिलता है।⁶ विन्ध्य पर्वत का वर्णन करते हुए कवि ने उसे कुसुमविचित्रा, प्रहर्षिणी तथा शिखरिणी आदि छन्दों से युक्त छन्दोविशति नामक ग्रन्थ का अनुकरण करने वाला बताया है।⁷

ऐसा प्रतीत होता है कि उस समय तक काव्यशास्त्रीय नियम प्रचलित हो चुके थे जिनके द्वारा काव्य रचना को उत्तम तथा अधम श्रेणी में रखा जाता था। क्योंकि सुबन्धु ने एक स्थल पर कहा है सत्कवि की काव्य रचना में निरर्थक अर्थात् मात्र पादपूरणार्थक—तु, हि पदों का प्रयोग नहीं किया जाता।⁸ लम्बे—लम्बे उच्छवासों की रचना संयुक्त तथा सुन्दर श्लेष एवं वक्त्र नामक वृत्त विशेष की रचना में समर्थ उत्तम कवि की रचना खिन्न होती है।⁹

1 व्याकरणेनेव सरक्तपादेन— आर० वी० कृष्णमाचारियर द्वारा संपादित वासवदत्ता, 302

2 छन्दोविचितिमिव भ्राजमानतनुमध्याम्— आर० वी० कृष्णमाचारियर द्वारा संपादित वासवदत्ता, पृ०—302

3 आनकदुन्दुभिरिव कृतकाव्यादर — आर० वी० कृष्णमाचारियर द्वारा संपादित वासवदत्ता, पृ०—19

4 शृङ्खलाबन्धो वर्णग्रन्थनासु, उत्प्रेक्षाक्षेपो काव्यालकारेषु—आर० वी० कृष्णमाचारियर द्वारा संपादित वासवदत्ता, पृ०—146

5 आर० वी० कृष्णमाचारियर द्वारा संपादित वासवदत्ता, पृ०—334

6 केचिद्बृहत्कथानुबन्धिन इव गुणादया — आर० वी० कृष्णमाचारियर द्वारा संपादित वासवदत्ता, पृ०—182

7 आर० वी० कृष्णमाचारियर द्वारा संपादित वासवदत्ता, पृ०—108 109

8 आर० वी० कृष्णमाचारियर द्वारा संपादित वासवदत्ता, पृ०—158

9 प० शंकरदेव शास्त्री द्वारा संपादित वासवदत्ता, पृ०—207

नाट्यशास्त्र—

कथाकार ने कन्दर्पकेतु के वर्णन प्रसंग में 'नाट्यशाला'¹ शब्द का प्रयोग किया है। इससे पता चलता है कि सुबन्धु द्वारा 'वासवदत्ता' की रचना किये जाने तक भरतमुनि का नाट्यशास्त्र प्रसिद्ध हो चुका था तथा लोगों की अभिनय के प्रति रुचि थी। अन्यत्र भी कवि ने नट तथा यवनिका² का उल्लेख किया है।

ज्योतिष शास्त्र—

वासवदत्ता के अध्ययन स्पष्ट हो जाता है कि ज्योतिष शिक्षा का पृथक् महत्त्व था। सांय काल ज्योतिषी के सामन नक्षत्रों को प्रकाशित कर रहा था।³ कवि ने कुसुमपुर नगर के निवासियों को ज्योतिष शास्त्र में प्रवीण वर्णित किया है।⁴ कवि ने कन्या, तुला⁵, मीन, कुलीर,⁶ वृश्चिक⁷, मकर⁸ आदि राशियों की चर्चा की है। विभिन्न उदाहरणों के द्वारा यह भी स्पष्ट करने का प्रयास किया है कि सूर्य तथा चन्द्रमा के राशियों पर गमन करने से ग्रह दशा में परिवर्तन होता है।

संगीत शिक्षा—

तत्कालीन समय में लोगों की संगीत के प्रति रुचि थी। कवि के अनुसार गीतों में ही गान्धार स्वर का विच्छेद पाया जाता था, नागरिक ललनाओं में सिन्दूर का विच्छेद नहीं होता था क्योंकि राज्य में कोई विधवा स्त्री नहीं थी। गीतों में ही स्वरों

1 प० शकरदेव शास्त्री द्वारा संपादित वासवदत्ता, पृ०-59

2 सचरदरुणयवनिकापट इव कालनर्तकस्य— प० शकरदेव शास्त्री द्वारा संपादित वासवदत्ता, पृ०-274

3 गणक इव नक्षत्रसूचके प्रदोषे— प० शकरदेव शास्त्री द्वारा संपादित वासवदत्ता, पृ०-196

4 भरतेनापि लक्ष्मणेन — प० शकरदेव शास्त्री द्वारा संपादित वासवदत्ता, पृ०-105

5 शशिन कन्यातुलारोहणम्— प० शकरदेव शास्त्री द्वारा संपादित वासवदत्ता, पृ०-127

6 राशिमिव समीनकुलीरम्— प० शकरदेव शास्त्री द्वारा संपादित वासवदत्ता, पृ०-290

7 वृश्चिकराशिरविस्थितिमिव अतिक्रान्तकन्यातुलाम्— प० शकरदेव शास्त्री द्वारा संपादित वासवदत्ता, पृ०-56

8 राशिभिरिव मीनमकरकुलीरमिथुनसगतै— प० शकरदेव शास्त्री द्वारा संपादित वासवदत्ता, पृ०-87

के आरोह, अवरोह क्रम की प्राप्ति होती थी, प्रजा में मूर्च्छा-संज्ञानाश नहीं होता था।¹ इसी प्रकार रागों की चंचलता² तथा उतार चढ़ाव³ का विवरण प्राप्त होता है। कवि ने चर्चरी नामक ताल की चर्चा की है।⁴ वासवदत्ता अपनी सखी कलिका से मेखला को उतारने के लिये कहती है क्योंकि मेखला के शब्द के कारण वीणा का स्वर सुनायी नहीं दे रहा था।⁵ राजा चिन्तामणि के वर्णन में भी वीणा तथा वीणादण्ड का उल्लेख किया गया है।⁶ कवि ने गायन के एक प्रकार काकली गायन का वर्णन किया है।⁷ स्त्रियाँ खेतों में कार्य करते समय गीत गाया करती थीं।⁸

मूर्तिकला—

कथा के अध्ययन से कुछ ऐसे संकेत मिलते हैं जो यह स्पष्ट कर देते हैं कि तत्कालीन समय में मूर्तिकला का प्रादुर्भाव हो चका था। कुसुमपुर नगर के भवनों के स्तम्भादि पर खुदी हुई पुतलियों का उदाहरण उपलब्ध होता है।⁹ नायिका वासवदत्ता की विरह व्यथा को व्यक्त करते हुए कवि कहता है कि वह कन्दर्पकेतु भी वासवदत्ता को अपने नेत्रों में खुदी हुई सी समझता है।¹⁰

1 आर० वी० कृष्णमाचारियर द्वारा संपादित वासवदत्ता, पृ०-147

2 चलरागता गीतेषु न विदग्धेषु — आर० वी० कृष्णमाचारियर द्वारा संपादित वासवदत्ता, पृ०-148

3 भङ्गुरत्व रागविकृतिषु न चित्तषु — आर० वी० कृष्णमाचारियर द्वारा संपादित वासवदत्ता, पृ०-148

4 प्रतिदिशमरलीलप्रायवैहासिकगीयमानगीतश्रवणोत्सुकषिङ्गजन समारब्धचर्चरीतालाकर्णनमुह्यदनेकपथिकः

—आर० वी० कृष्णमाचारियर द्वारा संपादित वासवदत्ता, पृ०-156, 157

5 आर० वी० कृष्णमाचारियर द्वारा संपादित वासवदत्ता, पृ०-242

6 परीवादो वीणासु — आर० वी० कृष्णमाचारियर द्वारा संपादित वासवदत्ता, पृ०-25

7 एकदा तु कतिपयमासापगमे काकलीगायन इव समृद्धनिम्नगानद.

— आर० वी० कृष्णमाचारियर द्वारा संपादित वासवदत्ता, पृ०-343

8 कलमगोपिकागीताकर्णनसुखितमृगयूथे — आर० वी० कृष्णमाचारियर द्वारा संपादित वासवदत्ता, पृ०-349.

9 बृहत्कथालम्बैरिव सालभञ्जिकोपशोभितै — पं० शंकरदेव शास्त्री द्वारा सम्पादित वासवदत्ता, पृ०-103.

10 उत्कीर्णमिव—पं० शंकरदेव ने 'उत्कीर्ण' शब्द की व्याख्या करते हुए शालभजिका शब्द का प्रयोग किया है। एक अन्य स्थल पर शालभजिका का अर्थ उन्होंने प्रस्तर पर खोदी गयी प्रतिमा' किया है।

वास्तुकला—

कुसुमपुर नगर के वर्णन में सर्वप्रथम कवि ने वहाँ के प्रासादों का उल्लेख किया है। प्रासादों पर कलई का लेप किया जाता था—

अस्तिमन्दरगिरिशृङ्गैरिव प्रशस्तसुधाधवलैः।¹

उनके स्तम्भादि पर विविध प्रतिमाओं को खोदा जाता था। वे वरामदों तथा गवाक्षों से युक्त थे।² वासागृहों को धूपबत्तियों से सुगन्धित किया जाता था।³ कुसुमपुर नगर में अनेक मन्दिर थे।⁴ वासवदत्ता के भवन के शिखर अत्यन्त ऊँचे थे। वे कलई से श्वेत थे। उनके चारों ओर परकोटा खिंचा हुआ था। उसके पार्श्व भाग स्वर्णमय शिलाओं से युक्त आंगन में बहती हुई नहरों से सुशोभित थे।⁵ वज्रलेप अर्थात् सीमेण्ट का उल्लेख भी मिलता है।⁶ भवनों के प्राकार स्वर्ण निर्मित होते थे।⁷ कन्दर्पकेतु विरह व्यथा का अनुभव करते हुए अपना समय कपाट बन्द करके एकाकी व्यतीत करता है।⁸ यहाँ कवि द्वारा कपाट का उल्लेख करने से यह स्पष्ट ही हो जाता है कि भवनों में कपाट लगाने का प्रचलन था।

चित्रकला—

चित्रकला के भी पर्याप्त उदाहरण प्राप्त होते हैं। कन्दर्पकेतु स्वप्न में वासवदत्ता

1 आर० वी० कृष्णमाचारियर द्वारा संपादित वासवदत्ता, पृ०—123.

2 करिगूथैरिव समत्तवारणैः, सुग्रीवसैन्यैरिव सगवाक्षैः — आर० वी० कृष्णमाचारियर द्वारा सम्पादित वासवदत्ता, पृ०—124.

3 अनवरतदह्यमानकालागरुधूपपरिमलोद्गारेषु वासागारेषु— आर० वी० कृष्णमाचारियर द्वारा सम्पादित वासवदत्ता, पृ०—213.

4 अदितिजठरमिव अनेकदेवकुलाध्यासितम्— आर० वी० कृष्णमाचारियर द्वारा सम्पादित वासवदत्ता, पृ०—139.

5 आर० वी० कृष्णमाचारियर द्वारा सम्पादित वासवदत्ता, पृ०—282, 283

6 वज्रलेपघटितमिव — आर० वी० कृष्णमाचारियर द्वारा सम्पादित वासवदत्ता, 193.

7 मन्मथमहानिधिजघनकोशमन्दिरकनकप्राकारेण — आर० वी० कृष्णमाचारियर द्वारा सम्पादित वासवदत्ता, पृ०—67.

8 आर० वी० कृष्णमाचारियर द्वारा सम्पादित वासवदत्ता, पृ०—80

को संसाररूपी भित्ति की चित्रलेखा के समान देखता है।¹ गृह त्याग के पश्चात् कन्दर्पकेतु हृदय रूपी पट्टिका पर संकल्प रूपी तूलिका से चित्रित उस प्रियतमा को देखते हुए पत्नों की शय्या पर शयन करता है।² वासवदत्ता भी कन्दर्पकेतु को अपने हृदय में चित्रित सा प्रतीत करती है—

हृदयेविलिखितमिवे³

यही नहीं वह अपनी सखी चित्रलेखा से चित्रपट पर कन्दर्पकेतु का चित्र बनाने के लिये कहती है।⁴ निश्चित ही अपने नाम के अनुरूप चित्रलेखा चित्र बनाने में निपुण होगी इसीलिए वासवदत्ता उससे चित्र बनाने के लिये कहती है।

सैन्य शिक्षा—

राजा चिन्तामणि, कन्दर्पकेतु तथा राजा शृंगारशेखर सभी युद्ध कला में प्रवीण हैं। वे अस्त्र शस्त्र चलाने में निपुण हैं। अतः यह स्पष्ट हो जाता है कि उस समय सैन्य शिक्षा दी जाती थी। कवि ने राजा चिन्तामणि को बड़ी भारी सेना से अनुगत बताया है।⁵ इसके साथ ही कवि ने चिन्तामणि का वर्णन करते हुए सर्वप्रथम यही कहा है कि अन्य सभी राजा उसके अधीन थे। यह तभी सम्भव हो सकता है जबकि राजा स्वयं युद्ध कौशल में प्रवीण तथा नीति निष्णात हो। कन्दर्पकेतु अर्जुन के समान धनुर्विद्या में निपुण है।⁶ उसकी कीर्ति सात सागर पर्यन्त फैली हुई थी।⁷ राजा

1 संसारभित्तिचित्रलेखामिव त्रैलोक्यचित्तरंगस्य—पं० शंकरदेव शास्त्री द्वारा संपादित वासवदत्ता, पृ०—59.

2 अथ तामेव प्रियतमां हृदयफलके संकल्पतूलिकयसा लिखितमिवावलोकयन्निस्पन्दकरणग्रामः कन्दर्पकेतुर्मकरन्द-
विरचिते पल्लवशयने सुष्वाप — पं० शंकरदेव शास्त्री द्वारा सम्पादित वासवदत्ता, पृ०—101.

3 पं० शंकरदेव शास्त्री द्वारा संपादित वासवदत्ता, पृ०—170.

4 चपले चित्रलेखे! चित्रपटे विलिख चित्तचोरंजनम्। — पं० शंकरदेव शास्त्री द्वारा सम्पादित वासवदत्ता, पृ०—173.

5 पं० शंकरदेव शास्त्री द्वारा सम्पादित वासवदत्ता, पृ०—11.

6 पार्थ इव समरसाहसोचितः — पं० शंकरदेव शास्त्री द्वारा सम्पादित वासवदत्ता, पृ०—27.

7 पं० शंकरदेव शास्त्री द्वारा सम्पादित वासवदत्ता, पृ०—34.

शृंगारशेखर ने अपने सभी शत्रुओं को जीत लिया था।¹ वासवदत्ता को प्राप्त करने के लिये दो किरातसेनापतियों के मध्य युद्ध का वर्णन प्राप्त होता है।² इस युद्ध का वर्णन करते हुए कवि ने अश्वारोही तथा गजारोही सेना का वर्णन किया है। इसके अतिरिक्त किरात सेनाएँ धनुष-बाण, खड्ग तथा कृपाणिका अर्थात् छोटी तलवार चलाने में कुशल थे इसके स्पष्ट संकेत युद्ध वर्णन में प्राप्त होते हैं।

भौगोलिक स्थिति—

कवि का भौगोलिक ज्ञान अत्यन्त व्यापक है। उन्होंने विभिन्न नदियों तथा पर्वतों का वर्णन किया है जिससे यह ज्ञात हो जाता है कि तत्कालीन समाज में उनके विषय में लोगों में पर्याप्त जानकारी थी।

सुबन्धु ने रेवा³, तमसा⁴, यमुना⁵, भागीरथी⁶, मालिनी⁷, तुंगभद्रा, शोण, नर्मदा, गोदावरी⁸, तथा करतोया⁹ नामक नदियों के नाम उद्धृत किये हैं। पं० शंकरदेव शास्त्री ने अपनी टीका में करतोया नदी को काचन नदी के नाम से व्यवहित किया है जो सदैव जल से परिपूर्ण रहती है—

“करतोया सदानीरा काचन नदी। करतोया सदानीरा। इत्यमरः। तया आप्लुतं सिक्तं मुखं संगमस्थलं यस्य तम्।¹⁰

1 पं० शंकरदेव शास्त्री द्वारा सम्पादित वासवदत्ता, पृ०-124.

2 पं० शंकरदेव शास्त्री द्वारा सम्पादित वासवदत्ता, पृ०-308-314.

3 रेवया प्रियतमयेव प्रसारिततरंगहस्तयोपगूढः — पं० शंकरदेव शास्त्री द्वारा सम्पादित वासवदत्ता, पृ०-93.

4 हतान्धतमसापि तमसान्विता — पं० शंकरदेव शास्त्री द्वारा सम्पादित वासवदत्ता, पृ०-116

5 बालपुलिनमिव निशायमुनायाः — पं० शंकरदेव शास्त्री द्वारा सम्पादित वासवदत्ता, पृ०-214.

6 पं० शंकरदेव शास्त्री द्वारा सम्पादित वासवदत्ता, पृ०-112-116.

7 पं० शंकरदेव शास्त्री द्वारा सम्पादित वासवदत्ता, पृ०-115.

8 मालिन्या कवरिकया, तुंगभद्रा नासिकया, शोणेनाधरेण, नर्मदया वाचा, गोदया भुजया.....

— पं० शंकरदेव शास्त्री द्वारा सम्पादित वासवदत्ता, पृ०-164.

9 कृतमन्यन्युमिव करतोयाप्लुतमुखम् — पं० शंकरदेव शास्त्री द्वारा सम्पादित वासवदत्ता, पृ०-289.

10 पं० शंकरदेव शास्त्री द्वारा सम्पादित वासवदत्ता, पृ०-290.

एक अन्य स्थल पर गंगा यमुना के संगम का उदाहरण भी उपलब्ध होता है—

हारलतारोमराजिव्याजगंगायमुनासंगमप्रयागतटाभ्याम्।¹

पर्वतों में कथाकार ने हिमालय², मन्दराचल³, विन्ध्याचल⁴, उदयाचल⁵, श्रीपर्वत⁶, तथा सुमेरु⁷ आदि का उल्लेख किया है।

कवि ने मात्र नदियों तथा पर्वतों का ही वर्णन नहीं किया अपितु कवि ने कुछ प्रदेशों क्षेत्रों तथा उनकी विशेषताओं का भी उल्लेख किया है जिनके कारण उन क्षेत्रों की प्रसिद्धि थी। लाटदेशीय स्त्रियों के जूड़े में लगे हुए मौलसिरी के पुष्प की गन्ध से मलय पवन मनोहर हो रहा था—

कन्दर्पकेलिसम्पल्लम्पटलाटीललाटतटलुलितालकधम्मिल्लभारबकुलकुसुमपरिमलमे
लनसमृद्धमधुरिमगुणः।⁸

कर्णाट प्रदेश की स्त्रियाँ कामशास्त्र में प्रवीण थीं—

कामकलाकलापकुशलचारुकर्णाटसुन्दरीस्तनकलशघृसृणधूलिपटल
परिमलामोदवाही।⁹

1 पं० शंकरदेव शास्त्री द्वारा सम्पादित वासवदत्ता, पृ०-52.

2 स हिमालयो नावश्यायोच्छलितः नो मायाजन्मने हितश्च — पं० शंकरदेव शास्त्री द्वारा सम्पादित वासवदत्ता, पृ०-18

3 क मन्दर इव भोगिभोगाकिंतः — आर० वी० कृष्णमाचारियर द्वारा संपादित वासवदत्ता, पृ०-43.

ख. अद्याप्यनिर्मुक्तमन्दरमथनसंस्कारमिवावर्तन्नान्तिभिः — आर० वी० कृष्णमाचारियर द्वारा संपादित वासवदत्ता, पृ०-334.

4 क. आर० वी० कृष्णमाचारियर द्वारा संपादित वासवदत्ता, पृ०-96-109

ख. विन्ध्य इव घनश्यामः — आर० वी० कृष्णमाचारियर द्वारा संपादित वासवदत्ता, पृ०-344.

5 उदयाचलकूटकोटिप्ररुढजपाकुसुमकान्तिभिरिव — आर० वी० कृष्णमाचारियर द्वारा संपादित वासवदत्ता, पृ०-321.

6 श्रीपर्वत इव सन्निहितमल्लिकार्जुनः, — आर० वी० कृष्णमाचारियर द्वारा संपादित वासवदत्ता, पृ०-100

7 क. मेरुखि विबुधालयो विश्वकर्माश्रयश्च, — आर० वी० कृष्णमाचारियर द्वारा संपादित वासवदत्ता, पृ०-21.

ख. आर० वी० कृष्णमाचारियर द्वारा संपादित वासवदत्ता, पृ०-36.

ग. केचित्सुमेरुपरिसरा इव कार्तस्वरमयाः — आर० वी० कृष्णमाचारियर द्वारा संपादित वासवदत्ता, पृ०-177

8 पं० शंकरदेव शास्त्री द्वारा सम्पादित वासवदत्ता, पृ०-146.

9 पं० शंकरदेव शास्त्री द्वारा संपादित वासवदत्ता, पृ०-147.

इसी प्रकार केरल देशीय युवतियाँ कपोलों पर पत्रावली बनाने में निपुण थीं तथा मालवदेशीय स्त्रियाँ चौंसठ कलाओं में निपुण थीं।¹ मालवदेश की स्त्रियों के दन्तपक्ति अत्यन्त धवल थी।² इसके अतिरिक्त कवि ने उपरान्त अर्थात् पश्चिम देश³ की तथा तैलग देशीय स्त्रियों⁴ का वर्णन किया है।

वस्त्र—

कवि द्वारा वस्त्र व्यापार करने वाले वैश्यों का उल्लेख करने से यह ज्ञात हो जाता है कि उस समय तक वृक्ष के पत्तों, छालों तथा अन्य सामग्रियों से बने वस्त्रों का स्थान तन्तु से बने वस्त्रों ने ले लिया था। लोग तत्कालीन मानदण्डों के अनुसार सभ्य समाज के लिये उपयुक्त वस्त्रों को धारण करते थे। उनके वस्त्र स्वच्छ होते थे।⁵ स्त्रियाँ प्रावरण अथवा उत्तरीय को धारण करती थी। जो दुपट्टे के पृथक्-पृथक् प्रकार होंगे। इनमें से प्रावरण परिमाण में उत्तरीय से बड़ा होता होगा। क्योंकि कवि ने अभिसारिका के लिये प्रावरण का प्रयोग किया है।⁶ संभवतः अभिसारिका अपने प्रियतम के पास जाते समय इसका प्रयोग करती होंगी जिससे उनका शरीर पूरी तरह आच्छादित होने से कोई उन्हें न देख सके। कथाकार ने कल्पना की है कि वीरबहूटी से परिपूर्ण नवीन दूब के मैदान पृथ्वी रूपी महिला के लाक्षारस से अंकित शुक के पंखों की तरह हरे रंग के दुपट्टे के समान सुशोभित हो

1 नवयौवनरागतलकेरलीकपोलपालिपद्मावलीपरिचयचतुर, चतु षष्टिकलापविग्धमुग्धमालवनिमितम्बिनी—

नितम्बिम्बसवाहनकुशल — प० शकरदेव शास्त्री द्वारा संपादित वासवदत्ता, पृ०—147

2 तत्काललीलाबहलविश्लविमलमालवीदशनकान्तिदन्तिदन्तघटितो — प० शकरदेव शास्त्री द्वारा संपादित वासवदत्ता, पृ०—252

3 प० शकरदेव शास्त्री द्वारा संपादित वासवदत्ता, पृ०—147.

4 प० शकरदेव शास्त्री द्वारा संपादित वासवदत्ता, पृ०—148

5 क मलिनाम्बरत्व निशासु न जनेषु—आ००वी० कृष्णमाचारियर द्वारा सम्पादित वासवदत्ता, पृ०—148

ख आ०० वी० कृष्णमाचारियर द्वारा संपादित वासवदत्ता, पृ०—347

6 प्रावरणमिव रजनीपासुलाया — आ०० वी० कृष्णमाचारियर द्वारा संपादित वासवदत्ता, पृ०—229

रहे थे—

नवशाद्वलं सेन्द्रगोषं महीमहिलायाः शुकांगश्यामलं लाक्षारसांकितं
स्तनोत्तरीयमिवालक्षयत् ।¹

इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि वस्त्रों को एक ही रंग से नहीं रंगा जाता था। अपितु एक ही वस्त्र को दो अथवा अधिक रंगों से विविध प्रकार से रंगा जाता था।

बौद्ध भिक्षु लाल अथवा गेरुए रंग के वस्त्र धारण करते थे।² भिक्षुक स्त्रियाँ भी रक्त वर्ण के वस्त्र धारण करती थीं।³

आभूषण—

मनुष्य सदैव से आभूषण प्रिय रहा है। स्वयं को अधिक सौन्दर्य युक्त बनाने की जितनी प्रवृत्ति स्त्रियों में है उतनी ही पुरुषों में भी रही है। सुबन्धु ने शरीर के विविध अंगों पर धारण किये जाने वाले आभूषणों की चर्चा की है। स्त्री तथा पुरुष दोनों ही कण्ठ में हार धारण करते थे।⁴ कवि द्वारा पुनः पुनः मोतियों के हार⁵ का उल्लेख करने से ऐसा प्रतीत होता है कि उस समय लोगों को मोती के हार अधिक प्रिय थे। कुछ हारों के मध्य में इन्द्रनील मणि लगी होती थी⁶ किन्तु कुछ हारों के

1 आर० वी० कृष्णमाचारियर द्वारा संपादित वासवदत्ता, पृ०-347

2 क. शाक्य इव रक्तांशुकधरः — आर० वी० कृष्णमाचारियर द्वारा संपादित वासवदत्ता, पृ०-212.

ख. सन्ध्यारक्तांशुके विषमप्ररुढ.....— आर० वी० कृष्णमाचारियर द्वारा संपादित वासवदत्ता, 318.

ग. काषायपट इव शाक्याश्रमशाखिशाखासु — आर० वी० कृष्णमाचारियर द्वारा संपादित वासवदत्ता, 323.

3 भिक्षुकीव तारानुराग रक्ताम्बर धारिणी — आर० वी० कृष्णमाचारियर द्वारा संपादित वासवदत्ता, 221.

4 कुहूमुखमिव हारिकण्ठम्—पं० शंकरदेव शास्त्री द्वारा संपादित वासवदत्ता, पृ०-162.

5 पं० शंकरदेव शास्त्री द्वारा संपादित वासवदत्ता, पृ०-34.

6 विकचविकिकिलराजिरतिकुशलबला कलितेन्द्रनीला मुक्तावलीव मधुश्रियो रुरुचे

— पं० शंकरदेव शास्त्री द्वारा संपादित वासवदत्ता, पृ०-145.

मध्य में मणि नहीं होती थी।¹ एक अन्य स्थल पर 27 मोतियों वाले हार का उदाहरण प्राप्त होता है।² सिर पर चूडामणि धारण की जाती थी।³ हाथों में कगन⁴ तथा भुजाओं में बाजूबन्द⁵ पहने जाते थे। स्त्रियाँ कमर में करधनी धारण करती थीं। कवि ने करधनी के लिये मेखला⁶, रशना⁷, काची⁸, आदि नामों का प्रयोग किया है। संभवतः इनकी बनावट में थोड़ा बहुत अन्तर होगा जिसके कारण इन्हें पृथक्-पृथक् नामों से अभिहित किया जाता होगा। कानों में कुण्डल पहने जाते थे।⁹ यह स्वर्ण निर्मित होते थे।¹⁰ कथाकार ने ताटक नामक कर्णाभूषण का भी उल्लेख किया है जो रत्नजडित¹¹ तथा मणियों से युक्त होते थे।¹² स्त्रियाँ पैरों में नूपुर धारण करती थीं।

नवयावकपंकपल्लवितसनूपुरतरुणीचरण प्रहार..... ।¹³

कवि ने इन्हें 'तुलाकोटि' नाम से अभिहित किया है—

परवशविलासिनीतुलाकेटिविकटचटुलचरणारविन्दमन्द..... ।¹⁴

-
- 1 मुक्तामयोऽप्यतरलमध्य — प० शंकरदेव शास्त्री द्वारा संपादित वासवदत्ता, पृ०-29
 2 निशानिवहा इव नक्षत्रमालोपशोभिता — प० शंकरदेव शास्त्री द्वारा संपादित वासवदत्ता, पृ०-310
 3 क प० शंकरदेव शास्त्री द्वारा संपादित वासवदत्ता, पृ०-8
 ख प० शंकरदेव शास्त्री द्वारा संपादित वासवदत्ता, पृ०-10
 ग चूडामणिरिव उदयनगिरिनागराजस्य — प० शंकरदेव शास्त्री द्वारा संपादित वासवदत्ता, पृ०-216
 4 क प० शंकरदेव शास्त्री द्वारा संपादित वासवदत्ता, पृ०-44
 ख प० शंकरदेव शास्त्री द्वारा संपादित वासवदत्ता, पृ०-173
 5 क वानरसेनामिव सुग्रीववागदशोभिताम् — प० शंकरदेव शास्त्री द्वारा संपादित वासवदत्ता, पृ०-57
 ख बालिनमिवागदोपशोभिताम् — प० शंकरदेव शास्त्री द्वारा संपादित वासवदत्ता, पृ०-162
 6 क मेरुगिरिमखलव सुजातरूपा — प० शंकरदेव शास्त्री द्वारा संपादित वासवदत्ता, पृ०-131
 ख प० शंकरदेव शास्त्री द्वारा संपादित वासवदत्ता, पृ०-242
 7 सैरन्धीबध्यमानरशनाकलापजल्पाकजघनस्थलासु जनीषु, — प० शंकरदेव शास्त्री द्वारा संपादित वासवदत्ता, पृ०-191
 8 क कलहेमकाचीदामकणितै स्मरमिवाहयसि, — प० शंकरदेव शास्त्री द्वारा संपादित वासवदत्ता, पृ०-241
 ख सन्धारुणसूत्रग्रथितप्राचीवधूकाचीकाचनदीनारचक्र इव,
 — प० शंकरदेव शास्त्री द्वारा संपादित वासवदत्ता, पृ०-273
 9 वारुणीवारविलासिन्यरुणमणिकुण्डलकान्ति — प० शंकरदेव शास्त्री द्वारा संपादित वासवदत्ता, पृ०-184
 10 कनककुण्डलमिव नभश्चिन्मिव — प० शंकरदेव शास्त्री द्वारा संपादित वासवदत्ता, पृ०-211
 11 प० शंकरदेव शास्त्री द्वारा संपादित वासवदत्ता, पृ०-120
 12 प० शंकरदेव शास्त्री द्वारा संपादित वासवदत्ता, पृ०-184
 13 प० शंकरदेव शास्त्री द्वारा संपादित वासवदत्ता, पृ०-144
 14 प० शंकरदेव शास्त्री द्वारा संपादित वासवदत्ता, पृ०-136

एक अन्य स्थल पर प्राप्त उदाहरण से यह ज्ञात होता है कि अलंकरण की यह प्रवृत्ति मनुष्यों तक ही सीमित नहीं थी। लोग अपने पशुओं को भी अलंकृत करते थे—

अरण्येनेव गण्डशोभितेन ।¹

सौन्दर्य प्रसाधन—

तत्कालीन समाज में स्वयं को अधिक सुन्दर तथा आकर्षक दिखाने के लिये सौन्दर्य प्रसाधनों का प्रयोग किया जाता था। शरीर को सुगन्धित बनाने के लिये लेप लगाये जाते थे स्तनों पर कुमकुम का लेप किया जाता था—

कामिनीव कालेयाताम्रपयोधरा बभ्रुरिव कपिलतारका भगवती
सन्ध्यामदृश्यत ।²

कुंकुम के समान ही कर्पूर भी लेप के लिये प्रयोग किया जाता था—

कर्पूरिके पाण्डुरय कर्पूरधूलिभिः पयोधरभारम् ।³

चन्दन ताप नाशक के रूप में प्रयुक्त होता था यही कारण है कि वासवदत्ता विरह वेदना से सन्तप्त होने पर अपनी सखी मदनमंजरी से अपने अंगों पर शीतल चन्दन रस छिड़कने के लिये कहती है।⁴ इसके अतिरिक्त चन्दनरस से गृहमार्ग भी सुवासित किये जाते थे—

तमालिके लेपय मलयजरसेन भवनवाटम् ।⁵

1 पं० शंकरदेव शास्त्री द्वारा संपादित वासवदत्ता, पृ०-259.

2 आर० वी० कृष्णमाचारियर द्वारा संपादित वासवदत्ता, पृ०-222

3 आर० वी० कृष्णमाचारियर द्वारा संपादित वासवदत्ता, पृ०-299

4 मुग्धे मदनमंजरी, सिंचागांनि चन्दनवारिणा — आर० वी० कृष्णमाचारियर द्वारा संपादित वासवदत्ता, पृ०-195.

5 आर० वी० कृष्णमाचारियर द्वारा संपादित वासवदत्ता, पृ०-300.

कस्तूरी एक अन्य पदार्थ है जिसका उपयोग सुगन्ध के लिये किया जाता था।¹ ऐसा प्रतीत होता है कि उस समय के लोग सुगन्ध के प्रति अधिक आकर्षित होते थे। क्योंकि कवि ने अगरु² तथा गूगल³ का वर्णन कक्षों को सुवासित करने के लिये किया है। सिर पर तेल लगाया जाता था—

सर्षपस्नेह इव करयुगलालालितोऽपि शिरसा धृतोऽसि न कटुत्वं जहाति।⁴

वासवदत्ता अपनी सखियों से केशपाश में केसर रस डालने के लिये कहती है।⁵ केशों में पुष्प माला गुम्फित की जाती थी।⁶ कन्दर्पकेतु के केशों में भी पुष्पमालाएँ गुंथी हुई थीं।⁷ इससे पता चलता है कि स्त्री तथा पुरुष दोनों समान रूप से अपने केशों को सजाते थे। मस्तक पर तिलक लगाया जाता था।⁸ वासवदत्ता तमालपत्रों से विभूषित समुद्र तट के समान तिलक से अलंकृत थी—

वेलामिव तमालपत्रप्रसाधिताम्।⁹

सुहागिन स्त्रियाँ सिन्दूर लगाती थीं—

क्वचिदविधवामिव, सिन्दूरतिलकभूषिताम्।¹⁰

पैरों में लाक्षारस लगाया जाता था।¹¹ कवि ने कल्पना की है कि अशोक के नवीन लाल पत्ते ऐसे सुशोभित हो रहे थे मानो उनके द्वारा वह लाक्षारस से रंगे हुए

1 कांचनिके विकिर कस्तूरिकाद्रवं कांचनमष्टपिकायाम्—आर०वी०कृष्णमाचारियर द्वारा संपादित वासवदत्ता, पृ०—301.

2 ततो दग्धकृष्णागुरुपरिमलामोदमोहित..... — आर० वी० कृष्णमाचारियर द्वारा संपादित वासवदत्ता, पृ०—170

3 आर० वी० कृष्णमाचारियर द्वारा संपादित वासवदत्ता, पृ०—172.

4 पं० शंकरदेव शास्त्री द्वारा संपादित वासवदत्ता, पृ०—64.

5 पं० शंकरदेव शास्त्री द्वारा संपादित वासवदत्ता, पृ०—251.

6 पं० शंकरदेव शास्त्री द्वारा संपादित वासवदत्ता, पृ०—120

7 मालिन्या कवरिकया — पं० शंकरदेव शास्त्री द्वारा संपादित वासवदत्ता, पृ०—167.

8 शिशिलेखे! विलिख ललाटपट्टे शिशिलेखाम् — पं० शंकरदेव शास्त्री द्वारा संपादित वासवदत्ता, पृ०—249

9 पं० शंकरदेव शास्त्री द्वारा संपादित वासवदत्ता, पृ०—255

10 पं० शंकरदेव शास्त्री द्वारा संपादित वासवदत्ता, पृ०—265.

11 पं० शंकरदेव शास्त्री द्वारा संपादित वासवदत्ता, पृ०—252.

तथा नूपुरयुक्त तरुणी अंगनाओं के चरण प्रकार से संलग्न लालिमा को धारण किये हुए हो।¹

सुबन्धु ने वासवदत्ता के ओष्ठों को प्रेमरूपी समुद्र के विद्रुम खण्ड के सदृश बताया है—

रागसागरविद्रुमशकलेनेव अधरपल्लवेनोपशोभमानाम्।²

एक अन्य स्थल पर कवि ने कहा है कि युवतियों के अधरोष्ठों में लालिमा देखी जा सकती थी।³ प्रस्तुत उदाहरणों से यह अनुमान लगाया जा सकता है कि युवतियाँ अपने ओष्ठों को लाल रंग से सजाती थीं।

अपने सौन्दर्य को निहारने के लिये दर्पण का प्रयोग किया जाता था। कवि ने एक स्थल पर स्वर्णमय दर्पण⁴ तथा अन्यत्र पृथ्वी के दर्पण⁵ के रूप में सागर की चर्चा की है। यही नहीं नाखूनों की सफाई पर भी ध्यान दिया जाता था क्योंकि कवि ने नाखून साफ करने की सलाह⁶ तथा धवल पाषाण खण्ड⁷ का उल्लेख किया है।

भोजन—

तत्कालीन समाज में मांसाहारी तथा शाकाहारी दोनों प्रकार के भोजन का प्रचलन था। कवि द्वारा मछली पकड़ने वाली धीवर⁸ जाति का उल्लेख किया है। अतः यह स्पष्ट है कि मछलियों का क्रय—विक्रय होता होगा तथा लोग उसका खाद्य पदार्थ के रूप में उपयोग करते होंगे।

1 पं० शंकरदेव शास्त्री द्वारा संपादित वासवदत्ता, पृ०—144.

2 पं० शंकरदेव शास्त्री द्वारा संपादित वासवदत्ता, पृ०—53.

3 अधररागता तरुणीषु न परिजनेषु — पं० शंकरदेव शास्त्री द्वारा संपादित वासवदत्ता, पृ०—129.

4 पं० शंकरदेव शास्त्री द्वारा संपादित वासवदत्ता, पृ०—272.

5 दर्पणमिव वसुन्धरायाः — पं० शंकरदेव शास्त्री द्वारा संपादित वासवदत्ता, पृ०—296

6 रतिनखमार्जनरत्नशलाकेव— पं० शंकरदेव शास्त्री द्वारा संपादित वासवदत्ता, पृ०— 300

7 निशायमुनाफेनपुंज इव मेनकानखमार्जनधवलशिलाशकल इव, — पं० शंकरदेव शास्त्री द्वारा संपादित वासवदत्ता, पृ०—38

8 आर० वी० कृष्णमाचारियर द्वारा संपादित वासवदत्ता, पृ०—159.

शाकाहार के अर्न्तगत फल-मूल विविध अनाज आदि का वर्णन उपलब्ध होता है। नायक जब अपने मित्र मकरन्द के साथ घर को त्याग देता है तब उसका मित्र मकरन्द उसे फल लाकर खाने के लिये देता है।¹ इसी प्रकार वासवदत्ता कन्दर्पकेतु को सोते हुए छोड़कर उसके खाने के लिये फल लेने जाती है।² यही नहीं सुबन्धु ने आम³, जामुन⁴, केला⁵, नींबू⁶, बेर⁷, नारियल⁸, ताड़⁹, कैथ¹⁰, तथा कटहल¹¹ आदि के वृक्षों का उल्लेख किया है।

फलों के साथ दूध तथा दूध से बने पदार्थों की भी चर्चा की है। कवि ने चन्द्रमा को रात्रिरूपी ब्रजबाला द्वारा निकाले हुए ताजे मक्खन के पिण्ड के सदृश बताया है—

अनन्तरं शर्वरीव्रजांगनाविष्कृतनूतननवनीतस्वस्तिक इव।¹²

इसी प्रकार चन्द्रमा को कवि ने कालरूपी बौद्ध का दही से शुभ्र ग्रास पिण्ड बतलाया है।¹³ दही को मथने के लिये प्रयोग किये जाने वाले मन्थन दण्ड का नामोल्लेख किया है।¹⁴

1 आर० वी० कृष्णमाचारियर द्वारा संपादित वासवदत्ता, पृ०— 122

2 आर० वी० कृष्णमाचारियर द्वारा संपादित वासवदत्ता, पृ०— 350

3 आर० वी० कृष्णमाचारियर द्वारा संपादित वासवदत्ता, पृ०—153.

4 आर० वी० कृष्णमाचारियर द्वारा संपादित वासवदत्ता, पृ०—122

5 नलकूबरचितवृत्त्येव सततधूतरम्भया — आर० वी० कृष्णमाचारियर द्वारा संपादित वासवदत्ता, पृ०—119.

6 आर० वी० कृष्णमाचारियर द्वारा संपादित वासवदत्ता, पृ०—333

7 करबदरसदृशमखिलं भुवन तलं यत्प्रसादतः कवयः

— आर० वी० कृष्णमाचारियर द्वारा संपादित वासवदत्ता, प्रस्तावना श्लोक 1

8 महावीरैरिव नारिकेलिधरैः — पं० शंकरदेव शास्त्री द्वारा संपादित वासवदत्ता, पृ०—118.

9 तालफलस्य इवापातमधुरः परिणामविरसस्तिक्तश्च — पं० शंकरदेव शास्त्री द्वारा संपादित वासवदत्ता, पृ०—64.

10 पं० शंकरदेव शास्त्री द्वारा संपादित वासवदत्ता, पृ०—79.

11 पवनसंवाहितानेकपनसविटपिविटपेन — पं० शंकरदेव शास्त्री द्वारा संपादित वासवदत्ता, पृ०—280

12 आर० वी० कृष्णमाचारियर द्वारा संपादित वासवदत्ता, पृ०—246.

13 दधिधवलकालक्षपणकपिण्ड इव — आर० वी० कृष्णमाचारियर द्वारा संपादित वासवदत्ता, पृ०—56, 57.

14 आर० वी० कृष्णमाचारियर द्वारा संपादित वासवदत्ता, पृ०—86.

अनाजो के अन्तर्गत गेहूँ, चावल का वर्णन प्राप्त होता है। गेहूँ को कवि ने 'गौरगोधूम' नाम से वर्णित किया है। चावल को कवि ने तण्डुल¹ तथा शालि² नाम से पुकारा है।

इसके अतिरिक्त इलायची, लौंग³, लवण⁴, मिर्च⁵ तथा हरिद्रा⁶ का प्रयोग किया है।

रोग एव औषधि—

कवि ने शारीरिक तथा मानसिक रोगों का वर्णन किया है। वासवदत्ता स्वप्न में कन्दर्पकेतु के दर्शनो के पश्चात् अन्धी, बहरी, गूँगी के समान हो जाती है।⁷ ये सब शारीरिक विकार हैं। एक अन्य स्थल पर कवि ने कुष्ठ रोग का उल्लेख किया है—

शिवत्रदुर्भगेष्विव शरीरेष्वनास्था कलयन्तः।।⁸

मानसिक रोग अपस्मार का उदाहरण भी उपलब्ध होता है—

सापस्मारमिव सितफेनसचयै⁹

इसके अतिरिक्त विक्षिप्त रोगी का वर्णन किया गया है।¹⁰ सुबन्धु के अनुसार पुराना रोगी शरीर में दुर्बल तथा अक्षम हो जाता है।¹ एक अन्य गुल्म नामक रोग की चर्चा की गयी है।²

1 काचनच्छेदगौरगोधूमशालिनि — आर० वी० कृष्णमाचारियर द्वारा संपादित वासवदत्ता, पृ०—349

2 चन्द्रमण्डले कण्डनकिर्णेषु तण्डुलष्विव तारागणेषु उन्मीलत्सु

— आर० वी० कृष्णमाचारियर द्वारा संपादित वासवदत्ता, पृ०—320

3 खलसयोग शालिषु — आर० वी० कृष्णमाचारियर द्वारा संपादित वासवदत्ता, पृ०—26

4 कर्पूरकुङ्कुमचन्दनैलालवगपरिमलवाहिनीभि — प० शंकर देव शास्त्री द्वारा संपादित वासवदत्ता, पृ०—234

5 प० शंकर देव शास्त्री द्वारा संपादित वासवदत्ता पृ०—288

6 कुहरितहरिद्रादव— प० शंकर देव शास्त्री द्वारा संपादित वासवदत्ता पृ०—284

7 प० शंकरदेवी शास्त्री द्वारा संपादित वासवदत्ता पृ०—171

8 प० शंकर देव शास्त्री द्वारा संपादित वासवदत्ता पृ०—310

9 प० शंकर देव शास्त्री द्वारा संपादित वासवदत्ता पृ०—288

10 सोन्मादेनेव वायुवेगविक्षिप्तेन — प० शंकर देव शास्त्री द्वारा संपादित वासवदत्ता, पृ०—312

रोग के अतिरिक्त कवि ने औषधि के विषय में बताया है। मरुबक औषधि शिशिर ऋतु में होती है वसन्त में नहीं। अतः कवि ने कल्पना की है कि वसन्त में मरुबक औषधि का तिरस्कार कर दिया था।³ अन्यत्र कवि ने औषधि का उल्लेख किया है।⁴

मनुष्य के समक्ष उचित तथा अनुचित दोनों प्रकार के मार्ग होते हैं। यह मनुष्य के ऊपर निर्भर करता है कि वह किस मार्ग का चयन करता है। मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। अतः उसके अच्छे अथवा बुरे स्वभाव से ही समाज में अच्छाई तथा बुराई का समावेश हो जाता है। सुबन्धुकालीन समाज में जहाँ एक ओर लोगों की धर्म में आस्था थी तो दूसरी ओर कुछ कुरीतियाँ भी थीं। जहाँ लोग तप, वेदाध्ययन करते थे, वहीं कुछ लोग मद्य का सेवन करते थे। यहाँ तक कि ब्राह्मण भी मदिरापान करते थे। इसी प्रकार कवि द्वारा द्यूतशास्त्र⁵ का उल्लेख करने से यह ज्ञात होता है कि समाज में द्यूत खेला जाता होगा। कवि ने निर्धन वर्ग⁶ का वर्णन भी किया है। इससे स्पष्ट होता है कि विलासिता से युक्त उस काल में भी लोग दरिद्रता से पीड़ित थे।

निष्कर्ष रूप में डॉ० सलमा महफूज़ का कथन प्रशंसनीय है — प्रत्येक कवि की रचना में तत्कालीन सामाजिक परिवेश का प्रतिबिम्ब उपलब्ध होता है। विभिन्न कृतियों के अध्ययन से युगों बाद भी तत्कालीन समाज, रहन-सहन आदि के विषय

1 जीर्णरोग इव कलेवरे वचसि मन्दिमानमावहति, — पं० शंकर देव शास्त्री द्वारा संपादित वासवदत्ता, पृ०-68.

2 यश्च प्रवृद्धगुल्मतया रोगीव, — पं० शंकर देव शास्त्री द्वारा संपादित वासवदत्ता, पृ०-85.

3 समृद्धकासारशकुनिसार्थ इव निन्दितमरुबकः—पं० शंकर देव शास्त्री द्वारा संपादित वासवदत्ता, पृ०-140

4 सततहितपथ्यामपि प्रवृद्धगुल्माम्— पं० शंकर देव शास्त्री द्वारा संपादित वासवदत्ता, पृ०-267.

5 पं० शंकरदेव शास्त्री द्वारा संपादित वासवदत्ता, पृ०-158.

6 पं० शंकर देव शास्त्री द्वारा संपादित वासवदत्ता, पृ०-186.

में सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है। सुबन्धु द्वारा रचित 'वासवदत्ता' कथा यद्यपि प्रत्यक्षर श्लेष रचना होने के कारण क्लिष्ट है। किन्तु वह तत्कालीन समाज का दर्पण है। कवि ने कथा में सूक्ष्म से सूक्ष्म तथ्यों का समावेश कर दिया है। यथार्थ में सुबन्धु की 'वासवदत्ता' तत्कालीन समाज का स्पष्ट चित्र प्रस्तुत करती है।¹

1 सुबन्धु का सांस्कृतिक सर्वेक्षण, डॉ० सलमा महफूज, जर्नल ऑफ गंगानाथ झा, केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ, इलाहाबाद, 2000, Vol 56

सप्तम अध्याय

उपसंहार-अनुसंधान के निष्कर्ष

सप्तम अध्याय

उपसंहार—अनुसंधान के निष्कर्ष

सुबन्धु संस्कृत साहित्य के गद्य कवियों में प्रथम स्थान रखते हैं। उनकी कृति 'वासवदत्ता' कथा गद्य साहित्य की प्रथम विकसित शैली में निबद्ध रचना है। यद्यपि सुबन्धु के पूर्व भी गद्य के क्षेत्र में रचनाएँ होती रही हैं। तथापि जो समग्रता तथा स्पष्टता गद्यकारत्रय सुबन्धु, दण्डी एवं बाण की रचनाओं में उपलब्ध होती है, वह अन्य रचनाओं में प्राप्त नहीं होती।

प्रथम अध्याय के अन्तर्गत सुबन्धु के देश—काल निर्णय एवं व्यक्तिगत जीवन सम्बन्धी विभिन्न पक्षों पर प्रकाश डाला गया है। सुबन्धु से सम्बन्धित प्रत्येक पक्ष विवादित रहा है। उनके माता—पिता का क्या नाम था? इस सन्दर्भ में कोई सामग्री उपलब्ध नहीं होती। किन्तु फिर भी उन्हें वररुचि तथा दामोदर से सम्बद्ध किया गया है। ये तथ्य अनुमानों पर आधारित होने के कारण इस सम्बन्ध में निश्चित रूप से कुछ कहा नहीं जा सकता। सुबन्धु के नाम के विषय में भी विभिन्न मत प्रचलित हैं। इनमें उल्लेखनीय है सुबन्धु का नाटककार के रूप में स्मरण। किन्तु विविध साक्ष्यों से यह ज्ञात हो जाता है कि नाटककार सुबन्धु पृथक् व्यक्ति हैं तथा कथाकार सुबन्धु पृथक् व्यक्ति हैं। कथाकार सुबन्धु के जन्मस्थान के विषय में भी मतभेद हैं। कुछ विद्वान् उन्हें बंगाल का निवासी मानते हैं और कुछ कश्मीर का। किन्तु कवि द्वारा वासवदत्ता में उल्लिखित विभिन्न उदाहरणों के प्रकाश में उन्हें मालवा का निवासी मानना अधिक उचित प्रतीत होता है। सुबन्धु के समय निर्धारण में उनके द्वारा राजा विक्रमादित्य का उल्लेख महत्वपूर्ण साक्ष्य है। विक्रमादित्य के शासन काल के विषय

में भी विद्वानों में मतभेद रहा है। इस सन्दर्भ में पुरातत्त्ववीय साक्ष्यों तथा विद्वानों के मतों के निष्कर्षस्वरूप यह तथ्य प्रकट होता है कि सुबन्धु ने जिस राजा की प्रशंसा दसवें प्रस्तावना श्लोक में की है वह और कोई नहीं अपितु विक्रमादित्य चन्द्रगुप्त द्वितीय है। उसके वंशज गोविन्दगुप्त के दुष्कृत्यो दुःखी होकर ही सुबन्धु ने दसवें श्लोक की रचना की। बाह्य साक्ष्यों के अन्तर्गत सुबन्धु एवं बाण में से कौन पूर्ववर्ती था इस तथ्य का विस्तृत विवेचन प्रस्तुत किया गया है। इन साक्ष्यों के आधार पर सुबन्धु की पूर्ववर्ती सीमा 385 ई० से 465 ई० के मध्य तथा परवर्ती सीमा छठी शताब्दी अथवा इससे पूर्व मानी गयी है।

द्वितीय अध्याय में उदयन और वासवदत्ता के पारम्परिक आख्यान के सन्दर्भ में सुबन्धु के इतिवृत्त का पर्यालोचन किया है। इस दृष्टि से यह अध्याय महत्त्वपूर्ण है। कथा का नाम 'वासवदत्ता' होने के कारण यह प्रतीत होता है कि यह कथा गुणाढ्य कृत बृहत्कथा से प्रभावित रही होगी। किन्तु ऐसा नहीं है। कवि ने मात्र पात्रों के नामों को ही गुणाढ्य से ग्रहण किया है। उदयन तथा वासवदत्ता के पारम्परिक आख्यान के विषय में विभिन्न स्रोतों से ज्ञात होता है। पुराणों, जैन धर्म तथा बौद्ध धर्म के ग्रंथों में यह आख्यान अल्प परिवर्तनों के साथ उपलब्ध होता है। किन्तु सुबन्धु विरचित 'वासवदत्ता' कथा का अध्ययन करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि इस गद्यकथा का संस्कृत साहित्य की अन्य कृतियों से कोई साम्य नहीं है। कवि ने प्रसिद्ध नामों का आश्रय तो लिया है किन्तु कथानक मौलिक है। अतः बुद्धस्वामी कृत 'बृहत्कथाश्लोकसंग्रह', क्षेमेन्द्र कृत 'बृहत्कथामंजरी' की संक्षिप्त चर्चा करते हुए सोमदेव कृत 'कथासरित्सागर', भास विरचित 'स्वप्नवासवदत्तम्' नाटक तथा श्रीहर्षकृत

‘प्रियदर्शिका’ तथा ‘रत्नावली’ नाटिकाओं का पूर्ण विवरण प्रस्तुत किया है।

तृतीय अध्याय के अन्तर्गत गद्यकाव्य के प्रतिमानों के विनिश्चय सुबन्धु की अधमर्णता तथा उत्तमर्णता पर चर्चा की है। विषय को स्पष्ट करने के निमित्त सर्वप्रथम गद्य क्या है? तथा गद्य का विकास किन चरणों में किस प्रकार हुआ? इसका विवेचन दिया है। संस्कृत गद्य अपनी संक्षिप्तिता के कारण प्रायः कवियों, दार्शनिकों तथा विचारकों को लुभाता रहा है। इसके अतिरिक्त अधिक से अधिक अर्थ को कम से कम शब्दों में व्यक्त करने की क्षमता भी उसे एक विशिष्ट बनाती है। इसके पश्चात् आख्यायिका तथा कथा के लक्षणों की चर्चा की गयी है। इनके मध्य के अन्तर को सुस्पष्ट करने हेतु अग्निपुराण, भामह दण्डी, रुद्रट, हेमचन्द्र, विश्वनाथ आदि के लक्षणों का वर्णन किया गया है। तत्पश्चात् कथा के लक्षणों के आधार पर ‘वासवदत्ता’ को कथा सिद्ध करने के पश्चात् आधुनिक कवियों द्वारा उद्धृत ‘उपन्यास’ विधा का भी उल्लेख किया गया है। आधुनिक कवियों बलदेव उपाध्याय तथा कलानाथ शास्त्री ने वासवदत्ता को उपन्यास के रूप में उद्धृत किया है।

चतुर्थ अध्याय में वासवदत्ता के कला पक्ष के अन्तर्गत अलंकार, शैली, वैविध्य, भाषा, चरित्र-चित्रण तथा इतिवृत्त और चित्रणों के परस्पर सामंजस्य का विवेचन प्रस्तुत किया गया है। सुबन्धु द्वारा अनुप्रास, श्लेष, उपमा, उत्प्रेक्षा, दृष्टान्त, यमक, रूपक, अपह्नुति, अर्थान्तरन्यास, अतिशयोक्ति, व्यतिरेक, अप्रस्तुतप्रशंसा, अनुमान, परिकर आदि अलंकारों का प्रयोग प्रशंसनीय है। सुबन्धु का श्लेष अलंकार के प्रति प्रेम सर्वविदित ही है। इसी कारण उन्होंने ‘वासवदत्ता’ श्लेष अलंकार में निबद्ध किया है। कथाकार ने अपनी रचना में मुख्य रूप से गौड़ी रीति का प्रयोग किया है। गौड़ी

रीति के साथ-साथ वैदर्भी, पांचाली तथा लाटी रीति के उदाहरण भी यत्र तत्र उपलब्ध होते हैं। कवि ने स्थल-स्थल पर कथोपकथनात्मक शैली का प्रयोग किया है। गौड़ी रीति प्रधान होने के कारण कथा में ओज गुण प्रमुख रूप से वर्णित है। किन्तु प्रसाद, माधुर्य, आदि गुणों का प्रयोग किया गया है सुबन्धु ने मानवीय तथा मानवेतर पात्रों का चित्रण भलीभाँति किया है। 'वासवदत्ता' का नायक कन्दर्पकेतु धीरोदात्त कोटि का नायक है। वह सर्वगुण सम्पन्न, पराक्रमी, तेजस्वी, सर्वप्रिय, रूपवान् तथा युवा है। इसी प्रकार 'वासवदत्ता' कथा की नायिका वासवदत्ता प्रथमतः परकीया किन्तु बाद में स्वकीया नायिका के रूप में वर्णित हैं। इसके अतिरिक्त राजा चिन्तामणि, शृंगारशेखर तथा अनंगवती आदि पात्रों का उल्लेख प्राप्त होता है। मानवेतर पात्रों में शुक तथा सारिका महत्त्वपूर्ण चरित्र हैं। इसके अतिरिक्त इतिवृत्त तथा चित्रणों में तालमेल प्रदर्शित करने की दृष्टि से यह अध्याय महत्त्वपूर्ण है।

पंचम अध्याय में वासवदत्ता के भाव पक्ष का विवरण प्रस्तुत किया है। इस अध्याय में कथानक का मौलिक अभिधेय बताया गया है। वासवदत्ता कथा में कवि ने रसों का किस प्रकार समायोजन किस प्रकार किया है इसका विवेचन प्रस्तुत करने से पूर्व रस सम्बन्धी मतों को क्रमानुसार प्रस्तुत करते हुए रस संख्या पर भी विचार किया गया है। रस शब्द का प्रयोग ऋग्वेद, उपनिषद् आदि में विविध अर्थों में किया गया है। कथा का प्रधान रस विप्रलम्भ शृंगार है। इसके अतिरिक्त सम्भोग शृंगार, वीर, वीभत्स रौद्र, भयानक, हास्य तथा अद्भुत आदि रसों के उदाहरणों का उल्लेख किया है।

षष्ठ अध्याय के अन्तर्गत 'वासवदत्ता' में प्रतिबिम्बित समाज एवं संस्कृति का

विवरण प्रस्तुत करने के कारण यह अध्याय महत्वपूर्ण है। गद्यकार सुबन्धु ने ब्राह्मण, क्षत्रिय वैश्य, शूद्र इन चारों वर्णों ब्रह्मचर्य, गृहस्थ तथा संन्यास आश्रमों की ओर संकेत किया है। इसके अतिरिक्त तत्कालीन धार्मिक, राजनीतिक, आर्थिक भौगोलिक स्थितियों का वर्णन इस अध्याय में किया गया है। सुबन्धु ने विभिन्न देवी-देवताओं के अवतारों तथा उनके पर्यायवाची नामों का उल्लेख किया है। उस समय में लोगों के धार्मिक विश्वास अत्यन्त दृढ़ थे। वे यज्ञ, गो सेवा आदि करते थे। तत्कालीन राजनीतिक सुदृढ़ता का ज्ञान राजा चिन्तामणि तथा राजा शृंगारशेखर के वर्णन से हो जाता है। सुबन्धु द्वारा बौद्ध, जैन, मीमांसा, चार्वाक, न्याय आदि के उल्लेख से यह ज्ञात होता है कि सुबन्धुकालीन समाज में इनका प्रचलन था। इसी प्रकार कवि द्वारा वेद, पुराण, उपनिषद्, रामायण, महाभारत तथा विविध आख्यानों को उद्धृत करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि समाज में शिक्षा के प्रति जागरुकता थी। सुबन्धु द्वारा विभिन्न पर्वतों, नदियों तथा प्रदेशों के वर्णन से तत्कालीन भौगोलिक स्थिति का परिचय प्राप्त हो जाता है। सुबन्धु ने स्थल-स्थल पर तत्कालीन समय में धारण किये जाने वाले वस्त्रों तथा आभूषणों की चर्चा की है। साथ ही कवि द्वारा विविध प्रकार के अनाजों तथा अन्य भोज्य पदार्थों का वर्णन किया गया है। कथाकार ने मिर्गी तथा रतौधी आदि रोगों की चर्चा की है। सुबन्धु के गुप्तकालीन होने के कारण उनकी कृति पर भी गुप्त कालीन समाज एवं सुदृढ़ शासन व्यवस्था का प्रभाव स्पष्ट रूप से लक्षित होता है।

इस प्रकार 'वासवदत्ता' के समग्र अनुशीलन से यह स्पष्ट हो जाता है कि सुबन्धु की एक मात्र कृति 'वासवदत्ता' के कारण ही युग वर्ष पर्यन्त उनका स्मरण

किया जायेगा। यह कृति उनकी प्रसिद्धि का कारण है। कवि ने विद्वत्ता एवं कल्पना का समावेश करके ऐसी कथा की रचना की जिसका साम्य संस्कृत साहित्य में नहीं मिलता। इसी कारण यह कृति गद्यकाव्य के क्षेत्र में विशिष्ट स्थान रखती है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- 1 अग्निपुराण अनुवादक— तारिणीश झा एवं घनश्याम त्रिपाठी, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, द्वितीय सस्करण, 1998
- 2 अभिनवभारती अभिनव गुप्त, सम्पादक— डॉ० नगेन्द्र दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, प्रथम सस्करण, 1970
- 3 अभिज्ञानशाकुन्तलम् कालिदास, सम्पादक—डॉ० कपिलदेव द्विवेदी, आचार्य, रामनारायण लाल, बेनीमाधव, इलाहाबाद, पचम सस्करण, 1969
- 4 अथर्ववेद प० श्रीपाद दामोदर सातवेलकर स्वाध्याय मण्डल पारडी, सूरत, 1958
- 5 अर्थशास्त्र कौटिल्य अनुवादक— रघुनाथ सिंह कृष्णदास अकादमी वाराणसी, प्रथम सस्करण, 1986
- 6 अरस्तु का काव्यशास्त्र अनुवादक— डॉ० नगेन्द्र, भारती भण्डार, इलाहाबाद, प्रथम सस्करण

-
7. अलंकार समीक्षा : डॉ० लक्ष्मीनारायण पुरोहित, सम्पादक—
डॉ० चन्द्रशेखर पुरोहित, नाग प्रकाशन,
दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1997
8. अलंकारसर्वस्व : रुय्यक, व्याख्याकार— रेवा प्रसाद द्विवेदी
चौखम्बा संस्कृत सीरीज, वाराणसी,
प्रथम संस्करण, 1971
9. आधुनिक काल का : कलानाथ शास्त्री
संस्कृत गद्य साहित्य : राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान, दिल्ली, 1995
10. आधुनिक संस्कृत : बलदेव उपाध्याय, सम्पादक— जगन्नाथ
साहित्य का इतिहास : पाठक, उत्तर प्रदेश संस्कृत संस्थान,
लखनऊ, प्रथम संस्करण, 2000
11. आर्यमंजूश्रीमूलकल्प : गणपति शास्त्री, अनन्तशायन राजकीय
मुद्रण, यन्त्रालय, 1920-25
12. ईशावास्योपनिषद् : सम्पादक—वाचस्पति पाण्डेय विकल
(शांकर भाष्य सहित) : साहित्य भण्डार, मेरठ
13. ऋग्वेद : सम्पादक— लक्ष्मण स्वरूप
मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 1939
14. ऋग्वेद सर्वानुक्रमणी : सम्पादक— उमेश चन्द्र शर्मा, विवेक
प्रकाशन, प्रथम संस्करण, 1977

- 15 ऐतरेय उपनिषद् श्रीपाद दामोदर सातवेलकर, भारत
मुद्रणालय आनन्दाश्रम, सूरत, 1953
- 16 ऐतरेय ब्राह्मण सम्पादक— पी० के० नारायण पिल्ल,
मेहरचन्द मुन्शीराम, दिल्ली, 1952
- 17 औचित्यविचारचर्चा क्षेमेन्द्र, सम्पादक—डा० मनोहरलाल गौड,
भारत प्रकाशन मन्दिर, अलीगढ
- 18 कथासरित्सागर सोमदेव भट्ट, अनुवादक—केदारनाथ
शर्मा सारस्वत, राष्ट्रभाषा परिषद, बिहार,
1960-61
- 19 कादम्बरी बाणभट्ट, टीका—भानुचन्द्र, सिद्धचन्द्र
अनुवादक—रतिनाथ झा,
मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली,
द्वितीय संस्करण, 1970
- 20 कादम्बरी बाणभट्ट, सम्पादक—आचार्य शेषराज
शर्मा रेग्मी, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन
वाराणसी प्रथम संस्करण, 1979
- 21 कथासरित्सागर तथा भारतीय संस्कृति डॉ० एस० एन० प्रसाद
चौखम्बा ओरियन्टालिया, वाराणसी
प्रथम संस्करण, 1978

-
22. कठोपनिषद् : गीताप्रेस, गोरखपुर
23. काव्यादर्श : दण्डी, व्याख्याकार— धर्मेन्द्र कुमार गुप्त,
मेहरचन्द लछमनचन्द, दिल्ली, प्रथम
संस्करण, 1973
24. काव्यानुशासन : हेमचन्द्र, सम्पादक— रसिकलाल सी०
पारिख, महावीर जैन विद्यालय, बम्बई
प्रथम संस्करण, 1938
25. काव्यप्रकाश : मम्मट, सम्पादक— डॉ० श्रीनिवास शास्त्री,
साहित्य भण्डार, मेरठ, 1999
26. काव्यमीमांसा : राजशेखर, व्याख्याकार— डॉ० गंगासागर
राय, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी,
चतुर्थ संस्करण, 2000
27. काव्यालंकार : भामह, अनुवादक—टी० वी० नागनाथ,
तंजौर वल्लास प्रिन्टिंग प्रेस, 1927
28. काव्यालंकार : रुद्रट, व्याख्याकार— डॉ० सत्यदेव चौधरी,
वासुदेव प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण,
1965
29. काव्यालंकारसूत्रवृत्ति : वामन, व्याख्याकार—आचार्य विश्वेश्वर
सिद्धान्त शिरोमणि, सम्पादक—डॉ०
नगेन्द्र, आत्माराम एण्ड संस, 1945

30. किरातार्जुनीयम् : भारवि, व्याख्यकार—श्री आदित्य नारायण
पाण्डेय, सम्पादक—पं० शोभित मिश्र
चौखम्बा संस्कृत पुस्तकालय, वाराणसी
1952.
31. कुट्टनीमतम् काव्यम् : दामोदर गुप्त, सम्पादक— मधुसूदन कौल
रॉयल एशियाटिक सोसाइटी, कलकत्ता,
1944
32. कुवलयानन्द : अप्पय्य दीक्षित, व्याख्याकार—डॉ०
भोलाशंकर व्यास, चौखम्बा विद्याभवन,
वाराणसी, 1956
33. कूर्म पुराण : सम्पादक—पं० श्रीराम शर्मा आचार्य,
संस्कृति संस्थान, बरेली, प्रथम संस्करण,
1970
34. कनोपनिषद् : व्याख्याकार— श्री बालकृष्ण शास्त्री, चेतन
प्रकाश मन्दिर, बड़ौदा, प्रथम संस्करण,
1955
35. कौषीतकि उपनिषद् : व्याख्या—शंकरानन्द,
चौखम्बा संस्कृत सीरीज, वाराणसी, 1968
36. कौषीतकि ब्राह्मण : सम्पादक—ई० आर० श्रीकृष्ण शर्मा, फ्रेज
स्टीनर वर्ल्ग, वैसवडन, 1976

37. गउडवहो : वाक्पति, सम्पादक— शंकर पाण्डुरंग
पण्डित, भण्डारकर ओरिएन्टल रिसर्च
इंस्टीट्यूट, पूना, 1927
38. गरुड पुराण : सम्पादक— पं० श्रीराम शर्मा आचार्य,
संस्कृति संस्थान बरेली, प्रथम संस्करण,
1968
39. गोपथ ब्राह्मण : सम्पादक— विजयपाल विद्यावारिधि,
सावित्री देवी बागड़िया ट्रस्ट, कलकत्ता,
प्रथम संस्करण, 1980
40. छान्दोग्य उपनिषद् : सम्पादक—विनायक गणेश आपटे,
आनन्दाश्रम मुद्रणालय, पूना, पंचम
संस्करण, 1934
41. ताण्डय ब्राह्मण : सम्पादक— पं० श्री चिन्नस्वामी शास्त्री,
(सायण भाष्य सहित) चौखम्बा संस्कृत सीरीज, वाराणसी, 1991
42. तापसवत्सराजचरित : अनंगहर्षमातृराज, सम्पादक—यदुगिरि
यतिराज, ए० श्रीनिवास अयंगर, बंगलौर,
1929
43. तैत्तिरीय उपनिषद् : श्रीपाद दामोदर सातवेलकर, भारत
मुद्रणालय, सूरत, 1956

44. तैत्तिरीय ब्राह्मण : सम्पादक—विनायक गणेश आपटे,
(सायण भाष्य सहित) आनन्दाश्रम मुद्रणालय, पूना, 1938
45. दशकुमारचरित : दण्डी, टीकाकार—विश्वनाथ झा,
मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी,
द्वितीय संस्करण, 2002
46. दशरूपक : धनंजय, सम्पादक— डॉ० भोलाराम व्यास,
चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, एकादश
संस्करण, 1998
47. ध्वन्यालोक : आनन्दवर्धन, सम्पादक— डॉ० नगेन्द्र
ज्ञानमण्डल लिमिटेड, वाराणसी द्वितीय
संस्करण
48. नलोपाख्यान : व्याख्याकार—काशीनाथ द्विवेदी, चौखम्बा
संस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी, 1966
49. नाट्यशास्त्र : भरतमुनि, संपादक तथा व्याख्या—बाबूलाल
शुक्ल, चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी
50. नाट्यशास्त्र : अभिनवगुप्त, सम्पादक—एम० रामकृष्ण,
ओरिएन्टल इन्स्टीट्यूट, बडौदा
51. नाट्यदर्पण : रामचन्द्र गुणचन्द्र, सम्पादक—डॉ० नगेन्द्र
हिन्दी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय,
दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1961.

52. नाट्यलक्षणरत्नकोश : सागरनन्दी, सम्पादक—बाबूलाल शुक्ल
चौखम्बा संस्कृत सीरीज, वाराणसी, 1972
53. नामलिङ्गानुशासन : अमर सिंह, व्याख्याकार—भानुजि दीक्षित,
सम्पादक— शिवदत्त, निर्णय सागर, बम्बई,
1944
54. निरुक्त : सायण, व्याख्या—श्री भगीरथ शास्त्री,
मेहरचन्द लछमनदास पब्लिकेशन,
दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 1985
55. पुरुषार्थचतुष्टय : प्रेमबल्लभ त्रिपाठी, राजविद्या ग्रन्थमाला,
वाराणसी, संस्करण—1, 1970
56. प्रतापरुद्रीयम् : विद्यानाथ, सम्पादक— वे० राघवन
मद्रपुरी संस्कृत विद्या समिति, मद्रास,
1970
57. प्रश्नोपनिषद् : सम्पादक— विनायक गणेश आपटे,
आनन्दाश्रम मुद्रणालय, पुणे
1932
58. प्रियदर्शिका : श्रीहर्ष, टीकाकार— पं० श्रीरामचन्द्र मिश्र
चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, 1955
59. बृहदारण्यक उपनिषद् : सम्पादक—काशीनाथ आगाशे, आनन्दाश्रम
मुद्रणालय, पूना, 1927

60. भविष्य पुराण : सम्पादक—खेमराज श्रीकृष्णदास,
नाग पब्लिशर्स, 1984
61. भावप्रकाश : शारदातनय, सम्पादक—यदुगिरि यतिराज
स्वामी तथा के० एस० रामास्वामी शास्त्री,
गायकवाड़ ओरिएन्टल सीरीज, बड़ौदा,
1930
62. महाभारत : गीताप्रेस, गोरखपुर
63. महाभाष्य : पतंजलि, व्याख्या—रुद्रधर झा शर्मा,
चौखम्बा संस्कृत सीरीज, वाराणसी, 1954
64. माण्डूक्योपनिषद् : गीताप्रेस, गोरखपुर
65. मालतीमाधव : भवभूति, सम्पादक— रामकृष्ण भण्डारकर
भाण्डारकर प्राच्य विद्या संशोधन मन्दिर
पुणे, 1970
66. मीमांसा शाबर भाष्य : शबरस्वामी, व्याख्याकार— युधिष्ठिर
मीमांसक, सुरेन्द्र कपूर रामलाल कपूर
ट्रस्ट, बहालगढ (सोनीपत)
प्रथम संस्करण, 1977
67. मीमांसा दर्शन : जैमिनि, सम्पादक— पं० श्रीराम शर्मा
आचार्य, संस्कृति संस्थान, बरेली, द्वितीय
संस्करण, 1966

68. मेघदूतम् : कालिदास
सम्पादक-डॉ० बिजेन्द्र कुमार शर्मा
साहित्य भण्डार मेरठ,
पंचम संस्करण-1997.
69. मृच्छकटिकम् : शूद्रक, व्याख्या-श्रीनिवास शास्त्री,
साहित्य भण्डार मेरठ, अष्टम संस्करण,
1996
70. रत्नावली : श्रीहर्ष सम्पादक-डॉ० शिवराज शास्त्री
साहित्य भण्डार मेरठ, 1998
71. रसगंगाधर : पण्डित राज जगन्नाथ,
सम्पादक- पं० केदारनाथ ओझा,
सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय,
वाराणसी, प्रथम संस्करण, 1902
72. रस सिद्धान्त : डॉ० नगेन्द्र
नेशनल पब्लिशिंग हाउस
दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1964
73. रसकौस्तुभ : वेणीदत्त सम्पादक-डॉ० ब्रह्ममित्र अवस्थी
इन्दु प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण,
1978.

74. रसार्णव सुधाकर : शिंगभूपाल
सम्पादक-डॉ० रेवाप्रसाद द्विवेदी,
संस्कृत परिषद, सागर विश्वविद्यालय
सागर, 1969.
75. रघुवंशम् महाकाव्य : कालिदास, व्याख्या-डॉ० श्रीकृष्णमणि
त्रिपाठी, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन,
वाराणसी, पंचम संस्करण, 1994
76. रामायण : वाल्मीकि, गीताप्रेस, गोरखपुर
77. राजतरंगिणी : कल्हण, व्याख्याकार-श्रीरामतेज शास्त्री
पाण्डेय, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान,
दिल्ली, 1985
78. वक्रोक्तिजीवित : कुन्तक, व्याख्या-विश्वेश्वर सिद्धान्त
शिरोमणि, सम्पादक-डॉ० नगेन्द्र,
आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली 1955
79. वाग्भटालंकार : वाग्भट, टीकाकार-डॉ० सत्यव्रत सिंह,
चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, 1957.
80. वासवदत्ता : सुबन्धु, सम्पादक-पं० शंकरदेव शास्त्री,
चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी
81. वासवदत्ता : सुबन्धु, सम्पादक-आर० वी०
कृष्णमाचारियर, श्री वाणी विलास प्रेस,

- श्रीरंगम, 1906
82. विक्रमांकदेवचरित : बिल्हण, सम्पादक—श्री हरगोविन्द शास्त्री,
चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी,
द्वितीय संस्करण, 1984
83. विशेषावश्यकभाष्य : जिनभद्र, सम्पादक—पं० दलसुख
(प्रथम भाग) मालवणिया, लालभई दलपतभाई
भारतीय संस्कृति, विद्यामन्दिर, अहमदबाद,
प्रथम संस्करण—1966
84. विष्णु पुराण : सम्पादक—पं० श्रीराम शर्मा आचार्य
संस्कृति संस्थान बरेली
प्रथम संस्करण 1967.
85. वैदिक आख्यान : गंगासागर राय, चौखम्बा विद्याभवन,
वाराणसी, 1964.
86. वैराग्यशतक : भर्तृहरि, सम्पादक—श्री जगन्नाथ शास्त्री,
चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, प्रथम
संस्करण, 1961
87. वैशेषिक दर्शन : कणाद, श्री टी० वीरराघवाचार्य,
श्रीवत्स प्रेस, मद्रास, प्रथम संस्करण, 1958
88. व्यक्तिविवेक : महिमभट्ट, व्याख्याकार—पं० रेवा प्रसाद
द्विवेदी, चौखम्बा संस्कृत संस्थान,

- वाराणसी, 1964
89. शतपथ ब्राह्मण : टीकाकार—पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय,
प्राचीन वैज्ञानिक अध्ययन अनुसंधान
नई दिल्ली, 1969.
90. शारदातनय का भाव— : डॉ० शशि तिवारी, कैशिकी प्रकाशन,
प्रकाशन : विवेचनात्मक आगरा, प्रथम संस्करण, 1984.
अध्ययन
91. शिशुपालवधम् : माघ, सम्पादक— रामजीलाल शर्मा,
चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी,
पंचम संस्करण, 1992
92. शुक्ल यजुर्वेद : सम्पादक—श्री स्वामी गोविन्दानन्द एवं
प्रेमाचार्य शास्त्री सद्गुरु गंगेश्वर
इण्टरनेशनल वेद मिशन, बम्बई, 2000
93. श्वेताश्वतरोपनिषद् : व्याख्या—डॉ० तुलसीराम शर्मा, ईस्टर्न
बुक लिंकर्स, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1985
94. श्रीमद्भागवत पुराण : गीता प्रेस, गोरखपुर
95. शृंगारशतकम् : भर्तृहरि, सम्पादक—श्री जगन्नाथ शास्त्री,
चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, प्रथम
संस्करण, 1961

96. शृंगारप्रकाश : भोज, सम्पादक—यदुगिरि यतिराज,
कारोनेषन प्रेस, मैसूर, 1956
97. सरस्वतीकण्ठाभरण : भोज, व्याख्या—कामेश्वरनाथ मिश्र,
चौखम्बा ओरियन्टालिया, वाराणसी, प्रथम
संस्करण, 1976
98. साहित्यदर्पण : विश्वनाथ, व्याख्याकार—श्री शालिग्राम
शास्त्री, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली,
नवम संस्करण, 1977
99. सांख्यकारिका : ईश्वरकृष्ण, सम्पादक— डॉ० रामकृष्ण
आचार्य, साहित्य भण्डार मेरठ, पंचम
संस्करण, 1988
100. सिर्रे अकबर भाग 1, : डॉ० सलमा महफूज, मेहरचन्द लछमनदास
(संस्कृत, हिन्दी) पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली 1988
101. सिर्रे अकबर भाग 1 (उर्दू) : अलीगढ़ मुस्लिम
विश्वविद्यालय अलीगढ़, 1993.
102. संस्कृत नाटको म : डॉ० सलमा महफूज, बुकरेज पब्लिशर्स
नायिका भेद नई दिल्ली, 1977.
103. संस्कृत काव्यशास्त्र का : पी० वी० काणे, अनुवादक—इन्द्रचन्द्र शास्त्री
इतिहास मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली,
प्रथम संस्करण, 1966

104. संस्कृत साहित्य का इतिहास : वाचस्पति गैरोला, चौखम्बा विद्याभवन,
वाराणसी, पंचम संस्करण, 1997.
105. संस्कृत साहित्य का इतिहास : बलदेव उपाध्याय, शारदा संस्थान,
वाराणसी, दशम संस्करण, 1978
106. संस्कृत साहित्य का इतिहास : वेदव्यास, दयानन्द कॉलिज अनुसन्धान
नाट्य और काव्य (भाग-1) विभाग, लाहौर, प्रथम संस्करण, 1926
107. संस्कृत साहित्य का इतिहास : विजयपाल सिंह, शिक्षा भारती, दिल्ली,
प्रथम संस्करण, 1997
108. संस्कृत साहित्य का : सत्यनारायण पाण्डेय तथा श्रीकान्त पाण्डेय
आलोचनात्मक इतिहास साहित्य भण्डार, मेरठ, सप्तम संस्करण, 2001
109. संस्कृत साहित्य का रूपरेखा : चन्द्रशेखर पाण्डेय एवं नानूराम व्यास
नानूराम व्यास साहित्य निकेतन, कानपुर
19वां संस्करण, 1992
110. संस्कृत साहित्य का इतिहास : ए0 बी0 कीथ, अनुवादक-मंगलदेव शास्त्री,
मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, द्वितीय
संस्करण, 1978
111. संस्कृत भाषा एवं संस्कृत : टी0 जी0 माईणकर, राष्ट्रीय शैक्षिक
साहित्य का इतिहास अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद, नई
दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1978

112. स्वप्नवासवदत्तम् : भास, व्याख्या— धर्मेन्द्र कुमार गुप्त,
मेहरचन्द लछमनदास, नई दिल्ली, द्वितीय
संस्करण, 1982
113. हर्षचरितम् : बाणभट्ट, व्याख्या—मोहनदेव पन्त,
मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, प्रथम
संस्करण, 1984

पत्र एवं पत्रिकाएँ

1. प्राच्य प्रज्ञा (शोध पत्रिका) : डॉ० सलमा महफूज़ भूतपूर्व अध्यक्ष संस्कृत
विभाग (सम्पादिका), अलीगढ़ मुस्लिम
विश्वविद्यालय अलीगढ़, 2001.
2. प्राच्य प्रज्ञा (शोध पत्रिका) : डॉ० सलमा महफूज़ भूतपूर्व अध्यक्ष संस्कृत
विभाग (सम्पादिका), अलीगढ़ मुस्लिम
विश्वविद्यालय अलीगढ़, 2002.
3. प्राच्य प्रज्ञा (शोध पत्रिका) : डॉ० सलमा महफूज़ भूतपूर्व अध्यक्ष संस्कृत
विभाग (सम्पादिका), अलीगढ़ मुस्लिम
विश्वविद्यालय अलीगढ़, 2003.
4. वीमेन्स कॉलेज पत्रिका . अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय अलीगढ़
2001–2002
5. वीमेन्स कॉलेज पत्रिका . अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय अलीगढ़
2003–2004

6. जर्नल ऑफ द गंगानाथ झा केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ, इलाहाबाद, 2000,
Vol. 56
- 7 ऑल इण्डिया ओरिएन्टल कान्फ्रेंस, 41वाँ अधिवेशन, पुरी, 2002

कोश ग्रन्थ

- | | | |
|----|------------------------|---|
| 1 | शब्दकल्पद्रुम | राधाकान्त देव, सम्पादक—हरिचरण वसु,
पाथुरिया, घाट स्ट्रीट, कलकत्ता, 1908—13 |
| 2. | संस्कृत हिन्दी कोश | वामन शिवराम आप्टे, मोती लाल बनारसीदास,
दिल्ली, 1981 |
| 3 | संस्कृत अंग्रेजी कोश | मोनीयर विलियम्स, मोती लाल बनारसीदास,
दिल्ली, 1979 |
| 4. | हिन्दी संस्कृत कोश | रामस्वरूपशास्त्री, चौखम्बा विद्याभवन वाराणसी |
| 5. | हिन्दी शब्दार्थ परिजात | सम्पादक—द्वारिकाप्रसाद शर्मा,
इलाहाबाद, 1948 |

English Books :

- | | | |
|----|-----------------------|---|
| 1. | Aristotle and Bharata | R. L . Singhal
Vishveshvaranand Vedic Research
Institute, Sadhu Ashram,
Hoshiarpur, Punjab, 1977 |
| 2. | Harsha and His Times | : Dr. Baijnath Sharma, Sushma
Prakashan, Varanasi, Edition-1, 1970 |

-
3. History of Classical Sanskrit Literature : M. Krishnamachariar, Motilal Banarasidass, Delhi, Edition-3, 1974
 4. Priyadarshika : Translated by G.K. Nariman, A.V. Williams Jackson and Charles J. Ogden. A.M.S. Press Inc. New York, 1965
 5. Some Problems of Indian Literature : M. Winternitz, Bhartiya Book, Delhi, 1977
 6. Subandhu and Dandin : Their Works : Maan Singh, Meharchand Lachhmandass, New Delhi, Edition-1, 1979
 7. Subandhu's Vasavadatta's : Louis H. Gray, Motilal Banarasidass Delhi, 1999
 8. The Dramas of Shri Harsha : Mrs. Bela Bose Ketabistan, Allahabad, 1948
 9. The Story of King Udayana : Dr. Niti Adval, Chowkhamba Sanskrit Series office, Varanasi Edition-1, 1970
 10. Vikramaditya of Ujjayini : Raj Bali Pandey, Shatadala Prakashan, Varanasi, 1951
-